प्रकाशक
सेठ मुन्नालाल जैन
पार्टनर :-शिवनाथ राय रामधारी
नया बाज़ार दिल्ली।

मुद्रक :
पाईनियर फाईन आर्ट प्रेस
दिल्ली।

प्राक्कथन

आज का जगत् जहाँ वैज्ञानिक उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचने में बहुत तीव्रगति से अग्रसर हो रहा है और अपने वैज्ञानिक साधनों से इतरलोकों पर भी विजय-पताका फहराने के प्रयत्नों में यत्किंचित् साफल्य प्राप्त करने लगा है, वहीं दिन-प्रतिदिन मानव-हृदय की शान्ति का भी अन्त होता जा रहा है। आज का मानव जीवन से त्रस्त, श्रान्त होकर कहीं दूर शान्ति की खोज के लिए कूच करने को बेचैन है, परन्तु उसके समक्ष जो उन्नति के साधन हैं, वे उसे शान्ति की अपेक्षा अशान्ति, लूट-खसोट, अन्याय, अत्याचार, स्वार्थपरायणता के गरम बाजार की ओर ही ले जाते हैं। कहने को वे उन्नति के साधन हैं, परन्तु उनसे उल्टे मानव अधोगति की ओर जा रहा है। आज की अणु-शक्ति जिन स्वार्थपरायण हाथों में है, वह मानव को एक दिन प्रलय की ओर ही ले जायेगी, ऐसा अब स्पष्ट-सा होने लगा है।

इस सबका कारण क्या है? मानव ने धर्म, संस्कृति और सभ्यता की ओर से मुख मोड़ लिया है। वह अपनी संस्कृति को भूलकर दूसरों की नकल करने पर तुल चुका है। उसे अपने पूर्वजों द्वारा प्रदर्शित और अनुभूत मार्ग पर चलने में विश्वास नहीं रहा, क्योंकि वह अपने को पूर्वजों से बहुत अधिक बुद्धिमान् समझने लगा है।

किन्तु वास्तव में देखा जाये तो जब तक यह भूला-भटका इन्सान अपने परित्यक्त मार्ग को दुबारा नहीं अपनायेगा, तब तक वह अपने लक्ष्य—शान्ति तक कथमपि पहुँच नहीं सकता। धर्म और संस्कृति की चर्चा एक ऐसा साधन है जो घरेलू और बाह्य विषयों से दुःखी मनुष्य के चित्त को शान्ति प्रदान करता है।

इसी उद्देश्य को लेकर यह अध्यात्म और संस्कृति के प्रवचनों का स
प्रकाशित किया गया है। पंजाब केसरी जैनभूषण, प्रान्त मन्त्री प० रत्न

श्री प्रेमचन्द जी के अमूल्य प्रवचन इसमें सगृहीत हैं। मुनिश्री के प्रवचन जहाँ अध्यात्म के गम्भीर से गम्भीर विषय पर विशद प्रकाश डालते हैं, वहाँ उन विषयों में सर्वसाधारण की समझ में आने के लिए उपयुक्त सारल्य और विषय-प्रतिपादन की शक्ति भी रहती है। कथा, सवाद, चुटकले उदाहरण आदि से वे गम्भीर विषयों को भी दिलचस्प बना देते हैं। मुनिश्री का प्रवचन एक सिह की गर्जना के समान होता है

इसी से बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी जन उनके उपदेशों से पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। उनके उपदेशों में किसी साम्प्रदायिक भेद को स्थान नहीं है और वे सत्य के पुजारी हैं। आप सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, गुरमुखी, उर्दू आदि अनेक भाषाओं के विद्वान् हैं।

आप प्राय देश के अनेक भागों का भ्रमण करके धार्मिक जनता को अपनी पवित्र वाणी का रसपान कराते रहते हैं। आपमें किसी प्रकार की स्वार्थी प्रवृत्ति का लेश नहीं, अतः आप अत्यन्त सुस्पष्ट वक्ता हैं। आप अपने प्रवचनों में स्वार्थियों और ढोंगियों को बहुत बुरी तरह आड़े हाथों लेते हैं।

जैन धर्म के प्रचारार्थ आपने अपना तन-मन अर्पित कर रक्खा है। आपके प्रयासों से लाखों पथभ्रष्ट जनगण सन्मार्ग की ओर अग्रसर होकर मानव के वास्तविक ध्येय परमात्म-मिलन का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक जन-जन के लिए एक अत्यन्त उपयोगी उपदेशामृत के रूप में सिद्ध होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। इससे पूर्व इसी पुस्तक के पाच भाग प्रकाशित हो चुके हैं जिनसे मनुष्यों ने बहुत लाभ उठाया है। यह छठा भाग भी उसी तरह उन्हें लाभ पहुँचायेगा ऐसी हमें आशा है।

अन्त में हम दानवीर सेठ मुन्नालाल जी का बहुत धन्यवाद करते हैं जिन्होंने अपने व्यय से प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित कराकर धार्मिक जनता को अमूल्य उपदेशामृत का पान कराया।

—सम्पादक

विषय-सूची

प्रेम-सुधा

(छठा भाग)

: १ :

सम्यक्त्व संरक्षण

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधा संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्ति कान्तिनिचय हे वीर ! भद्रं दिश ॥

× × ×

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता. सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकामुनिवरा रत्नत्रयाराधका,
पञ्चैते परमेष्ठिन प्रतिदिन कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥

उपस्थित महानुभाव !

भारतीय आस्तिक दर्शनो ने और विशेषत जैन धर्म ने आध्यात्मिक साधना का चरम और परम लक्ष्य मोक्ष स्वीकार किया है । समस्त जैन वाङ्मय का प्रधान स्वर मोक्ष की साधना का निर्देश करता है । शास्त्रो में ज्ञानी पुरुषो ने मुमुक्षु जीवो के लिए जो साधना बतलाई है और मुक्ति की प्राप्ति के लिए जिन साधनो का निरूपण किया है, उनमे सम्यग्दर्शन अनिवार्य रूप से अन्तर्निहित है । सम्यग्दर्शन का असाधारण महत्त्व है । वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण तो है ही, किन्तु उसकी विशिष्टता इस बात से भी

है कि वह मोक्ष के अन्य साधनो को भी समीचीन रूप प्रदान करता है।

सज्जनो ! साधन, साध्य और साधक की त्रिपुटी है। साधक आत्मा है जो किसी कार्य को करने वाला है। किसी कार्य को करने का जो ज़रिया है, निमित्त है, उसे साधन कहते है। साधक आत्मा, साधन के द्वारा, जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहता है और जिस ध्येय या लक्ष्य को समक्ष रख कर साधनो का प्रयोग किया जाता है, उसे साध्य कहते है।

ससारी जीवो की भिन्न-भिन्न परिस्थितिया और भिन्न-भिन्न रुचिया है। अतएव उनकी आवश्यकताओ के अनुसार उनके सामने अनेक प्रकार के साध्य होते है। जिसको जैसी-जैसी वस्तु की आवश्यकता है, उसके सामने वही साध्य है। जिसे धन-सम्पत्ति प्राप्त नही है किन्तु उसकी आवश्यकता प्रतीत हो रही है, उसके लिए धन-सम्पत्ति ही साध्य है। जो मान-प्रतिष्ठा का इच्छुक है, उसके लिए मान-प्रतिष्ठा साध्य है। इसी प्रकार जिसे जिस वस्तु को प्राप्त करने की कामना है, उसके लिए वही साध्य बन जाती है। किन्तु तात्त्विक दृष्टि को अपनाया जाय और गभीरता के साथ विचार किया जाय तो सहज ही प्रतीत होगा कि सासारिक पदार्थ, जिन्हे दुनिया के लोग साध्य समझते है, स्थायी मगल प्रदान नही कर सकते। उन साध्यो को प्राप्त कर लेने पर भी आत्मा को शाश्वत शान्ति अथवा चिरकालीन तृप्ति प्राप्त नही होती। यही नही, बहुत बार तो प्राप्त हुए वे साध्य पदार्थ उलटे व्याकुलता की वृद्धि करते है और उस व्याकुलता को दूर करने के लिए फिर किन्ही अन्य वस्तुओ को साध्य बनाना पडता है। इस प्रकार अनवस्था और अस्थिरता के भवर में जीवन फस जाता है और

अन्त में वह यो ही समाप्त हो जाता है। ऐसे पदार्थों को परम साध्य नही माना जा सकता। वास्तव में साधने योग्य यदि कोई वस्तु है, प्राप्त करने योग्य कोई पदार्थ है और जिसे प्राप्त करने के पश्चात् फिर कभी किसी अन्य पदार्थ को प्राप्त करने की आवश्यकता नही रहती तथा जो एक बार प्राप्त होकर कभी पृथक् नही होता, तो वह है मोक्ष। जिसने एक बार मोक्ष प्राप्त कर लिया, उसे फिर किसी भी साधन की आवश्यकता नही रहती। वह सदा के लिए कृतकृत्य हो जाता है। उसे जो कुछ करना था वह कर चुका, अब उसके लिए कुछ भी करना शेष नही रहा।

जब किसी चीज़ की इच्छा होती है, चाह होती है, तब उसे प्राप्त करने के लिए कुछ करना पडता है, किन्तु मुक्तात्माओ में कोई चाह, इच्छा, अभिलाषा या कामना अवशिष्ट नही रहती। इच्छा कर्म के उदय से होती है। वह मोहनीय कर्म की प्रकृति है। मुक्तात्मा कर्मों का नाश कर चुके है, क्योकि समस्त कर्मो का नाश होना ही मोक्ष कहलाता है। तत्त्वार्थसूत्र मे कहा है —

'कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्ष ।'

अर्थात्—समस्त कर्मो का क्षय हो जाना ही मोक्ष है।

इस प्रकार ज्ञानी जनो का कथन है कि साधक को अपने साध्य की प्राप्ति के लिए साधनो की आवश्यकता होती है। मोक्ष भी साध्य है और परम साध्य है। अतएव जो मोक्ष रूपी साध्य की प्राप्ति करना चाहते है, उनके लिए भी साधन होने चाहिए, जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो सके। यहा यह ध्यान रखने की बात है कि साधन, साध्य के अनुकूल ही होने चाहिए। साध्य और प्रकार का हो और साधन उसके विपरीत हो तो उनसे साध्य की

प्राप्ति या सिद्धि नही हो सकती। मोक्ष रूप साध्य की उपलब्धि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र से होती है। तत्त्वार्थसूत्र मे भी कहा है —

'सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्ग.।'

आप जानते है कि रास्ते के बिना कोई भी अपने लक्ष्य तक नही पहुच सकता, जब कि यहा दस कोस जाने के लिए भी रास्ता चाहिए और वह भी साफ और अच्छा होना चाहिए, जाना-पहचाना चाहिए, ऊबडखाबड और झाडी-पहाडी वाला नही होना चाहिए। तभी उस रास्ते पर चलने वाला पथिक सुरक्षित पहुच सकता है। इसके विपरीत, यदि कोई पथिक ऐसे सुगम्य मार्ग को छोडकर, भूल से दूसरे पथ पर कदम रख देता है, जो उसे बीहड वन में पहुचाने वाला हो तो वह पथिक अपने निश्चित स्थान पर नही पहुच सकेगा। हा, भूल जाने पर बीच मे किसी दूसरे जानकार से रास्ता पूछ लेगा तो उस गलत रास्ते को छोडकर फिर सही रास्ता पकड सकता है।

मै अभी बम्बई-सौराष्ट्र की तरफ से विचरण करके आ रहा हू। उधर के रास्ते मेरे देखे हुए नही थे। अतएव मै पूछ-पूछ कर रास्ता अपनी डायरी में नोट कर लेता था और उसी राह पर चल पडता था। इस प्रकार विहार करता-करता मै यहां तक आ पहुचा हू।

सज्जनो! रास्ते के बिना काम चलने वाला नही है। मगर मुश्किल तो यह है कि लोग सही रास्ता जान कर भी उसपर नही चलते और गलत राह पर सरपट दौडे जा रहे है। रास्ता बताने वाला बता रहा है और कह रहा है कि सीधा डामर रोड

बना है, तुम उसपर बराबर चलते जाना। अपने लक्ष्य तक पहुच जाओगे। इस प्रकार बताने वाला सद्भावना से, ईमानदारी से रास्ता बता रहा है, पर चलने वाला जाना तो चाहता है मोक्ष में, मगर इतना बतला देने पर भी रास्ता पकड रहा है मिथ्यात्व का। ऐसी स्थिति में उस राजमार्ग को छोड देने वाला यदि दूसरी दुखद जगह नही पहुचेगा तो कहा जायेगा ? वह अपने निश्चित लक्ष्य पर किस प्रकार पहुच सकेगा ? अन्तत उसे पश्चात्ताप करना पडेगा कि—'ओह ! मै यहा आ पहुंचा ! यह मेरा अभीष्ट स्थान नही था। मेरा चलने का श्रम निरर्थक हो गया, बल्कि इससे मै अपने लक्ष्य से और भी दूर आ पहुचा।'

ऐसे पुरुष को उसी रास्ते वापिस लौटने मे कितना शारीरिक, मानसिक कष्ट होगा। मगर लौटने के सिवाय दूसरा उपाय ही क्या है ? जब अपने लक्ष्य पर पहुचना ही है और भूल से गलत रास्ता अख्तियार कर लिया है तो उसे छोडना ही पडेगा और सही राह पर आना ही पडेगा।

सज्जनो ! रास्ता बतलाने मे मैने कोई कसर नही रक्खी है। सवा महीने से, लगातार भिन्न-भिन्न हेतुओ और दृष्टान्तो से आपको रास्ता दिखला रहा हूँ। फिर भी कोई किधर और कोई किधर जा रहा है। यह तो मेढको की पसेरी वाला हिसाब हो गया। वजन को पूरा करने के लिए चार मेढक पलडे में रक्खे तो दो निकल पडे ! दो फिर चढाये तो तीन फुदक कर नीचे कूद गये ! यह पसेरी कभी पूरी होने वाली नही है !

आपको समझ लेना चाहिए कि मै आपकी भलाई के लिए यहाँ सुनाने बैठा हू। आप लोगो से मुझे कोई स्वार्थ सिद्ध नही करना है। मै आपके हित का रास्ता बतला रहा हूँ। मगर आप

में से कितने लोग भगवान् के वचनो की भी चोरी किये बिना नही रह सकते। दुनियादार दूकान पर बैठ कर तो चोरी कर ही लेते है, किन्तु यहाँ आध्यात्मिक मार्ग में भी कई प्रकार की हेरा-फेरी किये बिना नही रहते। यह आश्चर्य की बात है !

मै सावधान कर देना चाहता हू—'होशियार रहो ! तुम्हे रास्ते मे कई चोर मिलेगे और कहेगे कि यह रास्ता ठीक नही है, इस रास्ते से चलो तो जल्दी ठिकाने पहुँच जाओगे। किन्तु चलने से पहले रास्ता बतलाने वाले की भी परीक्षा कर लेना। भली-भाँति जाँच-पडताल कर लेना कि यह कौन है ? तुम्हारा हित-चिन्तक है या कोई चोर, उचक्का है या ठग ? सज्जनो ! दुनिया मे ऐसे चोरो का जाल फैला हुआ है और वे दावा करते है कि हम लोगो को सही रास्ते पर ले जाते है और यही राजमार्ग है। वे तरह-तरह के प्रलोभन देकर, आकर्षण दिखला कर भोले जीवो को अपने कल्पित मार्ग पर ले जाते है और फिर ठग लेते है ! किन्तु तुम्हे भी बुद्धि मिली है और बुद्धि का फल तत्त्व की विचारणा करना है। अतएव अपनी बुद्धि से तत्त्व का निर्णय करके सही राह पर ही कदम उठाना चाहिए।

सज्जनो ! कितने ही मिथ्यात्वो लोग तुम्हारे सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चरित्र रूपी धन को लूटना चाहते है। अतएव उनसे सावधान रहो। वे तुम्हे समीचीन पथ से विचलित करना चाहते है। वे एक प्रकार से नही, अनेक तरीको से, अनेक चमत्कार दिखला कर तुम्हे अपने वशीभूत करने का प्रयत्न करेगे। उनके जाल में अच्छे से अच्छे लोग भी फस जाते है और पथभ्रष्ट हो जाते है। जिस रास्ते पर अनेक तीर्थंकरो की परम्परा चली आ रही है, चैतन्य के उपासको का जो मार्ग चला आ रहा है और

जिस मार्ग पर चल कर अनेक भव्य आत्माओ ने मुक्ति प्राप्त की है, उसी पवित्र रास्ते से विचलित करने के लिए वे मिथ्यात्वी अनेक गलत उपाय और अनेक मिथ्या साधन बतला रहे है, तरह-तरह के आकर्षण दिखला रहे है, ताकि मोक्षाभिलाषी पथिको का मन उस ओर खिच जाय। वे पथभ्रष्ट होकर चौरासी के चक्कर में ही फिरते रहे।

पक्षी सीधी तरह शिकारी के कब्जे में नही आता, अत वह बडा दाव-घात खेलता है। वह दाने बिखेर देता है, जाल बिछा देता है और उसकी डोर अपने हाथ में रख कर स्वय कुछ दूरी पर बैठ जाता है । भोले पक्षी स्वतन्त्र रूप से आकाश में विचरण करते हुए नीचे दाने देखते है तो उस जनहीन जगल मे नीच उतर आते है, दाने चुगते है और शिकारी के जाल मे फस जाते है । एक बार फँसने के पश्चात् उनका मुक्त होना कठिन हो जाता है।

सज्जनो ! जो पापी जीव होते है, वे अनेक प्रकार के दाव-पेच लडाते रहते है । आपके इस स्थानक के छज्जो पर बहुत-से कबूतर प्रात काल बैठते है। वे भोले प्राणी है। रात भर के बैठे-बैठ थके हुए विश्राम पाने के लिए सबेरे-सबेरे उठ कर मु डेर पर आ बैठते है, किन्तु कम्बख्त बिल्ली को जाति प्राय प्रतिदिन नियत समय पर आ कर छज्जे की ओट मे, चुपके-से दबे पाव बैठ जाती है और मौका पाकर किसी-न-किसी को घात कर देती है। उस बिल्ली को किसी ने इस प्रकार बैठने की शिक्षा (ट्रेनिंग) नही दी है, फिर भी कषायोदय के कारण उसमें जन्मजात कपट वृत्ति विद्यमान है।

कषाय चार है—क्रोध, मान, माया (कपटाई) और लोभ। नरक के जीवो में क्रोध का आधिक्य होता है। क्रोध के कारण नारकीय जीव

निरन्तर आपस में लडते, कटते-मरते रहते है। श्रीमद् जीवाभिगम सूत्र में वर्णन आता है कि वैकरियलब्धि से कुथुवा का रूप बना कर, जिसकी चोंच लोहे की सी होती है, एक दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाते है। इस प्रकार आपस में एक दूसरे को व्यथित करते है, परस्पर एक दूसरे पर शस्त्र चलाते है और आपस मे कट-कट कर कर्कश वेदना का अनुभव करते है। इसका कारण यही है कि उनमे क्रोध की मात्रा अधिक होती है। क्रोधी स्वय दुखी होता है और दूसरो को भी दुखी करता है। क्रोधी जीव न शान्ति से रहता है और न दूसरो को शान्ति से रहने देता है।

क्रोध के आवेश मे जीव उन्मत्त हो जाता है। अतएव ज़हर खाकर, फासी लगा कर, कुए मे पड कर या रेल के नीचे आकर मर जाता है। यह बाते प्राय स्त्रियो मे अधिक होती है, क्योकि उनमे बुद्धि-विवेक विशेप नही होता और मानसिक दौर्बल्य की मात्रा अधिक पाई जाती है। किन्तु शास्त्र मे कहा है कि —

'अपघाती महापापी ।'

जो अपघात करके मरता है, उसे खोटी गति ही मिलती है। अतएव बहिनो, आप ध्यान रखना। आपको वीतराग देव की पावन वाणी को श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतएव परिवार में कभी किसी से झगडा हो जाए तो भी अपघात जैसे महापाप को हृदय में स्थान मत देना। कभी इस घोर पातक के आचरण का विचार भी न करना। बहिनो और भाइयो को अपघात का सौगध ले लेना चाहिए।

(सब नर-नारियो ने हाथ ऊंचा करके अपघात का त्याग किया)।

सज्जनो ! यह क्रोध बडा ही भयानक शत्रु है। क्रोध के वशीभूत होकर बडे-बडे ज्ञानी भी ज्ञान भूल जाते हैं। कुछ ही दिनो की बात है कि अजमेर में एक ओसवाल भाई कुंए में कूद कर मर गया। हमें ज्ञात हुआ था कि वह धर्म का ज्ञाता और आचरण करने वाला भी था।

पाठशालाओ मे पढने वाले कई बालक जब परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो जाते है तो आप अखबारो में पढते होगे, वे रेल के नीचे दब कर मर जाते है। भले मनुष्य की बुद्धि का इससे बढकर दिवालियापन और क्या हो सकता है ? इस प्रकार कट कर मर जाने से उसे क्या उत्तीर्णता प्राप्त हो गई ? क्या प्रमाणपत्र मिल गया ? वह अनुत्तीर्णता और लज्जा के कारण इस शरीर से तो मर गया किन्तु अपघात करके उसने अपने जन्म-मरण की शृंखला और भी लम्बी कर ली !

भाइयो ! दो पहलवान लडते है तो दोनो मे से किसी एक की हार तो निश्चित है ही। सब लोग व्यापार करते है। उनमे से किसी को नफा और किसी को नुकसान होता है। यह हानि-लाभ और उतार-चढाव तो ससार में होता ही रहता है। किन्तु इसके कारण अपने मूल्यवान् प्राणो को अपघात कर क्यो खो रहे है ? जीवित रहेगा तो फिर भी विद्याभ्यास कर लेगा। कदाचित् विद्याभ्यास न किया तो दूसरे प्रकार से जीवन का लाभ उठा सकता है, देश, समाज और धर्म की सेवा कर सकता है। कहावत प्रसिद्ध है —

'जिंदा रहे तो लाखो पाये।'

अतएव इन अनमोल प्राणो को वृथा गवा देना महामूर्खता

है। याद रखना चाहिए कि सारे ससार की सम्पदा एक ओर हो और प्राण दूसरी ओर हो तो भी प्राण अनमोल ही रहेगे।

पुराने ज़माने में कितनी ही स्त्रियाँ अपने पति का मरण हो जाने पर, उसके मोह मे फँस कर, उसके साथ ही जल मरती थी। अज्ञानी जन उन्हे 'सती' कहते थे और उसके दाहसस्कार के स्थल पर स्मारक खडा करके उसके आगे मत्था रगडते थे। आज भी कभी-कभी और कही-कही इस प्रकार की घटना घटित हो जाती है, यद्यपि आज की सरकार की ओर से इसपर प्रतिबन्ध लगा हुआ है। आश्चर्य तो इस बात पर है कि कई जैन भाई भी, जो इस प्रकार जल मरना लोक-मूढता कहते है, उन स्थानो पर जाते है और तरह-तरह की मान्यताएँ कबूल करते है।

मुझे स्पष्ट कहना चाहिए कि ऐसा करने वाले लोगो ने जैन धर्म को समझा ही नही है। उन्होने जैन-दर्शन को हृदय मे उतारा ही नही है। तभी तो जैन धर्म के अनुयायी होकर भी लोग मनौती मनाने के रूप मे सती-प्रथा का अनुमोदन कर रहे है, उसे अच्छा बतलाते है और उत्तम मरण कहते है। शास्त्र की दृष्टि से स्पष्ट ही वह अपघात है। वह बालमरण है, समाधिमरण नही है। वह आत्मकल्याण के लिए नही मरी है, वरन् दु ख और शोक को सहन न कर सकने के कारण मरी है। मेरे सुख के सभी साधन नष्ट हो गए, मै निराधार हो गई, इस दु ख से मरी है। अतएव शास्त्रकारो ने इसे अकाममरण कहा है।

जोधपुर मे राजघराने की एक बाई पति के साथ ही जल कर मर गई। कुछ समय बाद मै भी वही जोधपुर पहुच गया। मैने देखा कि आदमी तथा औरते लारियो मे भर-भर कर जा रहे है। मैने लोगो से पूछा—'क्या बात है ? क्या कोई मेला है ?'

तब मुझे बतलाया गया कि एक राजघराने की स्त्री सती हो गई है, ये लोग जहा वह फूकी गई है, वहा उस मही रूप सती के दर्शन करने जा रहे है।

मैंने देखा कि जैन धर्म के धोरी श्रावक भी मिथ्यात्व में फँस गये है। लोगो ने उसकी बडी महिमा की। तरह-तरह की किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गईं। कोई कहने लगा—कल यहाँ मरी और आज हरद्वार मे स्नान कर रही थी। अब लोग उसकी चिता पर जाकर फूलमालाएँ चढाते है, रुपये चढाते है और मिन्नतें करते है। पुजारियो को पुजापा मिलता है, माल मिलता है, रुपया-पैसा मिलता है, वे मौज उडाते है। फिर तारीफ क्यो न करे? दूर-दूर से दुनिया के लोग दर्शन करने आने लगे। आखिर आर्यसमाज की ओर से एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई कि ऐसा क्यो हो रहा है? यह धन की बर्बादी क्यो की जा रही है? तब सरकार को वहाँ जाने वालो पर प्रतिबन्ध लगाना पडा।

दुनिया तो अंधी गधी की साथी है। चाहे उसे चोर ले जाय या और कोई ले जाय। उसे विवेक से वास्ता नही। लोग देखा-देखी करते है। बुद्धि से काम नही लेते।

सज्जनो! इस प्रकार अग्नि मे गिर कर जल जाना, पहाड से गिर जाना, रेल के नीचे दब कर कट जाना या कुए में कूद कर मर जाना, आदि-आदि सब बालमरण है। यह अज्ञानी का मरण है, मूर्ख का मरण है। परन्तु बुद्धिमान् का मरण नही है।

कई लोग हमें मिलते है और ऊब कर कहते है—महाराज! ऐसी दुर्दशा हो गई है! कई अपने दुःखो की कहानी सुनाते है और कहते है—कई बार मन मे आता है कि इन पापी प्राणो का

परित्याग कर दिया जाय ! जिंदगी से पिण्ड छुडा लिया जाय ! मगर भाई ! मरने से क्या होगा ? दु ख का जो कारण है, जिसकी वदौलत मुसीवत आ रही है, वह तो प्राण छोड देने पर भी नही छूटेगा । यह शरीर यहाँ रह जायगा किन्तु कष्टो का कारण-भूत पाप-पुण्य का थैला कार्मण शरीर तो साथ ही जायगा। ऐसी स्थिति मे मर जाने से ही क्या दु ख दूर हो जायगे ?

याद रक्खो, जितने यहा वैठे है, सब मर-मर करके आये है। कोई भी जीते जी नही आया और कोई कही से पार्सल होकर नही आया । अगर मरने मात्र से ही सव दु खो का अन्त हो जाता है तो सभी मर कर आने वालो के दु ख दूर क्यो नही हो गये ? किन्तु मरने मात्र से दु ख नही छूट सकते, धर्म करने से दु ख दूर होगे । आर्त्तध्यानपूर्वक मरने वाला जीव तो अनेक प्रकार के नये कष्टो का पात्र वनता है। और जाति-पथ को लम्वा कर लेता है।

शास्त्र मे एक शब्द आया है—जातिपथ। तो एकेन्द्रिय से ले कर पचेन्द्रिय तक जातिपथ है । वालमरण करने वाला जीव उनमे पुन पुन जन्म लेता है।

मगर जाति की परिभाषा क्या है ? जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसी पर्याय में रहना जाति की परिभाषा है । जाति को वदला नही जा सकता, परिवर्तित नही किया जा सकता। यह जो ओसवाल, पोरवाल, खडेलवाल, अग्रवाल आदि-आदि जातिया है, सव कल्पित है। यह कर्मजनित जातिया नही है । यह किसी समय वाडावदी के रूप मे या दूसरे रूप में वनी है। भगवान् महावीर की दृष्टि मे और दूसरे अनन्त तीर्थंकरो की दृष्टि में, मनुष्य जाति एक है और उसी मे सभी मनुष्यो और स्त्रियो का

समावेश हो जाता है। परन्तु आजकल के जातिवादी केवलियो से भी दो कदम आगे निकल गये हैं। भगवन्तो ने मनुष्य मात्र को एक ही घडे मे रक्खा है, परन्तु इन जातिवादियो ने उसके बीच भी तरह-तरह की दीवारें खडी कर दी है। परन्तु याद रखना, भगवान् के वचनो के विरुद्ध की जाने वाली यह कल्पनाए दूसरो का कुछ भी बिगाड न कर सकेंगी, उलटे ऐसी कल्पना करने वालों को ही दु ख उठाना पडेगा।

सर्वज्ञ देव की आज्ञा का पालन करने मे ही धर्म है और उसी में सुख है। जो भगवान् के बतलाये रास्ते पर चलेंगे, वही दु खो से बचेंगे। वीतराग के मार्ग का विरोध करने वाले और अपने कल्पित मार्ग पर चलने वाले लोग दु ख से बच नही सकते।

हा, तो मै कह रहा था कि बालमरण करने वाला जीव एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि जातिपथो में भ्रमण करता रहता है। प्रत्येक ससारी जीव ने अनन्तानन्त बार बालमरण किये है। मगर उनसे जीव का निस्तार नही हुआ। ससारी जीव का जब भी निस्तार होगा, समाधिमरण से ही होगा। बालमरण तो जन्म-मरण की परम्परा मे वृद्धि करता है।

शास्त्र मे तीन प्रकार के मरण बताये हैं—पण्डितमरण, बालमरण और बालपण्डितमरण। जो पवित्र-आत्मा पुरुष आलोचना करके, अपने पापो की निन्दा करके, साधना करके, प्रायश्चित करके, नि शल्य होकर, समस्त पापो का त्याग करके, धर्मध्यान में लीन होकर, काम-आदि की ममता का त्याग करके, सबसे क्षमायाचना करके शरीर का त्याग करता है, उसका मरण पण्डितमरण कहलाता है।

कवि कहता है —

मरण मरण सब कोइ कहे, मरण न जाने कोय ।
एक मरण ऐसा मरे, फिर मरना नहिं होये ।।

सज्जनो, मरने की आवाज तो चारों ओर से आ रही है। पजाबी भाषा मे कहा है —

एक आमंदा एक जामदा, तेरा मेरा सच्च ।
तेरा कागज बच गया, मेरा क़ागज हत्थ ।।

एक आ रहा है, एक जा रहा है। ससार का यही क्रम है जो अनादि से चल रहा है और अनन्त काल तक चलने वाला है। किसी का कागज़ बाचा जा चुका है और किसी की मिसल बचने के लिए तैयार है। ससार मुसाफिरखाना है। यहा अनन्त जीव आ रहे है और अनन्त जीव जा रहे है।

कोई कह सकता है कि जीव आते-जाते नज़र नही आ रहे है, मगर भाई, नज़र आयेंगे कैसे ? स्थूल शरीर वाले जीवो का आना-जाना तो नजर आता है, मगर सूक्ष्म शरीर वालो का आना-जाना नज़र नही आता। जीव जब एक गति का त्याग करके दूसरी गति मे जाता है, तो स्थूल शरीर उसके साथ नही होता। केवल तैजस और कार्मण शरीर साथ रहते है। वे दोनो सूक्ष्म है। इस कारण जीवो का आना और जाना हमें दिखाई नही देता। उस समय जीव की इतनी सूक्ष्म अवस्था होती है कि वह पृथ्वी को, पहाड को, यहा तक कि वज्र को भी भेद कर निकल जाता है। उसे रोकने की शक्ति किसी मे नही है। आपको विदित होना चाहिए कि जीव की गति अप्रतिहत है, उसमें रुकावट डालने की सामर्थ्य किसी में नही। अगर जीव

की गति रोकी जा सकती होती तो कोई भी अपने प्रिय जन को न जाने देता। किन्तु सात तालो में बन्द कर देने पर भी जीव रुक नही सकता। अगर किसी जीव को नीचे सातवे नरक के आवासातर मे उत्पन्न होता है तो वह कितनी पृथ्वियो को भेद कर उत्पन्न होता है ? वह सात पृथ्वियो को भेद कर जाता है।

पृथ्विया आठ भी होती हैं। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि सात तो है ही, आठवी पृथ्वी सिद्धशिला है। लोकोपरी भाग में, अन्त मे, उत्पन्न होने वाले जीव एकेन्द्रिय ही होते है, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय या पचेन्द्रिय के रूप में वहा उत्पन्न नही होते। वहा पाच सूक्ष्म है और एक वाहर वायुकाय है। लोकान्त मे त्रसनाली से बाहर त्रसजीव उत्पन्न नही होते।

सज्जनो, तनिक विचार तो करो कि ज्ञानियो ने सृष्टि का किस प्रकार मथन किया है ? उनके दिव्य ज्ञान से कोई चीज छिपी नही रही। उन्होने अपने ज्ञान में जो देखा है, वही कहा है। ज्ञानियो ने अपने ज्ञान में देखा है कि दो-इन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के हलन-चलन करने वाले त्रसजीव एक नियत सीमा में, खास हद मे ही पैदा होते है और उससे बाहर पैदा नही होते। उस सीमा या हद को ही त्रसनाडी कहते है। यह त्रसनाडी चौदह राजू लम्बी और एक राजू चौडी है। जो भी जीव त्रसपर्याय मे उत्पन्न होते हैं, इस त्रसनाडी मे ही उत्पन्न होते है।

तात्पर्य यह है कि संसारी जीव चाहे लोकाकाश के अतिम छोर पर, जहा से अलोकाकाश आरभ हो जाता है, उत्पन्न हो, चाहे नीचे से नीचे—सातवे नरक से नीचे के लोकान्त मे उत्पन्न हो,

मगर उन्हे मरना अवश्य ही पडेगा। मृत्यु सबके लिए अनिवार्य है। चाहे कोई भूमि पर सोने वाला हो अथवा सोने की शय्या पर पौढने वाला हो, मृत्यु का विधान सबके लिए समान है। अगर कुछ फर्क है तो वह यह है —

है तफावत बोरिया और तख्त में ताजिंदगी।
मौत का काबू बराबर है, गदा ओ शाह पर ॥

सज्जनो ! इस शेर का भाव आपकी समझ में नही आया होगा। यह भाव ही दूसरा है। यह बाजार भी दूसरा है और इसके खरीददार भी कोई और ही है। अगर आप इसके ग्राहक होते तो आपकी समझ मे आ जाता।

अच्छा समझ लीजिए। गरीब और अमीर—सब को मरना पडता है। कराल काल किसी का लिहाज़ नही करता है। एक गरीब है, वह बोरी के तप्पड पर सोने वाला है। दूसरा अमीर है जो मणिजटित स्वर्ण के तख्त पर सोने वाला है। किन्तु फर्क क्या है ? फर्क है भी और नही भी है। है तो यही कि एक टाट पर और दूसरा शाही तख्त पर सोता है, किन्तु मरने की जो दुनिया है और मरने की जो घटना है, वह दोनो की बराबर है। इस लिहाज़ से दोनो में कोई फर्क नही है। टाट पर सोने वाला ही मरेगा और खाट पर सोने वाला अमर रहेगा, यह कदापि सभव नही है। शहशाह अमीर को हीरे-पन्ने का तख्त मौत के मुख से बचा नही सकता। हा, हो सकता है कि सोने के तख्त पर सोने वाले को मौत महगी पड जाय। क्योकि उसपर सोने वाला प्राय बहुत आरभ-समारभ करता है और आततायी होता है तथा गरीबो के उत्पीडन पर उसका ऐश्वर्य निर्भर होता है।

ज़मीन पर मस्ती की नीद सोने वाले में प्राय यह बात नही होती। इस कारण सोने के तख्त पर सोना बडा महगा पडता है।

एक राजा का भवन बडा ही भव्य था। जो उसे देखता, अत्यन्त प्रसन्न हो जाता था। ससारी जीव, जो राग द्वेष के वशीभूत है, जिस वस्तु को सुन्दर समझता है, उसे देखकर प्रसन्न हो जाता है और बुरी वस्तु को देखकर खिन्न हो जाता है। मोह के उदय से अच्छे पर राग और बुरे पर द्वेष का भाव जागृत हो ही जाता है।

हा, तो राजा वर्षा ऋतु में दो-तीन मास के लिए उस भवन में निवास करने को चला जाता था और वही मौज करता था। उस महल में सिहासन तथा सजावट के सब सामान मौजूद थे। एक बार ज़मीन पर पैदल घूमने वाला दरवेश (महात्मा)—जो सिर और पैरो से नगा था, घूमता-घूमता आ निकला। उसकी दृष्टि महल पर पडी तो सोचा—बस्ती दूर है, अत यही कुछ पेट भरने को मिल जाय तो ले लू। और विश्राम स्थान भी ठीक है। ऐसा सोच कर वह वेधडक उस महल मे घुस गया। आगे गया तो कोई नज़र नही आया। कुछ और आगे गया तो एक बडा भारी कमरा दिखाई दिया। वह उसके भीतर चला गया, किन्तु वहा उसे अद्भुत ही दृश्य दिखाई दिया। उसने देखा, कमरे में जहा-तहा, तरह-तरह की खुशनुमा चीजे आरायिश की हुई है। फर्श पर मखमल के मुलायम कालीन बिछे है और खुशबू अजब बहार दिखला रही है। सामने ही सोने का पलग है, जिसपर करीब डेढ मन फूलो की कलिया चुन-चुन कर बिछाई हुई है। यह सब देखकर उस महात्मा ने सोचा—यह शयन के लिए ठीक है। वह बेफिक्र होकर उसपर सो गया।

सज्जनो ! राजा जब भी वहा आता तभी इस प्रकार उसके शरीर को सुख देने के लिए असख्य जीवो के—फूलो के जीवो के—प्राण लूट लिये जाते थे। आपको पता ही है कि फूल मे भी जीव है। कवि ने कितना सुन्दर कहा है —

पापी जीवडया ! राम नाम मुख बोल पापी जीवड़या
कुछ नहीं लगंदा मोल, पापी जीवडया ;
जीवड़या मुंह दा जंदरा खोल पापी जीवड़या
बड़े-बडे पापी हत्यारे, राम नाम ने पल में तारे।
हो गये पार अडोल ;
सब ही प्राणी जीना चावे, कली-कली में जीव रहावे।
मत ना उना नु तोड़, पापी जीवड़या ॥१॥
जानाए क्यूं मस्जिद मदिर, तेरा दिलवर तेरे अन्दर।
दिल विच अपने टोल, पापी जीवडया ॥२॥
देख पदार्थ दृश्य निराले, कर मत दिल नु ऐश हवाले।
हो ना डावाडोल, पापी जीवडया ॥३॥
प्रभु नाम दा अमृत प्याला, पी ले बन के किस्मत वाला।
वृथा जन्म न रोल, पापी जीवड़या ॥४॥

हे सज्जनो ! तुमको रसना मिली है, जवान मिली है और वोलने की शक्ति मिली है, तो उससे किसी की निन्दा न करो, चुगली मत करो, बुराई मत करो। तुमसे बन सके तो गुणी जनो के गुण गाओ और भगवान् के गुणो का कीर्तन करो। परन्तु इस जीव को इतना विवेक कहा है ? यह जीव राम-नाम कब बोलता है ? यह जीते जी नही बोलता। इसे तो मरने पर लोग

सुनाते है—'राम नाम सत्य है !' जीते जो बोल लेता तो काम बन जाता। मगर हस के उड जाने पर फिर क्या होने वाला है ! मरने वाला तो मर गया। अतएव हे प्राणी, तू राम का नाम बोल—अरिहत का गुणगान कर। ऐसा करने से तेरी जीभ सफल और पवित्र हो जायगी। गुणी जनो के गुणो का गान करने में कुछ खर्च नही होता है। सहज में, यो ही जीव लाभ का, पुण्य का भागी हो जाता है। अतएव अरे जीव ! तू मुख का ताला खोल दे। जब निन्दा, चुगली और विकथा करने का समय आता है तो ताला फौरन खुल जाता है और जब गुणियो के गुण गाने का वक्त आता है तो ताला बन्द हो जाता है ! यह जीव की उलटी परिणति है। हे भाई ! तेरे हाथ में है यह ताला खोलना और बन्द करना। बस, यू या यू का ही अन्तर है। चावी वही है और तेरे ही हाथ मे है, केवल घुमाने का अन्तर है। जब आत्मा निन्दा-विकथा की ओर जाता है तो उसके विकास का ताला वद हो जाता है और जब गुणगान करता है तो कल्याण का ताला खुल जाता है।

हा, तो मैंने कहा था—'कली-कली में जीव रहावे, सब ही प्राणी जीना चावे।' सब जीव जिंदा रहना चाहते है। इस ससार में कोई ऐसा प्राणी नही जो जीना न चाहता हो। सभी प्राणियो की जीवित रहने की ही कामना होती है और सभी प्राणी सुख चाहते है। कोई न मरना चाहता है, न दुख चाहता है। यह शास्त्र की घोषणा है और ज्ञानी जन कहते है कि—ऐ पुरुष, तू गफलत में पडकर, कैसी कुभकर्णी निद्रा में सो रहा है ! क्या तू यह समझता है कि काल नही आयगा ? किन्तु वह तो आयगा और अवश्य आयगा और बार-बार आयगा !

ज्ञानी पुरुषो ने क्या घोषणा की है ? सुनो :—

नत्थि कालस्सऽणागमो । सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया, दुक्खपडिकूला, अप्पियवहा, पियजीविणो, जीविउकामा । सव्वेसिं जीविय पिय । —आचाराग प्र. यु द्वि अ तृ उ

अर्थात्—यह समझना भूल है कि कभी मौत नही आयगी । अतएव इस जीवन का अन्त अवश्यभावी है, यह अटल विधान दृष्टि के समक्ष रखकर समझो कि सभी प्राणियो को अपनी-अपनी आयु प्रिय है । सभी को सुख प्रिय है—सभी सुख में आनन्द और आराम मानते है, दुःख सभी को प्रतिकूल प्रतीत होता है—दुःख किसी को भी नही भाता है । अपना वध कोई नही चाहता, सबको जीवन प्यारा है और सभी जीवित रहने की कामना करते है ।

सज्जनो ! ससारी जीवो की यह जो कामना प्रकट की गई है, वह सभी के लिए स्वानुभव से भी सिद्ध है । फिर भी आज हो क्या रहा है ? सुवह ही सुवह मूर्ति पर चढाने के लिए फूलो के टोकरे के टोकरे, एकेन्द्रिय जीवो को तोड कर मरोड कर भर लिये जाते है । वह किस के लिए ? कोई सूघने वाला भी तो हो, मगर वहा तो लाइन ही साफ है ! मुर्दे को फूल सुघाया जाय तो कौन सूघे ? मुर्दे को खिलावे तो कौन खावे ? मुर्दे को वाजा सुनाया जाय तो कौन सुने ? जहा प्राणो का वध हो वहा भगवान् को आज्ञा नही है । कहा है —

पुष्प-पांखुड़ी जहां दुभाय,
तह जिणवर की आज्ञा नाय ।

करोड वाले को करोड काम आयेंगे, किन्तु गरीब के पास जो पचास है तो उसके लिए वही बहुत है । वही उसके काम आयेगे । पचेन्द्रिय को अपने प्राण प्यारे है। तो एकेन्द्रिय को भी अपने प्राण प्यारे है । चाहे पचेन्द्रिय हो चाहे एकेन्द्रिय हो, सभी जीव जीना चाहते है। अतएव प्राणियो के प्राणो का हनन करना घोर पाप है। पाप के भी दो मार्ग है—अर्थदण्ड पाप और अनर्थ-दण्ड पाप । गृहस्थो को मकान बनवाने के लिए, खाने-पीने के लिए और धधा करने के लिए पाप करना पडता है । यह मजबूरी हालत मे, प्रयोजन की पूर्ति के लिए, पाप करना पडता है । यह आरभी हिंसा है। अर्थदण्ड पाप है । मगर दूसरा होता है अनर्थदण्ड पाप । हिंसा भी की, पाप भी किया। किसी के वसे घर को भी उजाडा, मगर अपना भी घर न बसा, कोई प्रयोजन सिद्ध न हुआ। यह अनर्थदड पाप कहलाता है । अर्थात् जिस हिंसा से कोई लाभ नही, कोई प्रयोजन की सिद्धि नहो, जिस हिंसा के न करने पर कुछ विगडता नही, वह निरर्थक हिंसा कहलाती है । श्रावक के लिए अर्थदण्ड तो खुला रक्खा गया है, पर अनर्थदण्ड त्याज्य ठहराया गया है। आपको मालूम होना चाहिए कि श्रावक के आठवें व्रत में क्या वतलाया गया है ? भगवान् महावीर ने गृहस्थ को क्या शिक्षा दी है ? भगवान् का उपदेश है कि अनर्थदण्ड से, निरर्थक पाप से, जिससे किसी को कोई लाभ न हो ऐसे पाप से गृहस्थ को अवश्य ही वचना चाहिए। जहा किसी को वर्बाद करके, मिटा करके भी किसी का भला न होता हो, वे सब क्रियाए अनर्थदण्ड में चली जाती हैं। अर्थदण्ड से अनर्थदण्ड का पाप अधिक है । केवल ज्ञानियो ने जो निर्णय दिया है, वही चलेगा और वही मान्य होगा। किसी की कपोल-कल्पना काम नही आयेगी ।

कहने को तो कोई भी कह देगा कि जड मूर्ति पर पुष्पादि चढाने से सिद्धि प्राप्त होती है, किन्तु हमको तो सिद्धि बतलाओ ! किसी सजीव वृक्ष को पानी दिया जायगा तो वह फल देगा, फूल देगा, छाया देगा, किन्तु यदि सूखे वृक्ष को पानी दोगे तो उसकी जडो में पानी देना अनर्थदण्ड है। उलटे, पानी देने से वह लकडी गल जायेगी । अतएव सूखे पेड को कोई पानी नही देता और यदि कोई देता है तो वह मूर्ख कहलाता है। मै आप से ही पूछता हू कि सूखे वृक्ष को पानी देने वाले को आप क्या कहोगे ? 'मूर्ख !'

मगर ऐसे जडोपासक मूर्ख भी इसी दुनिया में रहते है। उनका सम्यक्त्व क्या शुद्ध कहा जा सकता है ?

किसलिए अनर्थदण्ड कर रहे हो ? तुम एकेन्द्रिय जीवो के प्राण धर्म और देव के नाम पर लूट रहे हो, मगर उस लूट से किसी का भी तो भला नही हो रहा है ! कहावत है—खसम भी किया मगर फिर भी घर नही बसा । फिर भी बाई जी जैसी की तैसी रह गई ! जूठन भी खाई और मुह मोठा भी न हुआ। अनर्थदण्ड के पाप के भागी भी हुए और कुछ आत्मलाभ भी न हुआ !

आप दूसरो की जेब मे से दाम निकलवाने मे तो होशियार हो, किन्तु धर्म-पक्ष मे आपकी बुद्धि कहा चरने चली जाती है ? कहो दीवालिया बैंक में तो नही चली जाती ?

अरे भाइयो ! मिथ्यात्व का निर्णय करके त्याग क्यो नही करते ? मै अनुमानत. सवा महीने से सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का स्वरूप समझा रहा हू, फिर भी मेरी ही मौजूदगी मे डाका पड रहा है। कितनेक भाई और बहिन तीर्थंकरो की चित्रवाली आनु-

पूर्वी को मत्था रगड रहे है। यह सम्यक्त्व के प्रति डाका नही तो क्या है ?

सज्जनो ! यह जीवन की कडियाँ, यह जीवन की लडियाँ, बार-बार मिलने वाली नही है। पहले जो पुण्य किया था, उसके प्रताप से यहाँ यह सब साधन प्राप्त हो गये है । अतएव विवेक को अपनाओ और धर्म-अधर्म का विचार करो। मगर आप लोगो की प्रवृत्ति कुछ निराली ही नज़र आ रही है। कोई कही फूल चढ़ाता है, कोई पानी और कोई तेल चढाता फिरता है । तेल में चिपक कर हजारो कीडियाँ मर जाती है। मैं पूछना चाहता हू कि तेल चढा तो दिया, मगर उससे किसी का भी कलेजा तर हुआ ? वह तेल व्यर्थ गया और जीवो को हिंसा का पाप कमाया, किसी मनुष्य को वह तेल दे दिया होता तो काम तो आता ! किसी को आवश्यकता की पूर्त्ति तो होती ! मगर यह सब अनर्थ-दण्ड के रूप है। उनके पीछे कोई वास्तविक योजना नही है।

मैं बार-बार तुम्हे चेतावनी दे रहा हू कि जब तक तुम मिथ्यात्व का त्याग नही करोगे, तब तक कर्मो पर विजय प्राप्त नही कर सकोगे।

भगवती सूत्र मे कहा है कि देवता भी फूल मे आकर उत्पन्न होते है । फूलो मे असख्यात देव उत्पन्न होते है। उनका पुण्य क्षीण हो गया तो स्वर्ग का सुख छूट गया और उन्हे फूल में जन्म लेना पडा । उन्होने समझा था कि यहाँ सुरक्षित रहेगे, मगर मा के पूतो ने उन्हे तोड लिया और कष्ट पहुंचाया।

तो सब प्राणी जीना चाहते है, अतएव फूलो को भी मत तोडो। तुम दूसरो को तोडोगे-मरोडोगे तो इसका बदला चुकाना पड़ेगा । तुम्हारे अग-उपाग भी तोड़े जायगे और मरोड़े जायगे।

तुम्हारा किया कोई भी अत्याचार खाली या निष्फल होने वाला नही है। दुनियादारी के कामो मे तो आरभ-समारभ होता ही है, केवल धर्म का-क्षेत्र ही ऐसा था कि जहां हिंसा से बचाव हो सकता था। क्योकि धर्म का स्थान हिंसा से ऊँचा था, मगर क्या कहा जाय ! लोगो ने धर्म-स्थान को भी शुद्ध नही रहने दिया।

सज्जनो ! शास्त्र का उल्लेख है—प्रश्नव्याकरणसूत्र में कहा है कि जो धर्मबुद्धि से त्रस-स्थावर जीवो की हिंसा करता है, वह जन्म से जन्मान्तर, गर्भ से गर्भान्तर और मरण से मरणान्तर को प्राप्त होता है और उसे निर्वाण को प्राप्ति नही होती।

भद्र पुरुषो ! धर्मशास्त्र रूपी वही-खाता खुला है। निकाल कर देख लो। पढ लो। यह कोई काले बाजार का माल नही है। यहाँ दो वही-खाते नही है—सरकार को दिखाने का और तथा घर का और, यहा एक ही खाता है। ईमानदारी है। भगवान् के वचन है कि जो धर्मबुद्धि से त्रस-स्थावर जीवो की हिंसा करते है, वे मन्दबुद्धि है, अर्थात् मूर्ख है, विवेकहीन है, वेसमझ और नादान है, फिर वे चाहे कितने ही शास्त्रों के पारगत क्यो न हो !

ओ ज्ञानी ! ज्ञान प्राप्त करने का फल क्या है ? ज्ञान सीखने का सार और लाभ क्या है ?

'एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसई कंचणं।'

ज्ञान सीख कर हिंसा से वचो। किसी भी प्राणी को कष्ट न दो, जो ज्ञानी होकर स्वय हिंसा करता है और भक्तो से करवाता है—यहा पुष्पपूजा है, पुष्प चढाओ, फल पूजा है, फल चढाओ, इस प्रकार का आदेश-उपदेश देता है, वह ज्ञानी नही; अज्ञानी है।

सज्जनो ! अज्ञान की अपेक्षा कुज्ञान अधिक हानिकारक होता है । अज्ञानी से उतना खतरा नही होता, जितना कुज्ञानो से । अज्ञानी को ज्ञान प्राप्त नही है, वह योग मिलने पर ज्ञान प्राप्त कर सकता है और दूसरो को कुपथ पर नही ले जा सकता, किन्तु जो सब कुछ जानता है, अपने को पडित कहता है, शास्त्रो का ज्ञाता मानता है, फिर भी आरभ में, हिंसा मे, धर्म मानता है, वह कुज्ञानी है । वह अज्ञानी से अधिक भयकर है । अज्ञानी कभी न कभी मार्ग पर आ सकता है, किन्तु वह खण्डज्ञानी न इधर का रहता है और न उधर का रहता है ।

एक दाना होता है पूरा पका हुआ, जिसका फूला बन जाता है, वह खाने के काम आता है । दूसरा जो पूर्णरूप से कच्चा होता है, वह ज़मीन मे बोने से नये दाने उत्पन्न करता है और तीसरा ऐसा होता है जो न पूरा सिका हुआ और न कच्चा ही । उसे ज़मीन में डाला जाय तो उगेगा नही और पेट मे डालो तो दर्द उत्पन्न करेगा । इस प्रकार कच्चा दाना भी काम मे आ जाता है, सिका हुआ भी काम मे आता है, परन्तु अधकच्चा-पक्का दाना गडबड मचाता है ।

अगर आपमे से एक-एक की परीक्षा ली जाय तो पता चले कि कौन किस श्रेणी में है ?

अनजान को समझाया जाय तो वह सरलतापूर्वक समझ सकता है और धर्म की महिमा कर सकता है । जो विज्ञ है—पक्का है अर्थात् वस्तुस्वरूप का ज्ञाता है, उसका तो कहना ही क्या है ? मगर जो अधकच्चा है, यानी जो न तो ज्ञानी है और न पूरा मूर्ख ही है, उसका समझना और उसे समझाना बहुत कठिन है । कहा भी है —

अज्ञ. सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञ ।
ज्ञानलवदुर्विदग्ध, ब्रह्माऽपि त नर न रञ्जयति ।।

जो अज्ञ होने पर भी अपने को विज्ञ मानता है और अपने ज्ञान के मद से उन्मत्त वना रहता है, उसे विधाता भी नही समझा सकता । ऐसे लोग ससार को अधिक हानि पहुँचाते है ।

तो मै कह रहा था कि जो लोग धर्मबुद्धि से हिंसा करते है, वे गहरे अन्धकार मे है और वह हिंसा उनके अहित का कारण होती है, कष्टो और मुसीबतो का कारण बनती है । उनका श्रद्धान विपरीत है, क्योकि वे अधर्म को धर्म समझते है । ऐसे विपरीत श्रद्धा वालो को समकित प्राप्त नही होती । आत्मा के लिए यह कितनी हानि-जनक अवस्था है ?

आप लोग ससार के व्यापार संबधी घाटे को घाटा मान लेते है और झट से उसका आकडा बना लेते है और समझ लेते है कि हमे इतना घाटा हो गया, परन्तु आध्यात्मिक घाटे का भी कभी विचार करते है ? कभी आत्मा के बही-खाते को भी टटोला है ? कभी सोचा है कि मैने इस जीवन मे, धार्मिक क्षेत्र मे कितना नुकसान कर डाला है और कितना लाभ उठाया है ? भूल कर भी कभी सोचते हो कि मैने दूसरो को कितना दु ख दिया है, कितना लाभ पहुचाया है और क्या-क्या खोटे कर्म किये है ? दुकानदारी मे तो वाप-बेटा मिलकर ऐसे बैठते है कि हिसाब मे एक पैसे का अन्तर रह गया हो तो घटो बिगाड देते है और दो-दो आने का तेल भी खर्च कर देते है और उस अन्तर को निकाल देने की पूरी कोशिश करते है, मगर कभी इस जीवन को भी इस प्रकार टटोलते हो ? इसका भी कुछ हिसाब-किताब रखते हो ? इसलिए, भद्र पुरुषो ! अपने जीवन को भी टटोलो और उसका परिमार्जन करो ।

श्रावक के लिए १४ नियम बतलाये गये है । उन्हे प्रतिदिन प्रात काल धारण करना चाहिए और सन्ध्या समय सोचना चाहिए कि मैंने जो नियम अगीकार किये थे, उनमे से किसी का भग तो नही हुआ है ! प्रतिदिन किया जाने वाला प्रतिक्रमण क्या है ? यह रोज़ का धर्म-अधर्म का और पुण्य-पाप का हिसाब मिलाना ही है । मगर आप वही-खाते के पन्ने तो पलट लेते हो किन्तु हिसाब नही मिलाते । अर्थात् प्रतिक्रमण के पाठ बोल लेते हो किन्तु धर्म-अधर्म का हिसाव नही करते ।

'सत मत छोडो हे नर, सत छोड़े पत जाये
सत की बाधी लक्ष्मी, फेर मिलेगी आय'

और —

गोधन, गजधन, रत्न धन, कचन खान सुखान ।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूल समान ॥

आदि-आदि बोल कर आप अपने प्रतिक्रमण को लबा बना लेते हो और बही-खाता उलट-पुलट लेते हो, परन्तु जोड भी कभी लगाते हो ? जमा और नाम की राशियो का भी कभी मिलान करते हो कि आज धर्म अधिक किया हैं या अधर्म अधिक किया है ? आज मेरे व्रत मे कोई दोष तो नही लगा है ? इस प्रश्न पर भी कभी आत्मसाक्षी से चिन्तन किया है ? आपको इन बातो का भी विचार करना चाहिए । ऐसा विचार किये विना आत्मा की मलीनता समझ मे नही आती और जब समझ मे ही नही आती तो दूर कैसे की जा सकती है ? मलीनता दूर हुए विना आत्मा का उज्ज्वल स्वरूप प्रकट नही होता है, उत्थान नही होता है ।

जैसे घर से कोरे आये थे, वैसे ही कोरे लौट गये तो क्या लाभ हुआ ? नही, दुकान खोली है तो पन्ने भी पलटो और रकम

भी सभालो । हिसाब मे गडबड हो जाती है तो कोई रकम भी दबा लेता है । मामला न्यायालय में ले जाना पडता है तो उसे प्रमाणित करने के लिए हजारो खर्च करने होते है । फिर भी कौन जानता है कि निर्णय तुम्हारे पक्ष में होगा या नही ? वहा भी तो ऐसे लोग बैठे है जो रिश्वतखोर है और जिनके लिए सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य के रूप मे दिखला देना बाये हाथ का खेल है ।

एक महाजन का उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) मे मुकदमा चल पडा । पेशियो पर पेशिया चलती रही । कई महीने ही नही, कई वर्ष पेशियो ही पेशियो में व्यतीत हो गये । वादी तथा प्रतिवादी-दोनो परेशान और हैरान हो उठे । जब उस महाजन के मामले की कई पेशिया हो चुकी, तो न्यायाधीश ने एक दिन कहा —अगली पेशी पर फैसला सुना दिया जायगा । इस प्रकार निर्णय की तिथि नियत हो गई । मुद्दई और मुद्दायला दोनो चौकन्ने हो गये और दाव-पेच लडाने लगे कि हमारे पक्ष मे फैसला हो जाय । मुद्दायला एक जाट था, जिसपर उस महाजन ने दावा कर रक्खा था ।

महाजन ने एक बढिया चिल्लेदार पगडी, जिसका मूल्य करीब पचास रुपया होगा, खरीदी और न्यायाधीश के घर जाकर रिश्वत के रूप में भेंट कर दी । उधर जाट भी समझदार था । उसने सोचा, हार-जीत का प्रश्न है । पूरी कोशिश करके किसी भी प्रकार विजय प्राप्त करनी चाहिए । कही ऐसा न हो कि महाजन हाकिम को कुछ खिला-पिला दे और अपने पक्ष में कर ले, क्योंकि वह बडा होशियार और अवसरवादी है । यह सोच कर उसने भी एक बढिया, करीब १५ सेर दूध देने वाली भैंस खरीदी और ले

जाकर हाकिम के घर बाध दी। हाकिम ने पूछा—यह क्यो लाये तब उसने कहा—हुजूर बाल-बच्चे वाले है और दूध-दही की तकलीफ पडती होगी। मैंने विचार किया—मेरे यहा न सही आपके यहा बंधी तो क्या हानि है ?

न्यायाधीश ने मन ही मन विचार किया—सेठ की पगडी ५० रुपये की है और भैंस पाच सौ की होगी। इससे प्रतिदिन मेरे सारे परिवार को दूध, दही, घी और रबडी आदि चीजे मिल सकेंगी। कहते है—जिसके घर में धींना (धेनु) होता है, उस घर में सब कुछ होता है और वह घर परमानन्दी होता है।

हाँ, तो भैंस पाकर न्यायाधीश के विचारो का पलडा उधर से इधर झुक गया। दूसरे दिन पेशी हुई। महाजन ने द्व्यर्थक भाषा का प्रयोग करते हुए कहा—हुजूर ! पगडी की लाज रखियेगा !

न्यायाधीश क्या कम चतुर थे ? उन्होने कहा—पगडी-पगडी क्या करता है ! पगडी को तो भैंस निगल गई !

सेठ समझ गया कि मामला मेरे हक में होने वाला नही।

सज्जनो ! यह आजकल के ससार की स्थिति है। ससार तृष्णा की आग में जल रहा है। मगर आग से कभी शान्ति नही मिल सकती। इसलिए मै कहता हू कि जैसे ससार का हिसाब-किताब सभालते हो, उसी प्रकार धर्म-खाते की भी जाच करो।

मैं कह रहा था कि जो धर्म के नाम पर हिंसा करता है, उसे बहुत हानि उठानी पडती है। महापुरुषो ने स्पष्ट शब्दो मे यह घोषणा की है कि सब जीव जीना चाहते है और सब को एक न एक-दिन अवश्य मरना है। ऊचे से ऊचे देवलोक में उत्पन्न होने वाले देव भी मृत्यु के वशीभूत होते है और सातवे नरक के नारकी

भी मरण की शरण होते है। फूलो की मृदुल सेज पर पौढने वाले भी चिता पर सोते है और धरती पर सोने वाले भी काल के गाल में समाते है।

हाँ, तो वह महात्मा जी फूलो की शय्या पर सो गये। कुछ ही देर हुई थी कि राजा वहा आ पहुचा। उसने देखा—कोई मस्ताना पडा है और मस्त होकर खुर्राटे ले रहा है। राजा को इस फकीर की धृष्टता देखकर गुस्सा आ गया। उसने नौकर को दो-चार चावुक फटकार देने की आज्ञा दी। राजा कहने लगा—इस भिखमगे की इतनी वडी धृष्टता कि हमारी शय्या पर आकर इतनी लापरवाही से सो रहा है!

राजा का आदेश था कि वावा जी की काया पर कोडे पडने लगे। वह तिलमिला कर उठे और राजा को सामने खडा देखकर हँस पडे और फिर रोने लगे।

वावा जी की यह अद्भुत चेष्टा देखकर राजा चकित रह गया। उसने सोचा, कोडो की मार पडने पर हँसना अनोखी सी वात है। इसे रोना चाहिए था, परन्तु यह हँसा क्यो? और फिर मुझे देख कर रोया क्यो? आखिर राजा ने वावा जी से हँसने और फिर रोने का कारण पूछा। वावा जी ने कहा—कोडे लगने से दर्द हुआ, इस कारण रोया, किन्तु हँसा इसलिए कि थोड में ही काम निवट गया। सिर्फ दो घडी इस शय्या पर सोने के कारण मुझे कोडो की मार खानी पडी, तो उनकी क्या दशा होगी जो सदा इस पर सोते है!

तो स्मरण रखना, यह फूलो की शय्या है और फूलो को तोड-मरोड कर तुम जीवो के प्राण ले रहे हो। इसका वदला देना ही पड़ेगा। फल भोगे विना छुटकारा न होगा। राई-राई का वदला

चुकाना पडेगा। वहा पोपा बाई का राज्य नही है। अतएव यदि तुम अपना भला चाहते हो तो विवेक का उपयोग करके सत्य मोक्षमार्ग को पहचानो, उसी पर अटल श्रद्धा करो और उसी पर चलो। यही सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चरित्र है।

हे साधक! यदि तू मोक्ष की आराधना करना चाहता है तो तुझे हिंसा का पूर्णरूपेण त्याग करना पडगा और समस्त आरभ समारभ से बचना होगा। याद रखना होगा कि हिंसा सदैव हिंसा है, पाप है, जन्म-मरण और नरक निगोद का कारण है, चाहे उसका धर्म समझ कर आचरण किया जाय अथवा अन्य कुछ समझ कर। जब हिंसा को हिंसा मानकर सेवन किया जाता है, तब जीव चरित्र से ही च्युत होता है, किन्तु जब उसे धर्म समझ कर आचरण किया जाता है तो सम्यग्दर्शन भी नष्ट हो जाता है। अतएव हिंसा को पाप समझ कर अपने समकित की रक्षा करो और त्याग कर चरित्रशील बनो। यह मुक्ति का मार्ग है और अक्षय कल्याण का पथ है। सज्जनो! अपने जीवन को ऊचा उठाओ, पवित्र बनाओ और प्रभु का स्मरण करो, गुणगान करो। जो ऐसा करते है, वे ससार-सागर से पार हो जाते है।

ब्यावर
१६-८-५६

: २ :

रोना त्यागो

वीर. सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधा संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नमः ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्ति कान्तिनिचय हे वीर ! भद्रं दिश ।।

× × ×

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका,
पञ्चैते परमेष्ठिन प्रतिदिन कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।।

उपस्थित सज्जनो,

यह जीवात्मा अपने सहज स्वाभाविक शुद्ध रूप से सिद्ध के समान होने पर भी अनादिकाल से भव रूपी विकट अटवी में भटकता फिरता है । भटकते-भटकते एक नही, हजारो और लाखो भी नही, किन्तु अनन्त-अनन्त जन्म गुजर गये है । इस जीव ने उन अतीत अनन्त जन्मो मे अनन्त-अनन्त यातनाए भोगी है, दुस्सह शारीरिक और मानसिक व्यथाए सहन की है । यह भाति-भाति की आकुलताओ, व्याकुलता ओ भाजन बना है । बेचैन हुआ, घबराया और पीडित हुआ है । सौ-सौ बार इसने दु खो से छुटकारा पाने की कामना

को। प्रत्येक समय और प्रत्येक जीवन में इस जीव का यही एकमात्र ध्येय रहा कि मैं किस प्रकार सासारिक व्यथाओ से अपना पिंड छुडाऊ। व्यथाओ से छुटकारा पाने के उद्देश्य से उचित और अनुचित कार्य करने में कुछ भी कसर न रक्खो। इस जीव की सदैव यही भावना रही कि किसी भी उपाय से मुझे राहत मिले, आराम मिले।

दु खो से छुटकारा पाने और सुख प्राप्त करने के लिए ससारी जीव ने क्या नही किया ? उसने अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण किया, अपेय पदार्थों का पान किया, निन्दनीय और अनुपसेव्य वस्तुओ का सेवन किया। अडे चूसे, मास खाया, मदिरा का पान किया, अपने दु ख की निवृत्ति के लिए दूसरो के प्राण लूटे, उन्हे सताया, घायल किया और उनके शरीर का नाश किया। अपने स्वार्थ के लिए दूसरो के दु ख को दु ख नही समझा और सुखो को सुख नही समझा। इस प्रकार ससार में कोई ऐसा पाप नही, जिसका इसने सेवन न किया हो और इस सब प्रयास के पीछे उसकी एक ही धारणा रही कि किसी न किसी प्रकार मुझे सुख की प्राप्ति हो।

किन्तु हा हन्त ! इस जीव का यह प्रयास सफल न हो सका। आज तक यह कष्टो और पीडाओ से छुटकारा नही पा सका। यही नही, इसके प्रयासो का फल विपरीत ही हुआ। इसने दूसरो के प्राणो का सहार किया, उनके जीवन की आबाद बस्ती को उजाड दिया, बर्बाद कर दिया और अपने आपको आबाद करना चाहा, दूसरो को उखाड कर अपने को बसाना चाहा और जैसे-जैसे इसने मूढता के कारण, अज्ञान के कारण या विवेकशून्यता के कारण अपनी पीडा की निवृत्ति के उपाय किये, तैसे-तैसे दु खो की सृष्टि घटने के बदले बढती ही चली गई। इसका कारण यही कि मूढता

के कारण इस जीव के प्रयास उलटी दिशा मे चले, इसने विपरीत मार्ग पर कदम बढाया और नासमझी से ऐसे कार्य किये जो दुःखो की वृद्धि के कारण थे। आखिर कारण के अनुरूप ही कार्य होता है, फिर भावना कैसी भी क्यो न हो।

सज्जनो ! यदि दूसरो को दुःख देने से और उनके प्राण लेने से सुख की प्राप्ति सभव होती तो फिर दुःखो से निवृत्ति पाने के लिए किसी को धर्म-साधना करने की आवश्यकता ही क्या थी ? दूसरो को दुःख देना अपने लिए दुःख के बीज बोना है। जैसे बबूल के वृक्ष से मधुर आम्रफल की प्राप्ति सभव नही है, उसी प्रकार पर को पीडा पहुचाने से सुख की प्राप्ति सभव नही है। इस प्रकार इस जीव ने काम तो सुख प्राप्त करने के लिए किये, किन्तु दूसरो को दुःख देकर अपने दुःख बढा लिये। इसने शारीरिक दुःख मिटाने के लिए अखाद्य पदार्थ खाये, अपेय पीये और शराब पी, कि दुःख मिट जायगे, निमोनिया मिट जायगा, कॉडलीवर ऑयल अर्थात् मच्छी का तेल पिया कि ताकत आ जायगी, पचेन्द्रिय जीवो का घात किया, अपने स्वार्थ-पोषण के लिए, अपने आराम के लिए और अपने जीवन को कायम रखने के लिए दूसरो के जीवन को जीवन नही समझा, पराये प्राणो को प्राण नही समझा।

आपने सुना होगा और 'जैनप्रकाश' मे पढा होगा कि भारत-सरकार ने लाखो बदर अमेरिका पहुचाये है। वहा उन निरपराध मूक प्राणियो को इजेक्शन लगाये जाते हैं, जिससे वे तडफ-तडफ कर मर जाते है और फिर उनके शरीर मे से ऐसे-ऐसे अंश लिये जाते है, जिनसे तरह-तरह की ओषधिया तथा इजेक्शन निर्माण करने के लिए परीक्षण किये जाते है।

सज्जनो ! जरा सोचो तो सही कि आज का मनुष्य कितना निर्दय और क्रूर हो गया है कि अपने सुख के लिए दूसरे प्राणियो को गाजर-मूली की तरह काटते भी सकोच नही करता। ऐसे-ऐसे नृशसतापूर्ण और निर्दय कृत्य करके भी मनुष्य आज सुख की तलाश में है और शान्ति की गवेषणा मे अभिरुचि रखता है तथा आराम पाने का इच्छुक है।

ओ सुखाभिलाषी ! इन कारनामो से तुझे सुख प्राप्त नही होगा, बल्कि दु ख की दुनिया ही प्राप्त होगी।

ओ पापी ! अपने मगलमय भविष्य की कामना से प्रेरित हो कर, डाक्टरी की परीक्षा पास करने के लिए तूने कितने ही खरगोशो, मेढको, पक्षियो, सापो तथा अन्य प्राणियो को तडफा-तडफा कर काटा, छेदा, भेदा और मार डाला। इतना ही नही, अपने स्वार्थ के लिए, अपने मनोरजन के लिए, क्षण भर के आनन्द के लिए, अजगरो, शेरो, हिरनो, ह्वेल मछलियो तथा अन्य मछलियो को मारा, उनका शिकार किया, खाया या चर्बी निकालने के काम मे तथा खालो के काम में लिया। उनकी चर्बी निकालकर तथा मास को डिब्बो मे भर-भर कर देश-विदेश मे भेजा।

सज्जनो ! अपने सुख के लिए मनुष्य ने कोई भी पाप करना शेष नही रक्खा। भयानक से भयानक और घोर से घोर पाप करने में मनुष्य नही हिचकता।

किन्तु यह सब मूढ दशा है। यह सब सुख प्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयास वृथा है, विपरीत है। इनसे सुख के बदले दु खो की परम्परा ही बढती है। इसीलिए ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि अखाद्य के खाने से, अपेय के पीने से तथा इनका

व्यपार करने से तेरा दु ख दूर होने वाला नही है। अगर साता-वेदनीय कर्म का उदय होगा तो राख की एक चुटकी से भी तुझे आराम हो जायगा। अतएव विवेकवान् आत्माए, जिन्हे हिंसा-अहिंसा, धर्म-अधर्म तथा कृत्य-अकृत्य का बोध प्राप्त है, इन पाप कर्मों से अलग रहती है। वे पाप का सेवन नही करती और न पापजनक पदार्थों का व्यापार ही करती हैं। जो लोग इन पापमय पदार्थों का सेवन नही करते, उन्हे क्या आरोग्य लाभ नही होता ? वे सब क्या मर ही जाते है ? नही। वल्कि अनुभव तो यह बतलाता है कि वे उन पदार्थों का सेवन करने वाले पापियों से अधिक दीर्घजीवी और स्वस्थ होते है।

तो मै कह रहा था कि मनुष्य सुख की तलाश मे तो चला किन्तु रास्ता उसने उलटा पकड लिया। जाना तो चाहिए था उसे किसी सरोवर के पास, जलाशय की ओर, जहा पीने को पानी मिलता, वृक्षो की ठडी छाया मिलती और राहत मिलती, शान्ति मिलती, मगर मूढ जीव उस ओर नही गया। उसने रेगिस्तान का मार्ग पकड लिया। ऐसी स्थिति में आप समझ सकते है कि उसकी पिपासा, उसके शरीर का दाह और परिताप कम होगा या अधिक बढेगा ? नि सन्देह उसकी वृद्धि होगी क्योकि उसने रास्ता ही ऐसा पकडा है। उस रास्ते पर चलकर वह शान्ति नही पा सकता।

अतएव शास्त्रो मे कहा है कि यदि प्राणी जीवहिंसा करता है अपने मान के लिए, पूजा-प्रतिष्ठा के लिए और मानता है कि ऐसा करने से मेरी व्यथाओ का अन्त आ जायगा, विपत्तिया टल जायेगी, मेरे दु खो का शमन हो जायगा तो यह उसका एकदम मिथ्या विचार है। आज बहुत-से लोग अपनी सतान की खैर मनाने के लिए, परिवार और जाति की खैर मनाने के लिए

कल्पित देवी देवताओ के सामने हजारो पशुओ की बलि चढा देते हैं, पत्थर का कलेजा करके उन मूको को गर्दनो पर तलवार चला देते है और खून के उस उफनते हुए नाले में से देवी पर छीटे देते है और अपनी खैर मनाते है। यही नही, दशहरे का दिन आता है तो मोटे-मोटे महिषो की बलि देते है। क्या यह सब धर्म है ? क्या यही धर्मप्रधान भारत भूमि की सस्कृति है ? यह मानवीय सभ्यता है ? नही। इन दुष्कृत्यो से भारत को सभ्यता कलकित होती है। धर्मसस्कृति के लिए अगर कोई बडे से बडा कलक है तो यही है। इससे बढ कर कलक दूसरा नही हो सकता। निरपराध जीवो का घात करना मनुष्यो के लिए घोर लज्जा को बात है।

गत वर्ष जोधपुर में मेरा चौमासा था। वहा मैंने सुना कि दरबार की ओर से किले पर एक पाडा खासतौर से दशहरे के लिए ही पाला जाता है और फिर उस बहुमूल्य पाडे को शराब पिला कर देवी के सामने तलवार के घाट उतार दिया जाता है। बाद मे उसका धड और सिर किले के बुर्ज से फेक दिया जाता है, जिसे भगी वगैरह ले जाते है। इस प्रकार के नृशस कृत्य करके वे राजपूत, क्षत्रियपुत्र अपने क्षत्रियत्व का गौरव समझते है। कहा तो भारत की वह परम्परा, जिसके अनुसार क्षत से अर्थात् घाव से त्राण या रक्षण करने वाले को क्षत्रिय कहा जाता था और कहा इस प्रकार की कायरतापूर्ण हत्या करने में क्षत्रियत्व का गौरव समझना ? मूक और साधनहीन पशु को हत्या करना कहा की बहादुरी है ? ऐसा करने में क्या वीरता है ? किन्तु खेद है कि आज ऐसे कामो में ही क्षत्रियत्व रह गया है। आज के क्षत्रिय तो 'क्षत्रिय' शब्द के व्याकरणसगत अर्थ को ही भूल गये है।

सज्जनो ! विशेष खेद का विषय तो यह है कि उस दिन बहुत-से जैनी भी उस मूक प्राणी के वध को देखने जाते है। जब जल्लाद का रूप धारण करके, हाथ में नगी तलवार लेकर वह क्षत्रिय पाडे के सामने आता है, उस समय वह पाडा थर-थर कापने लगता है और अपने प्यारे प्राणो की रक्षा के लिए छटपटाता है। मारने वाला उसे नरक का परमाधमी ही दिखाई देता है। उस समय उस भैंसे की मौत के दृश्य को देख कर उसकी आत्मा को टटोलने वाला और न्याय करने वाला कोई हो तो वही उसके दुःख को कह सकता है और उसकी हैरानी तथा परेशानी का अनुभव कर सकता है। वह यमराज के समान उस जल्लाद को देखता है और कितना भयभीत होता है ! मगर बेचारा लाचार है। जकडा हुआ है, बधा हुआ है, विवश है ! किन्तु हृदयहीन तमाशबीन उसकी मौत देखने जाते है। कहावत है—'चिडियो की जान गई और गवारो का तमाशा !'

अरे लोगो ! तुम तमाशा देखने जाते हो ! एक निर्दोष, असहाय वाचाहीन प्राणी के प्राण लेना तुम्हारे लिए तमाशा है ! यह अविवेक की पराकाष्ठा है। मनुष्य के अत्याचार की सीमा है !

सज्जनो ! ऐसी जगह जाने से परिणामधारा विपरीत दिशा मे बहने लगती है। यही भावना होने लगती है कि कब तलवार का वार हो और कब हम सिर और धड को अलग-अलग हुआ देखें। सामने जैसा व्यापार होता है, अक्सर उसी के अनुरूप भावना बने बिना नही रहती।

नगरो में श्मशान में लकडियो की टाल होती है। गावो मे तो लोग अपने घर से लकडिया ले जाते है, किन्तु शहरो में ऐसा

नही होता। बड़े शहर मे पता ही नही चलता कि कौन कब मर गया और फिर शहरी लोग कुछ खुदगर्ज भी होते है। उन्हे अपने पडोसी को भी सभालना दूभर होता है।

हा, तो शहर के बाहर श्मशान में जिसकी टाल है, जिसने मुर्दों को जलाने की लकडिया बेचने का धधा अपनाया है, उस व्यक्ति की कैसी भावना हो सकती है, यह आप स्वय सोच सकते है। इसके लिए न तो मुझसे पूछने की आवश्यकता है, न किन्ही पडितजी को बुलाने की आवश्यकता है और न शास्त्र के पन्ने पलटने की। जो चादी, सोने या कपडे की दुकान करता है, उसके यहा उसी के ग्राहको का आना स्वाभाविक है। उसे अपने माल की अधिक से अधिक बिक्री होने की भावना हो, यह स्वाभाविक है। प्रत्येक व्यापारी राजा भरत तो हो ही नही सकता कि सामने के दृश्यो का और घटनाओ का उसकी मनोवृत्ति पर कुछ असर ही न पडे और वह सर्वथा अलिप्त बना रहे।

मनुष्य की भावना उसके दैनिक कर्त्तव्य के अनुरूप बन जाती है और छद्मस्थ उस असर से वह प्राय बच नही सकता। हमारा काम है धर्म की प्रवृत्ति करना, भूले-भटके लोगो को राह दिखलाना। तो यही हमारी दुकान है और हम दुकानदारो की यही भावना रहती है कि अधिक से अधिक ग्राहक हमारे पास आवें, शास्त्रो का श्रवण करें, हम से कुछ लेवें, जिससे उनका कुछ कल्याण हो। इस प्रकार हमारा व्यापार धर्म का है और वह धर्मात्मा ही कैसा, वह धर्म का अधिष्ठाता ही क्या, जिसके हृदय में धर्मवृद्धि की भावना न हो। तो मनुष्य जैसा-जैसा व्यापार करता है, जैसी-जैसी क्रियायें उस के सामने होती है, उसका जीवन भी तदनुरूप ही हो जाता है।

तो आप समझ सकते है कि श्मशान की टाल वाले की भावना कैसी होती होगी ? वह यही चाहता होगा कि अधिक से अधिक लोग मरे और अधिक से अधिक मेरी लकडिया बिकें। इस प्रकार की दुर्भावना होना महान् पाप है। अतएव भद्रशील श्रावको को इस तरह का कोई काम नही करना चाहिए जिससे पापमय भावना उत्पन्न हो और नीची गति मे जाने की सामग्री जुटे।

सज्जनो ! सुनाने का मुझे कोई मर्ज नही है कि मुझे सुनाना ही पडे। किन्तु सुनाने का मेरा उद्देश्य यही है कि आप कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को समझ सके, अपने कर्त्तव्य को निश्चित कर सकें, उस पर दृढ रहने की भावना बना सकें, अकर्त्तव्य को तिलाजलि दे सके, अपने जीवन को पवित्र बना सकें और आत्मा का कल्याण कर सके।

कोई पथिक जब रास्ता पूछता है, तो उसका कर्त्तव्य यही हो जाता है कि मालूम होने पर वह गलत रास्ते को छोड दे और सही मार्ग पर चल पडे। यदि किसी ने हितबुद्धि से रास्ता बतला दिया, जो साफ है और जहा प्यास लगने पर पानी पीने के लिए सरोवर मौजूद है, वर्षा से बचने के लिए मकान है और धूप से बचने के लिए छायादार वृक्षो की कतार खडी है, जहा चोरो-लुटेरो का भय भी नही है, तो वही रास्ता चलने योग्य है। फिर भी कोई दुराग्रही उसपर न चलकर गलत और कटकाकीर्ण रास्ते पर ही चलता है और अपनी वक्र चाल नही छोडता, बाह पकडकर सीधे रास्ते पर चला देने पर भी गलत रास्ते पर ही चलता है, तो समझ लीजिये कि वह भाग्यहीन है और उसका भविष्य सुखमय नही, दुखमय है। इसका कारण यही है कि उसकी मति खोटी है।

ब्यावर वालो और ब्यावर वाली बहिनो ! मै एक बार नही अनेक बार दोहरा-दोहरा कर, गला फाड-फाड कर कह रहा हू कि आप हिंसामय धर्म मानने के गलत राह पर मत चलो। यह कटकमय मार्ग है और इस मार्ग पर जाओगे तो तुम्हारे पैरो में काटे चुभ जायेगे और लुटेरे तुम्हारे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य, रूप और धन को लूट लेंगे ! किन्तु बडा खेद है कि एक पथ-प्रदर्शक शुद्ध भावना से तुम्हे पथप्रदर्शित कर रहा है फिर भी तुम मोक्ष-मार्ग के पथिक कहला कर भी विपरीत मार्ग पर ही चल रहे हो । मुड-मुड कर गलत ही राह पकड़ते हो । अगर आप की यही वृत्ति और प्रवृत्ति है तो पथ-प्रदर्शक का क्या दोष है ? यदि पथिक का भाग्य विपरीत है, उसके भाग्य मे ठोकरे खाना है और माल लुटवाना है तो पथ-प्रदर्शक क्या करे ?

माताओ और भद्र पुरुषो ! मैं पुन. पुन. कह रहा हू कि मिथ्यात्व का मार्ग तीक्ष्ण कण्टको से आकीर्ण है। उस मार्ग मे भयानक शूल बिछे है। वहा काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहकार वगैरह लुटेरे परम आत्मिक-धन लूटने को उद्यत खडे है। ये लुटेरे बडी हिकमत से लूटते है ।

सज्जनो ! मिथ्यात्व का रास्ता खतरे से खाली नही है। जो इस पर चले वे अपना सर्वस्व गवा बैठे। बडे-बड़े ज्ञानी, ध्यानी, चतुर, होशियार और विज्ञानी भी लुट गये। चार ज्ञान के धनी और पूर्वों के पाठी भी लुट गये। चार ज्ञान और चौदह पूर्वों के धारक राहगीरो पर मिथ्यात्व रूपी लुटेरो के नेता ने आक्रमण किया। अपना जोर दिखलाया और फिर क्षण भर में ही उनके परम-धन को लूट कर बर्बाद कर दिया। आखिर उन पथिको को मर कर नरक और निगोद में शरण ग्रहण करनी पड़ी।

ऐसी उच्च कला पर पहुचे हुए पथिक क्यो नरक में नीचे चले गये ? कारण यही कि ज्ञानादि की जो सम्पत्ति उन्हे ऊचे ले जाने वाली थी, वे उसे लुटा चुके। जब बडे बडे होशियार भी लुट जाते है तो साधारण जनो का तो पूछना ही क्या है ?

किसी समय चार चोर चोरी करने, पराया माल लूटने को, एकमति धारण करके चले। उन्होने सोचा—भैया, आजकल धधा तो है नही, अतएव जीवन-निर्वाह करने के लिए कही से माल ही लूट लाये। आखिर जीवनयापन करना ही है और उसके लिए धन चाहिए और जब प्रामाणिकता से धन नही मिलता तो लूटपाट ही सही ! ऐसा विचार करके वे चल पडे।

चारो चोर नगर मे प्रविष्ट हुए। सबने लम्बे-लम्बे रगीन कुर्त्ते पहन लिये। हाथ में मोटे-मोटे मणियो की मालाए ले ली। तिलक-छापा लगा लिया। मस्तक पर जटा धारण कर ली। ऋषियो-मुनियो की सी वेष-भूषा और चाल-ढाल बना ली। तत्पश्चात् एक तो दरवाजे के बाहर बैठ गया, दूसरा कुछ दूरी पर दरवाजे के भीतर रास्ते पर बैठा। इसी प्रकार तीसरा और चौथा भी कुछ-कुछ फासले पर जम गया। वे बगुला-भक्ति करने लगे। शहर में स्त्री-पुरुषो का आवागमन चालू हो गया।

प्रात काल का समय था। जो भी कोई उधर होकर निकलता, पहला उसे सुनाकर कहता—'दामोदर दामोदर।' जब वह राहगीर कुछ आगे बढता और दूसरे के पास पहुचता तो वह कहता—'हरे हरे।'

जाने वाले सोचते—अहो ! अहोभाग्य है हमारे कि आज प्रभात काल [illegible] परमात्मभक्त महात्माओ के दर्शन हुए।

उन्होने भक्तो की ऐसी मुद्रा बना ली थी, मानो परमात्मा के साक्षात् चेले हो या प्राइवेट सेक्रेटरी ही हो।

जब राहगीर और आगे बढते और तीसरे महात्मा के पास पहुचते तो वह जप करता सुनाई देता—'ऊ वृन्दावन, वृन्दावनम्।'

यह सुनकर भक्तहृदय खिल उठता। उसकी आत्मा में बडी प्रसन्नता होती। और ज्यों ही वह दरवाजे के बाहर पहुचता तो वहा चौथा महात्मा 'विष्णुधाम, विष्णुधाम' की ध्वनि सुनाता। राहगीर भक्त भक्ति से गद्गद होकर महात्मा के चरणो पर गिर पडता।

सज्जनो! जो चोर 'दामोदर-दामोदर' बोल रहा था, वह अपने काम मे बडा होशियार था। वह दूर तक दृष्टि डाल कर पहचान लेता था कि आने वाले के पास दाम-माल है या नही है। जिसके पास दाम होता, उसे देखकर वह 'दामोदर' की रट लगाता और अपने दूसरे साथी को सूचना दे देता था कि 'हरे-हरे' अर्थात् हरण कर लो, हरण कर लो। तीसरा चौथे को सूचित करता कि इसे यहा मत लूटो, किन्तु वन मे ले जाकर लूटना। इसे निर्जन स्थान में जाने दो, जहा लूटते समय कोई देख न सके। चौथा जब तीसरे से सब सूचना पा लेता तो 'विष्णुधाम-विष्णुधाम' कह कर अपने चरणों में पडे हुए भक्त को नशीली चीज सु घा कर बेहोश कर देता और बडी होशियारो से निर्जन स्थान मे ले जा कर और उसका धन-माल छीनकर वही उसका खातमा कर देता। तब पुन. आकर अपने आसन पर जम जाता।

सज्जनो! ससार मे मिथ्यात्व का सेवन करने वाले लुटेरो का जाल-सा बिछा है। वे भक्त के वेष में ठग है। त्यागी के रूप में डाकू और लुटेरे है। दुनिया के भोले लोगो को पता नही कि

हमे लूटने के लिए ही ये भक्त का रूप बना कर बैठे है। अतएव वे उनके चगुल मे फस जाते है, अपना माल लुटा देते है और प्राण भी गवा बैठते है। अतएव आप लोगो को इनसे होशियार रहने की निहायत जरूरत है। कही ऐसा न हो कि इनके बहकावे मे, इनकी सजावट और दिखावट के चक्कर में फस कर धोखा खा जाओ और अपने शुद्ध श्रद्धान, ज्ञान एव चारित्र्य रूपी अनमोल सम्पत्ति को गवा बैठो।

तो ज्ञानी पुरुष बतलाते है कि यह जीव सुख की खोज में चला तो उसे साफ-सुथरा, विघ्नविहीन रास्ता लेना था, जिससे वह सुख के अक्षय भण्डार को प्राप्त कर सकता, किन्तु उसने रास्ता मिथ्यात्व का ले लिया। परिणाम यह हुआ कि अपने लक्ष्य पर पहुचना तो दूर रहा, उल्टे जन्म-जन्मान्तर मे दुखी होना पडा।

मै आपको कहा रहा था कि मनुष्य जैसा व्यापार करता है, जैसी तिजारत करता है, उसके भाव भी वैसे ही हो जाते है। अतएव शास्त्रकारो ने श्रावको के लिए व्यापार का एकदम निषेध तो नही किया, परन्तु उसकी मर्यादाए बाध दी है और घोर पापजनक व्यापारो का प्रतिषेध कर दिया है। श्रावक को ऐसा व्यापार नही करना चाहिए जिससे उसकी आत्मा कलुषित हो और महापाप होना हो। उदाहरणार्थ—शहरो मे अर्थी बेचने वाला व्यापारी सोचता है—बडी-बडी अर्थिया तो बिक गई, परन्तु यह छोटी-छोटी कब बिकेगी ? अर्थात् वह छोटे छोटे मरने वालो की कामना एव प्रतीक्षा करता रहता है।

तो मै कह रहा था कि जहा आने-जाने से और जिसके सम्पर्क एव ससर्ग से पापमय बुद्धि उत्पन्न होती हो, भावना मे मलीनता आती हो, श्रावक को वहा नही जाना चाहिए।

प्रतिवर्ष रामलीला का मेला होता है। उस अवसर पर एक रावण बनाया जाता है और उसके भीतर बारूद के गोले रख दिये जाते हैं। बाजारों में प्रदर्शन करते हुए, नाना प्रकार के खेल-तमाशे करते हुए, गाजे बाजे के साथ ले जाते हुए लोग उस रावण को मैदान में रख देते हैं। तब उस रावण को जलाने के लिए ज्योतिषी जी मुहूर्त निकालते हैं। पता नहीं, पण्डित जी की कौन सी लाल किताब में लिखा है कि अमुक समय पर उस बनवटी रावण को जलाया जाय! और जब नकली बने हुए राम-लक्ष्मण आते हैं, तो उनकी आरती की जाती है। फिर वे नियत मुहूर्त में उस रावण पर तीर चला कर उसे मार देते हैं। रावण को उसी समय आग लगा दी जाती है। उसमें से जो लपटें निकलती हैं, वहां उपस्थित बहुसंख्यक लोग उन लपटों को देख कर साल भर की खुशाली का अनुमान लगाते हैं। दर्शक लोग रावण का मरना और जलना देख कर हर्ष से नाच उठते हैं और सोचते हैं—कब यह जले और कब हम घर जावें।

सज्जनो! इस प्रकार जो लोग समुदाय के रूप में मिलकर एक-सी भावना करते हैं, वे जीव सामुदायिक कर्म का बंध करते हैं और जब वे इकट्ठे होकर कर्म बांधते हैं तो इकट्ठे ही भोगते भी हैं। भूकम्प आ जाना, जहाज डूब जाना, हवाई जहाज का गिर पडना, ज्वालामुखी का फूट पडना, परमाणु बम का विस्फोट हो जाना, शहर या ग्राम में आग लग जाना, नदी में बाढ आ जाना और इन दुर्घटनाओं के फलस्वरूप हजारों-लाखों मनुष्यों, स्त्रियों, बच्चों और पशुओं आदि का मर जाना, डूब कर, जलकर या दब कर चल बसना, यह सब सामुदायिक कर्म बांधने का फल है।

अभी-अभी देश का जो बटवारा हुआ, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में देश दो टुकडो में बाट दिया गया और उस अवसर पर जो सीधी कार्रवाई हुई और उसमें एक साथ अनगिनत स्त्री, पुरुष और बच्चे मार डाले गये, सरेआम कत्ल कर दिये गये और लाखों की सख्या मे हत्याए हुई। यह भी समुदायी कर्म बाधने का फल समझना चाहिए। उस समय मनुष्य मनुष्य का प्राणलेवा शत्रु बन गया। क्या इधर और क्या उधर दोनो ओर जालिमो ने खून का बदला खून से लेना शुरू किया। जहा कही चौडी-चौडी नदिया आती, वही आती-जाती रेलें खडी करके स्त्रियो, पुरुषो और बालको को तलवार आदि से काट-काट कर नदियो में फेक दिया। मनुष्यो के रक्त से नदियो का जल भी लाल-लाल हो गया। कत्ल होते हुए बहुत-से मैंने अपनी आखो से देखे हैं, अगर किसी ने उन आततायियो को समझाने का प्रयत्न किया तो उनका भी तिया-पांचा साथ ही हो गया। उस समय लोगो मे ऐसी बर्बरता आ गई थी। दोनो तरफ बदला लेने के लिए खून खौल रहा था।

सज्जनो ! इस प्रकार की दुर्घटनाए, सामूहिक हत्याए, एक साथ पाप मे खुशी मान कर कर्मबंध करने से होती है। इस प्रकार बाधे हुए कर्मों का फल एक साथ भोगना पडता है।

मनुष्य किसी अवसर पर कितना विकराल हो जाता है और कभी-कभी कितना सहिष्णु भी हो जाता है। सच तो यह है कि मनुष्य जैसा धर्मी और मनुष्य जैसा पापी इस पृथ्वी की पीठ पर दूसरा कोई प्राणी नहीं है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योकि मनुष्य विश्व का सब से अधिक शक्तिशाली प्राणी है। वह अपनी शक्ति का पूरी तरह सदुपयोग करता है तो सबसे बढ़ कर धर्मी

होता है और जब दुरुपयोग करता है तो पाप के क्षेत्र मे भी सबसे आगे आ जाता है।

उस समय की एक घटना अब तक भी मेरे मन पर छाई हुई है। बहुत-से मुसलमान पूर्वी पजाब से पश्चिमी पजाब (पाकिस्तान) जा रहे थे। वे सब कुछ माल-असबाब छोड-छोड कर प्राण बचाकर भयाकुल होकर जा रहे थे। उनकी एकमात्र यही भावना थी कि किसी प्रकार हिन्दुस्तान की हद से जीते जी निकल जायें और अपने जीवन को सुरक्षित कर लें। एक रात वे लोग नदी के किनारे सो गये। भाग्य की बात ही समझिये कि उसी रात, इतनी वर्षा हुई कि नदी मे बाढ आ गई और प्राण लेकर भागने वाले हजारो मनुष्य सोते के सोते रह गये और बह गये।

कोई प्रश्न कर सकता है कि यह घटना क्यो घटित हुई? क्यो, कैसे वे सब एक साथ मर गये? इसका सीधा और सक्षिप्त सा उत्तर है कि वे समुदायी कर्म के उदय से मरे। इस प्रकार की आपत्तियो और मुसीबतो से बचने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है, विवेक की अपेक्षा है।

सज्जनो! ऐसे-ऐसे कारणो से यह जीव कर्म का बध कर लेता है और फिर आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करता हुआ मरता है तो नरक में जाता है। इसलिए अपनी मनोवृत्ति को, चित्त के व्यापारों को, क्षण क्षण में होने वाली मानसिक परिणति को बडी सावधानी के साथ सभालने की आवश्यकता है। हमारा जीवन पूर्णरूप से सुनियन्त्रित होना चाहिए। मगर यह सब बातें सुनावे तो किसको सुनावे? जब कुए मे ही भग पड गई हो तो छाने भी कैसे? यदि लोटे में पड़ी हो तो उसे छान भी लें और उसका

कुछ नशे का अश कम भी हो जाय। आज ससार की यही दशा हो रही है।

अब मैं आपका ध्यान एक कुरूढि की ओर आकर्षित करना चाहता हू, जो समाज मे प्रचलित है। कुए मे पडी हुई भग को जो भी पी लेता है, वही बेमान हो जाता है। आपके यहा यह रिवाज प्रचलित है कि किसी के घर जब मृत्यु हो जाती है तो दूसरे सबधी, स्नेही तथा अन्य लोग मोरवाण (मुगाण) के लिए आते हैं। मरने वाला तो मर जाता है, चला जाता है, किन्तु किसी के घर में अकेली औरत बचती है, किसी के घर बच्चे ही शेप रह जाते है और किसी के पीछे बडा परिवार भी होता है।

यह कहने की आवश्यकता नही कि इस ससार मे मृत्यु अनिवार्य है और जीवन की चरम परिणति मृत्यु ही है। प्रत्येक जन्म लेने वाले को एक-न-एक दिन मरण का शिकार होना पडता है। अतएव मृत्यु के समय मरने वाले को और उसके सबधी जनो को मृत्यु एक सहज व्यापार है, ऐसा समझ कर ही ग्रहण करना चाहिए। खेद, शोक या विलाप नही करना चाहिए। ऐसा करने से कुछ हासिल भी नही होता। हाँ, हानि अवश्य होती है। आर्त्तध्यान करने से अत्यन्त अशुभ कर्मों का बध होता है और उनका फल भविष्य मे अतिशय कटुक होता है। मैं जानता हू कि मोह पर विजय प्राप्त करना प्रत्येक प्राणी के लिए सरल नही है, तथापि उसे जीतने का प्रयत्न करना ही चाहिए। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझने से मोह और शोक को जीता जा सकता है।

यह समझा जा सकता है कि जिस बहिन का पति उसे छोड कर परलोक चला गया है, उसका सहारा टूट गया, उसका सर्वस्व लुट गया और उसके मानो समग्र सुख समाप्त हो गये हैं। अतएव

वह अपना रुदन नही रोक सकती और चाह करके भी आर्त्तध्यान से नही बच पाती। ऐसी स्थिति में उसके रिश्तेदारो और संबंधियो का यह कर्त्तव्य है कि वे आकर उसे सान्त्वना दे, संतोष दे और विश्वास दिलाए कि पति की मृत्यु के कारण उसे जीवन-निर्वाह में किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित न होगी और वे उसके सुख-दु ख की चिन्ता रक्खेंगे। वे उसे समझावे कि गई हुई वस्तु वापस आने की नही। लाख-लाख चेष्टा करने पर भी और आँसुओ की धारा बहा देने पर भी परलोक गया प्राणी लौट नही सकता। ऐसी स्थिति में तुम्हारा यही कर्त्तव्य है कि तुम धैर्य धारण करो। जी कडा करो और वियोग की पीडा को हिम्मत के साथ सहो। अपने छोटे-छोटे बच्चो की ओर ध्यान दो और इनका पालन-पोषण मन लगाकर करो।

इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर, हिम्मत बधा कर और उसके निर्वाह की समुचित व्यवस्था करके लोग चले जाते थे। यही मोरवाण का महत्त्व था। सामाजिक दृष्टि से इसकी बडी उपयोगिता और आवश्यकता थी।

किन्तु आज मोरवाण का असली अर्थ छोड दिया गया है और उसका विकृत रूप ग्रहण कर लिया गया है। लोग जब घर से मोरवाण के लिए रवाना हुए तो रोने का काम नही, स्टेशन पर उतरे तो देख कर कोई नही कह सकता कि ये मोरवाण के लिए आये है। बाजार में होकर गुज़रे तो रोने का काम नही, किन्तु ज्यो ही मृतक के घर के समीप पहुचे कि चिल्ला-चिल्ला कर रोना आरभ कर देते है, जैसे शृगाल जाडे के दिनो में झाडियो के बेर खा-खा कर 'हू-हू-हू' करते है। यह सच्चा रोना नही

है और इसमे कोई तथ्य भी नही है। यह दिखावा है, ढोग है, कपट है और लकीर का फकीर वन कर एक कुरूढि का पोपण करना है।

औरते जव रोने को जाती है तो दूर से ही अलार्म की घटी वजा देती है कि हम आ गई। वह वेचारी दुखियारी अकेली औरत उस समय रोटी वना रही है तो घटी सुनते ही, रोटी तवे पर सिकती हुई छोडकर आती है और मोर्चा सभाल लेती है। अगर वह न आवे तो मामला दूसरा ही हो जाता है। वही स्त्रिया आपस में वातें करने लगती है कि—अरी! मै तो गई पण वा रोई कोनी!

और फिर यह सिलसिला तो चालू ही रहता है। एक जत्था गया और दूसरा आया। दूसरा गया या न गया कि धावा वोलता हुआ तीसरा तैयार है। उस वेचारी को एक तो मानसिक दु ख और ऊपर से यह मोरवाण वाली न खाने देती है, न पीने देती है और न सोने देती है। नाम तो है मोरवाण का, परन्तु उसके शोक और दु ख को उलटा वढावा दिया जाता है। आवश्यकता होती है कि कलेजे में लगे घाव को भरा जाय, परन्तु उसे भरने के वदले और अधिक गहरा किया जाता है और शोक की कृत्रिम ढग मे उदीरणा की जाती है।

इस प्रकार रोने को वढावा देना महापाप है। जो इसे वढावा देती है, वे घोर पाप की भागिनी होती है। इस आर्त्तध्यान के फलस्वरूप उन्हे गहरी पीडाए, व्यथाए और मानसिक सताप सहन करना पडता है।

कही-कही तो विधवा वेचारी साल भर तक कोने में वैठी-वैठी सडती रहती है। समाज का यह रिवाज कितना हिंसापूर्ण

है ? इस रिवाज का शीघ्र से शीघ्र परित्याग कर देना ही उचित है। यह खोटा रिवाज कोई विधाता का विधान नही है कि बदला न जा सके। यह भी नही है कि इसे बदलने से आप अनन्त ससारी बन जायेंगे ! बल्कि इसका त्याग करने से धार्मिक लाभ ही होगा क्योकि आर्त्तध्यान करने और कराने से पापकर्म का ही बध होना है।

पजाब में भी इस प्रकार की कुरीतिया प्रचलित थी। वहा १३-१४ दिनो तक रोना-धोना चलता था। यह भी बुरा था, क्योकि आर्त्तध्यान तो थोडा-सा भी गति को विगाड देता है। जहर थोडा हो तो क्या मनुष्य के प्राण नही ले लेता या हानि नही पहुचाता ? अतएव वहा मैंने उपदेश दिया और समझाया कि रोना पाप है, अतएव अगर सर्वथा नही त्यागा जा सकता तो भी तीन दिन से अधिक दिनो तक रोने की प्रथा नही रखनी चाहिए और साथ ही बारह बजे से पहले नही रोना चाहिए, जिससे घर वाले आराम और शान्ति से भोजन तो कर लें। चाहे कैसी भी दु खप्रद मृत्यु क्यो न हो जाय, इस नियम का पालन करना आवश्यक होना चाहिए। भला यह क्या बात है कि न तो समय देखा और न असमय और तप्पड बिछाकर रोने बैठ गये ! इससे तो स्वर्गीय घर भी नरक बन जाता है। जहा रोना-पीटना और छाती कूटना नही, वही स्वर्गीय घर है। जहा रोना और पीटना है, वहा किसी को भी शान्ति नही। माता को रोते देख कर बच्चो को भी रोना आ ही जाता है। ऐसी अवस्था में दूसरे लोग भी कैसे प्रसन्न रह सकते है ? वहा का समग्र वातावरण शोकमय, विषादपूर्ण और आकुलताजनक बन जाता है।

अरे मानव ! तूने अमृत में क्यो विष मिला दिया और परिवार के जीवन को क्यो क्षत-विक्षत कर दिया ? क्यो जीवन को अभिशाप वना डाला ? क्यो सवको आर्त्तध्यान की अग्नि मे डाल दिया ? क्या यही तुम्हारी सामयिक पौषध अठाई वगैरह धर्मसाधना का फल है ?

समाज के जीवन में घर वनाकर घुसी हुई यह कुरूढिया जव तक दूर न होगी और जव तक विवेक को प्रधानता न दी जायगी और विवेक के उज्ज्वल प्रकाश में देख-कर ही प्रत्येक वस्तु को ग्राह्य न समझा जायेगा, तव तक सामाजिक जीवन उन्नत नही वन सकता और न व्यक्तिगत जीवन ही सुखमय हो सकता है।

जव शक्ति की दवा लेते हो और भीतर वीमारी है तो टोटल नुकसान का ही निकलेगा।

सज्जनो ! आर्त्तध्यान वढाना सम्यग्दृष्टि को शोभा नही देता। आप प्रतिदिन पढते है —

गई वस्तु सोचे नहीं, आगम-वांछा नाय।
वर्त्तमान वरतै सदा, सो ज्ञानी जग माय॥

इस दोहे को आप ऐसी तल्लीनता से वोलते हो और ऐसे मस्त होकर घूमते हो जैसे ताजिया निकालते समय मरसिए गाने में मुसलमान मस्त हो जाते है।

उपदेश-श्रवण की सार्थकता यही है कि उपादेय तत्त्व को जीवन मे उतारा जाय।

भला जो वस्तु रक्षा करते-करते भी चली गई, सभालते-संभालते और वनाये रखने की कोशिश करते-करते भी, रक्षा करने के जो उपाय किये-जा सकते थे, उन्हे करने पर भी न रही, तो

भैया ! रोने से क्या वह वापिस आ-जायेगी ? वह चली गई फिर लौट कर वापिस आने वाली नही है ।

और, यह चिन्ता भी मत करो कि अब आगे क्या होगा ? केवलियो ने अपने ज्ञान में जो देखा है, उससे विपरीत कुछ भी होने वाला नही है । या यो समझो कि जिसके जैसे कर्मों का उदय होगा, उसे वैसा ही फल मिलेगा । उसमे तुम्हारे चिन्ता करने या न करने से कुछ भी हानि-लाभ नहीं होगा । अत आगे-पीछे की फिक्र छोडो । मै तो यही सलाह दूंगा कि तुम वर्तमान की फिक्र करो । वर्तमान को सुधारने से भविष्य तो आप ही सुधर जायेगा ।

ओ पथिक ! ओ मुसाफिर ! जो रास्ता तूने पार कर लिया, तय कर लिया, वह तो पीछे रह गया, उससे तेरा सबध विच्छिन्न हो गया । उसके सबध में सोचने-विचारने से क्या होगा ? और जो मार्ग दूर है, तेरे नज़दीक नही है, उसकी ओर आखे फाड-फाड कर दूर तक देखेगा तो ठोकर लग जाएगी । इसलिए तू जहां चल रहा है, वही देख, जिससे ठोकर खाने से बच सके । ठोकर से बच जायेगा तो दूर का मार्ग, आगे का रास्ता तय करना कठिन न होगा । वह शीघ्र ही तेरे पास आ जायेगा । अगर तुम्हारा यह लोक अच्छा है तो परलोक भी अच्छा होगा और यदि यह लोक बिगडा है तो परलोक भी बिगडे बिना न रहेगा ।

बन्धुओ ! मैं आपको कहने जा रहा था कि इस प्रकार साल-साल भर रोना और दूसरो को रुलाना दोनो के लिए कर्मबध का कारण है । यह प्रथा द्रव्य से भी घातक है और भाव से भी हानिकारक है । कभी-कभी रोते-रोते बहिनें इतनी घबरा जाती है और उनके शरीर में इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि उनके

दूध में भी जहर पैदा हो जाता है। उस अवस्था मे वे अगर बच्चे को दूध पिला दे तो बच्चे का प्राणान्त तक हो सकता है।

मृतक के पीछे रिवाज के तौर पर रोना अतिशय निन्दनीय कुरूढि है और घोर हिंसा का कारण है।

एक बडी बुराई इस विषय मे यह है कि अगर कोई विवेक-शीला, धर्मज्ञा बाई हाय-हाय करके बनावटी रोना नही रोती तो उसकी प्रशसा करने के बदले दूसरी स्त्रिया उसकी निन्दा करने लगती है। तरह-तरह की बाते करती है। कोई कहती है—अरी, उसे तो रोना-पीटना भी नही आता! कोई कहती है—उसे अमुक के मरने का दु ख नही है! किन्तु बहिनो! तुम्हे ऐसा नही कहना चाहिए। हो सके तो उस बाई की दृढता, धीरता और सहनशीलता की प्रशसा करो। आर्त्तध्यान न करने की उसकी मनोवृत्ति की सराहना करो और उससे तुम अपने लिए सबक सीखो। समझो कि रोने से कर्म का और उसमे भी असातावेदनीय कर्म का बध होता है, जिसके कारण भविष्य में पुन रोने-पीटने के अवसर उपस्थित होते है। इस प्रकार तुम्हारा इस समय का रोना भविष्य के रुदन को आमन्त्रण देना है। यह पाप का कारण है। अनेक जन्म व्यतीत हो गये है रोते-रोते! जिनेन्द्र देव की वाणी का लाभ लेकर अब तो समझ से काम लो।

अगर इस पाप से पिण्ड छुडाना है और आर्त्तध्यान एव रौद्र-ध्यान से बच कर अपनी आत्मा को सुखी बनाना है तो इस कुरूढि को छोडो। कोरे लोकदिखावे के लिए महापाप मत करो।

यह सत्य है कि तुम गृहस्थ में बैठे हो और मोह के प्रबल बंधन को काट नही सके हो। इस कारण प्रिय जन का वियोग होने पर शोक और सताप होना स्वाभाविक है, परन्तु ऐसे अवसर

पर बुद्धिमत्ता से काम लो। रोने को रिवाज न बनाओ। रहीम कहते है —

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।

रहीम जी का कहना है, कि अपने मन के दुःख को मन में ही छिपा रक्खो, परन्तु रिवाज के अनुसार तो मन में दुःख न होने पर भी रुदन करके उसे प्रकट करना पडता है! यह कैसी विपरीत दशा है!

भाइयो और बहिनो को मिल कर इस प्रथा को मिटाने या फिलहाल कम करने के संबंध में विचार करना चाहिए। तभी इसमें सुधार हो सकता है।

मैने आपको मार्ग-प्रदर्शन कर दिया है। आपके हित की और धर्म की बात बतलाना मेरा कर्त्तव्य है। उसे प्रयोग में लाना आपका काम है। आप इस बुराई का त्याग करना चाहे तो यह बडा ही अनुकूल अवसर है। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ यहा उपस्थित है। अतः मैं तो यही परामर्श दूंगा कि इस कुप्रथा पर किसी न किसी प्रकार का प्रतिबन्ध अवश्य लगा देना चाहिए।

(सब बहिनो ने हाथ जोड कर प्रतिज्ञा कर ली कि हम मध्यान्ह मे एक से चार बजे तक के तीन घंटो के सिवाय किसी के यहा रोने और बैठने नही जायेंगी और चार मास से अधिक बैठक नही रक्खेगी।)

इसी सम्बन्ध में एक बात और कहनी आवश्यक है। किसी की मृत्यु के पश्चात् उस घर की महिला छः महीने अथवा साल भर तक मुनिदर्शन को और व्याख्यानवाणी सुनने को भी नही जाती है। यह भी बहुत बुरा रिवाज है। जब चित्त मे अशान्ति हो,

सन्ताप हो, आर्त्तध्यान हो, उस समय सतो का समागम और वीतराग की धर्मवाणी सुनना तो अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक है। वह आर्त्तध्यान को कम करने का उपाय है। उसे बद कर देना महान् पाप का कारण है। इससे धर्म की हानि होती है। जब खासतौर मे धर्म की आवश्यकता हो, उस समय उसका निषेध करना एकदम उलटी बात है।

बहिनो ! मै आपको इस बात का नियम करवाता हूँ कि जो बहिने दर्शन करने या व्याख्यान सुनने को तीन महीने के बाद या पहले आवें तो आप उनकी निन्दा या टीका-टिप्पणी नही करें।

(सबने हाथ जोड कर प्रतिज्ञा ली)

सज्जनो ! जीव मात्र सुख चाहता है, दु ख से बचना चाहता है और सुख के लिए ही प्रयत्नशील रहता है, परन्तु उसके प्रयत्न विपरीत दिशा मे होते हैं। वह काम हिसा के और दु ख के करता है किन्तु स्मरण रक्खो कि जो हिंसा करता है, रुलाता है, रोता है और अपने या दूसरे के चित्त को सताप पहुचाता है, वह दु'ख की ओर जा रहा है।

ऐसा जान कर आप अपने को धर्म के पथ पर लगाओ। जिन वचनो पर पूरी आस्था रक्खो, उनके अनुसार जीवन यापन करो और अपने आत्मिक गुणो को वृद्धि करो। ऐसा करोगे तो यहा भी सुख पाओगे और परलोक में भी सुखी होओगे।

ब्यावर
२०-८-५६

: ३ :

सम्यक्त्व-रक्षा

वीर. सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीर बुधा संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम. ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्ति कान्तिनिचय हे वीर ! भद्र दिश ॥

× × ×

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता. सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता.,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा पूज्या उपाध्यायका ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका,
पञ्चैते परमेष्ठिन प्रतिदिन कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥

उपस्थित बन्धुओ !

कल मैंने बतलाया था कि मनुष्य जब दुखो से व्यथित होता है, पीडित होता है, तब वह दुखो की निवृत्ति के लिए छटपटाता है, तिलमिलाता है और इधर-उधर भाग-दौड करता है। वह इस विचार में सलग्न रहता है कि किसी भी उपाय से मेरे दुखो का निवारण हो जाय। इस प्रकार की भावना होना स्वाभाविक है, क्योकि कोई भी मनुष्य अपने आपको दुख में नही देखना चाहता, इसी कारण वह दुख से बचने के लिए दौड-धूप करता है और जो उपाय उसकी समझ में आते है, करता है।

यह एक अटल सिद्धान्त है कि—'सर्वेसुखमिच्छन्ति' अर्थात् जगत् के सभी जीव सुख की ही अभिलाषा करते है। प्रत्येक प्राणी को सुख अनुकूल है और दु.ख प्रतिकूल है।

क्यो सव प्राणी सुख चाहते हैं और दु ख नही चाहते ? क्या आपने कभी इस वात पर विचार किया है ? आपको सुख ही क्यो इष्ट है ? दु.ख क्यो इष्ट नही है ? आप सोचते होगे कि यह एक नूतन और निराला प्रश्न है, मगर गभीरता के साथ आप इसका उत्तर खोजें।

वास्तविक वात यह है कि जीव यद्यपि विभाव मे परिणति कर रहा है, तथापि झुकाव उसका स्वभाव की ओर ही होता है। जान में और अनजान में जीव अपने स्वभाव की ओर ही वढना चाहता है। स्वभाव मे ही उसे शान्ति प्रतीत होती है। विभाव दशा में वह जाता अवश्य है, किन्तु उसे शान्ति वहा नही मिलती। वह विभाव से ऊव जाता है। दु ख आत्मा का विभाव है और सुख स्वभाव है। इसी कारण आत्मा ज्ञात-अज्ञात रूप मे सुख ही चाहता है, दु ख नही चाहता।

इस प्रकार सुख की स्पृहा आत्मा मे स्वभाव की प्रेरणा से ही है। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप वह चाहता है कि किसी भी साधन से और किसी भी मार्ग के अनुसरण से मुझे दु खो से राहत मिले और सुख की प्राप्ति हो जाय। इस इच्छा की पूर्त्ति के लिए वह भाति-भाति के साधन जुटाता है। प्रत्येक प्राणी इसी प्रयास में सलग्न है। परन्तु क्या प्रत्येक प्राणी सुख पा लेता है ? नही। सुख की स्पृहा सवमें समान होने पर भी और सवकी आत्मा मे अनन्त आनन्द का अक्षय और अव्यय भण्डार भरा होने पर भी सव जीव सुख प्राप्त नही कर पाते। जो जीव दु ख-निवृत्ति की ठीक दिशा

में चलता है, सही साधनो को अपना लेता है और जो वास्तव में ही दु खो की निवृत्ति करने वाले ठीक उपायो का अवलम्बन करता है, उसे जल्दी या देर से सुख की प्राप्ति हो ही जाती है। इसके विपरीत, जो गलत राह पर चलता है, उन्मार्ग पर चला जाता है और सही साधनो का प्रयोग नही करता, उसके दु ख की निवृत्ति नही होती। यही नही, कभी-कभी वह अपने विपरीत प्रयासो एव प्रयोगो से अपने दु खो की मात्रा को और बढा लेता है और यही कहावत चरितार्थ करता है —

विनायकं विकुर्वाणः कुर्यामास वानरम् ।

अर्थात्—बनाने चला गणेश जी और बना लिया बन्दर।

सज्जनो ! इस कथन पर अगर आप शान्ति के साथ विचार करेंगे तो आपके जीवन में एक अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न हो सकती है। यदि आप अपने प्रयासो को विवेक की कसौटी पर कसेंगे तो पता चल जायेगा कि आपके प्रयास क्यो सफल नही हो रहे है ? और क्यो विफल हो रहे है ? आपके ही क्यो, आज सारे ससार के सामूहिक प्रयासो को भी विवेक की कसौटी पर कसने की आवश्यकता है।

दुनिया समझती है कि वह बडी तरक्की कर रही है। रेल, तार, वायुयान, चित्रपट, टेलिविजन, परमाणु बम, उद्जन बम आदि-आदि असख्य आविष्कार जो मनुष्य ने कर लिये हैं, उनसे मनुष्य जाति का बहुत विकास हो गया है। सुख बढ गया है। परन्तु जनता के जीवन पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो समझते देर नही लगेगी कि यह दावा एकदम निराधार और खोखला है। विज्ञान के अन्वेषणो ने मानव जाति के सुख की तनिक भी वृद्धि

नही की है। यही नही, इनके फलस्वरूप दुःख और अशान्ति को ही बढावा मिला है। इस प्रकार चाहे समाज हो, चाहे राष्ट्र हो, चाहे व्यक्ति हो और चाहे विश्व हो, जब वह गलत रास्ते पर चल पड़ता है, उन्मार्ग पकड़ लेता है तो उसके दुःख की मात्रा और भी अधिक बढ जाती है और चौबेजी छब्बे बनने के बदले दुबे बनकर ही रह जाते है।

सज्जनो! आज का मानव जो साधना कर रहा है, वह अपनी-अपनी दृष्टि मे सुख के लिए ही कर रहा है किन्तु वह देखता तो यह है कि मैं सुख के उद्देश्य से साधना कर रहा हू, परन्तु यथार्थ में उसमे सुख है या नही? इस प्रश्न का निर्णय कर लेना बहुत आवश्यक है।

आज पशु मारे जाते है, धर्म के नाम पर पशुओ की बलि दी जाती है। किसी ने पचेन्द्रिय को मार दिया तो किसी ने एकेन्द्रिय जीवो के प्राण लूट लिये, किसी ने सेठ के हजार रुपये चुरा लिये तो किसी ने गरीब के दस रुपये चुरा लिये। जिसने साहूकार का धन चुराया है, वह भी चोर है और जिसने गरीब के दस रुपये चुराये है, वह भी चोर ही है। साहूकार तो फिर भी कमा लेगा या दूसरे उसकी सहायता कर देगे, किन्तु हाल-बेहाल होगा या दुर्दशा होगी तो उस बेचारे गरीब की ही होगी। सेठ तो कदाचित् अफसरो से मिल कर अपना माल वापिस भी करा सकता है, किन्तु मुश्किल है उस गरीब की, जिसकी सुनने वाला कोई नही।

पचेन्द्रिय जीव साहूकार के समान है, क्योकि उसे पाचो इन्द्रिया मिली है। वह समर्थ है, बलवान् है। परन्तु एकेन्द्रिय

वेचारा बहुत गरीब है ? जिसे पाच इन्द्रियो में से केवल स्पर्शेन्द्रिय ही प्राप्त है, सिर्फ शरीर ही मिला है, उसके पास ले-दे कर जीवन की यात्रा का साधन जो कुछ भी था, वह सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय ही थी । उसी से वह सास लेता है और अपनी जीवन यात्रा चलाता है । परन्तु जुल्मी ने उस बेचारे का वह साधन भी छीन लिया और बडे अफसोस की वात तो यह है कि उसने प्राण छीने भी तो निरर्थक, बिना प्रयोजन ?

भूख लगने पर भोजन बनाना ही पडता है । गृहस्थ है तो रहने के लिए मकान भी बनवाना पडता है । इन कार्यों में होने वाली हिंसा अर्थदड है । इस अर्थदड को भी सम्यग्दृष्टि समझता है कि यह आरभ है, हिंसा हो रही है और यह कर्मबध का कारण है ।

कल एक सज्जन ने रात्रि को मुझसे प्रश्न किया—महाराज, दूसरो के यहा धर्मसाधना में एकेन्द्रिय जीवो की हिंसा होती है, किन्तु अपने यहा भी जब उपाश्रय या धर्मस्थानक बनाये जाते है, तब उसमे भी एकेन्द्रिय जीवो की हिंसा होती है । इन दोनो मे अन्तर क्या रहा ?

मैने कहा—प्रश्न तो ठीक है । अन्तर इतना ही है कि एक तरफ तो उस हिंसा को धर्म कहा गया है और दूसरी तरफ उसे हिंसा-पाप बतलाया गया है । यद्यपि हिंसा दोनो जगह है, परन्तु श्रद्धा की दृष्टि से दोनो में महान् अन्तर है । पाप हो और उसे पाप ही माना जाय तो चरित्र मे दोष होने पर भी सम्यक्त्व मे दोष नही लगता । किन्तु जब पाप को पाप ही नही माना जाता, बल्कि धर्म समझा जाता है तो चरित्र के साथ सम्यक्त्व भी चला जाता है । अतएव यह बहुत विचारणीय बात है । उपाश्रय बनाया

अथवा बनवाया जा रहा है तो वहा भी हिंसा हो रही है, आरभ हो रहा है और यही सम्यग्दृष्टि की विचारणा है। शुद्ध जैनधर्म की, तीर्थंकरो की या स्थानकवासी सम्प्रदाय की जो परम्परा चली आ रही है, उसके अनुसार हिंसा, हिंसा ही है, पाप, पाप ही है।

तो मैंने आपसे यह कहा कि अपनी जो धारणा है कि जो उपाश्रय बनाते है, धर्मस्थान बनाते है तो वह धर्मस्थान धर्म नही है। धर्म और चीज है धर्मस्थान और चीज है। वस्तुत धर्मस्थान धर्म नही है, किन्तु उस स्थान पर जो धर्म किया जाता है, वह धर्म है।

एक मकान घर-गृहस्थी के कामो के लिए बनाया जाता है और दूसरा धर्मध्यान के लिए बनाया जाता है। आरभी हिंसा दोनो मे बराबर है। छहकाया का कूटा तो दोनो में ही समान है। किन्तु एक मकान, जो धर्मध्यान के लिए बना है, यद्यपि उसका बनवाना तो हिंसा मे है, मगर उसके बन जाने के पश्चात् उसमें जो सामायिक, पौषध आदि क्रियाए होती है, वे सब धर्मखाते में लिखी जायेगी। मकान बनवाने की जो क्रियाए है, वे धर्म के खाते में नही लिखी जायेगी।

यही दोनो के दृष्टिकोण मे अन्तर है। दूसरे लोग कहते हैं कि हम धर्मबुद्धि से, देवबुद्धि से फल-फूल पानी आदि का आरभ करते हैं। अब समझौता तभी ही हो सकता है कि जैसे हम उस हिंसा को हिंसारूप पाप मानते है, कर्मबध का कारण मानते है, उसी प्रकार वे भी यही कहे कि हम भी धर्म और देव निमित्त फल-फूल पानी आदि के आरम्भ मे हिंसारूप पाप मानते है, धर्म नही मानते। मगर यह समझौता हो कैसे सकता है? जहा आप उपाश्रय बनवाने में होने वाली हिंसा को कर्मबध का कारण मानते हैं,

वहा वे हिसा मे निर्जरा मानते है, उसे कर्म टूटना मानते है । इस प्रकार की मान्यता मिथ्यात्व है । हिंसा में धर्म मानोगे तो भगवान् ने कहा है —

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजयो न वो ।
देवा वि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

धर्म तो अहिंसा, सयम और तप है । मगर अहिंसा किसकी ? एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के प्राणियो पर जितने-जितने अशो मे अहिंसा है, दया है, उतने-उतने अशो में धर्म है और जितने अशो मे हिंसा है, उतने अशो में अधर्म है ।

आपने अपनी सन्तति की सगाई मे, शादी में, मकान बनवाने में, कपडे बनवाने में या भोजन-सामग्री लाने मे खर्च किया । इस खर्च को आप खर्च मे लिखेंगे, आमद मे नही लिखेंगे । मगर एक बात याद रखने की है और वह यह कि खर्च-खर्च में भी अन्तर है । एक ने तो अपना सिर छिपाने के लिए छोटा-मोटा मकान बनवा लिया और भोजन के बिना काम नही चलता, अतएव भोजन के लिए भी कुछ खर्च किया । इस प्रकार उसने जीवन की अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए खर्च किया और दूसरे ने दारू पीने मे, वेश्यागमन मे और जुआ खेलने में खर्च किया । खर्च तो दोनो ही है, परन्तु एक जीवन की साधना के लिए है और दूसरा व्यसनो के पोषण के लिए । आप ईमानदारी से उत्तर दीजिए कि दोनो खर्च क्या एक सरीखे है ? नही, कभी नही ।

दोनो में जमीन-आसमान का अन्तर है । जो व्यक्ति जीवन-साधना के लिए खर्च करता है, उसे कोई पापी या अधर्मी नही कहता, क्योंकि उस खर्च के बिना जीवन-निर्वाह नही हो सकता ।

किन्तु जहा खर्च करना आवश्यक न था, जैसे शराब के बिना, मास के विना, जुए के बिना और व्यभिचार के विना मनुष्य का काम चल सकता है, वल्कि अच्छा चल सकता है, इसलिए वह पाप है। इन कामो मे खर्च न करने से उसकी आन और शान भी बढती है, लोक और परलोक भी सुधरता है। जो बुरे कामो में खर्च करने वाला है, वह गुडा और वदमाश कहलाता है। इस प्रकार के निकृष्ट कामो में जो धन लुटाता है, वह पकडा जाता है, क्योकि सरकार की ओर से ऐसे कानून वने हुए है। उसे सजा दी जाती है। अतएव इस प्रकार खर्च करने से दो नुकसान हुए---प्रथम खर्च तो घर का खर्च हुआ और दूसरे कानून का उल्लघन करने से दड का भागी बनना पडा। ऐसे लोग जव यहा भी दड के भागी बनते है तो परलोक में क्यो नही वनेंगे ? इस तरह दोनो खर्च करने वालो मे से एक नेक कहलाया और दूसरा अधर्मी कहलाया।

इसी प्रकार एक आरभ ऐसा होता है कि जिसके विना काम न चल सके। उसे करने वाले को कोई खोटा नही कहता, किन्तु जो फिजूल खर्च करता है, वह पैसे का अपव्यय भी करता है और सरकार के दड का भागी भी होता है। ससार मे उसकी वदनामी भी होती है।

तो ससार के कामो मे जो खर्च होता है, वह अर्थदड आरभ है, क्योकि आप अपने सासारिक प्रयोजनो की सिद्धि के लिए खर्च करते है। फिर भी खर्च तो खर्च ही है, वह आमदनी में नही लिखा जायेगा। कहने का आशय यह है कि हिंसा हिंसा ही है। किसी भी उद्देश्य से की हुई हिंसा धर्म नही हो सकती।

सज्जनो ! दुख के मूल कारण को समझो। दु:ख कहा से निकला है ? इसका स्रोत कहा है ? उद्गम-स्थान क्या है और

इसका मूल बीज क्या है ? किस प्रकार दु ख रूप वृक्ष खडे हो जाते है और कटु फल देते है ?

इन प्रश्नो पर विचार करने के लिए और दु:ख के कारणो का पता लगाने के लिए बहुत-से लोग चले, किन्तु कोई मील भर चला, कोई दो मील चला, मगर आखिरी मजिल तक कोई नही पहुच सका । किसी ने कहा, ग्रह-नक्षत्रो ने दु ख दिये है, किसी ने बतलाया, भूत-पिशाचो के कोप से पुत्र उत्पन्न हुए है, कोई कहता है, विमाता ने दु ख दिया है, कोई कहते है, बात, पित्त, कफ के विकार के कारण दु ख की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार अनेक तरह की कल्पनाए की गई और दु ख के स्रोत को समझने का प्रयत्न किया गया । मगर वास्तव मे जहा से दु ख की उत्पति हुई, वहा उनकी नजर नही पडी । वे दूसरी-दूसरी जगहो में ही दु ख का स्रोत खोजते फिरे, असली जगह पर दृष्टिपात ही नही किया गया ।

इसमें उन बेचारो का दोष भी क्या है ! वे असली स्रोत तक पहुचते कैसे ? वह मजिल तो बहुत दूरी पर है । वहा तक तो जो प्राणो को हथेली पर लेकर, प्राणो की बाजी लगाकर जाना चाहे, वही जा सकता है ।

भगवान् तीर्थंकरो को ससार के उत्तम से उत्तम पदार्थ प्राप्त थे । सुख की समग्र सामग्री उपलब्ध थी । वे राजपाट, और आराम की सब चीजे, सब ठाटबाट छोडकर चले और दृढ निश्चय करके चले । मार्ग में पर्वत आये, नदिया आई, देवो, मनुष्यो और तिर्यंचो के उपसर्ग आये, मगर कोई भी शक्ति उनका पथनिरोध न कर सकी, उनकी गति को कु ठित करने मे समर्थ

किन्तु जहा खर्च करना आवश्यक न था, जैसे शराब के बिना, मास के बिना, जुए के बिना और व्यभिचार के बिना मनुष्य का काम चल सकता है, बल्कि अच्छा चल सकता है, इसलिए वह पाप है। इन कामो मे खर्च न करने से उसकी आन और शान भी बढती है, लोक और परलोक भी सुधरता है। जो बुरे कामो में खर्च करने वाला है, वह गुडा और बदमाश कहलाता है। इस प्रकार के निकृष्ट कामो मे जो धन लुटाता है, वह पकडा जाता है, क्योकि सरकार की ओर से ऐसे कानून बने हुए है। उसे सजा दी जाती है। अतएव इस प्रकार खर्च करने से दो नुकसान हुए—प्रथम खर्च तो घर का खर्च हुआ और दूसरे कानून का उल्लघन करने से दड का भागी बनना पडा। ऐसे लोग जब यहा भी दड के भागी बनते है तो परलोक मे क्यो नही बनेंगे ? इस तरह दोनो खर्च करने वालो मे से एक नेक कहलाया और दूसरा अधर्मी कहलाया।

इसी प्रकार एक आरभ ऐसा होता है कि जिसके बिना काम न चल सके। उसे करने वाले को कोई खोटा नही कहता, किन्तु जो फिजूल खर्च करता है, वह पैसे का अपव्यय भी करता है और सरकार के दड का भागी भी होता है। ससार मे उसकी बदनामी भी होती है।

तो ससार के कामो मे जो खर्च होता है, वह अर्थदड आरभ है, क्योकि आप अपने सासारिक प्रयोजनो की सिद्धि के लिए खर्च करते है। फिर भी खर्च तो खर्च ही है, वह आमदनी में नही लिखा जायेगा। कहने का आशय यह है कि हिंसा हिंसा ही है। किसी भी उद्देश्य से की हुई हिंसा धर्म नही हो सकती।

सज्जनो ! दुःख के मूल कारण को समझो। दुःख कहा से निकला है ? इसका स्रोत कहा है ? उद्गम-स्थान क्या है और

इसका मूल बीज क्या है ? किस प्रकार दुःख रूप वृक्ष खड़े हो जाते है और कटु फल देते है ?

इन प्रश्नो पर विचार करने के लिए और दुःख के कारणो का पता लगाने के लिए बहुत-से लोग चले, किन्तु कोई मील भर चला, कोई दो मील चला, मगर आखिरी मंज़िल तक कोई नही पहुच सका । किसी ने कहा, ग्रह-नक्षत्रो ने दुःख दिये है, किसी ने बतलाया, भूत-पिशाचो के कोप से पुत्र उत्पन्न हुए है, कोई कहता है, विमाता ने दुःख दिया है, कोई कहते है, बात, पित्त, कफ के विकार के कारण दुःख की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार अनेक तरह की कल्पनाए की गई और दुःख के स्रोत को समझने का प्रयत्न किया गया । मगर वास्तव मे जहा से दुःख की उत्पत्ति हुई, वहा उनकी नज़र नही पड़ी । वे दूसरी-दूसरी जगहो मे ही दुःख का स्रोत खोजते फिरे, असली जगह पर दृष्टिपात ही नही किया गया ।

इसमें उन बेचारो का दोष भी क्या है ! वे असली स्रोत तक पहुचते कैसे ? वह मंज़िल तो बहुत दूरी पर है । वहा तक तो जो प्राणो को हथेली पर लेकर, प्राणो की बाजी लगाकर जाना चाहे, वही जा सकता है ।

भगवान् तीर्थंकरो को ससार के उत्तम से उत्तम पदार्थ प्राप्त थे । सुख की समग्र सामग्री उपलब्ध थी । वे राजपाट, और आराम की सब चीज़ें, सब ठाटबाट छोडकर चले और दृढ निश्चय करके चले । मार्ग मे पर्वत आये, नदिया आई, देवो, मनुष्यो और तिर्यंचो के उपसर्ग आये, मगर कोई भी शक्ति उनका पथनिरोध न कर सकी, उनकी गति को कुंठित करने मे समर्थ

न हुई और उनके धैर्य एवं पराक्रम को धीमा न कर सकी। वे आगे से आगे बढते ही चले गये। उनका एकमात्र दृढ सकल्प था कि हमें अपने लक्ष्य पर पहुचना है और बीच में नही रुक जाना है। बराबर लक्ष्य पर पहुचेंगे और पीछे नही हटेंगे या बीच में नही रुकेंगे, ऐसी दृढ प्रतिज्ञा करके जो निकलते है, उन्ही को सफलता प्राप्त होती है, वही अपने इच्छित उद्देश्य की पूर्त्ति करते है।

इसके विपरीत, जो साधक बाधाए आने पर, मुसीबतें आने पर पथभ्रष्ट हो जाते है, चलते-चलते थक जाते है और बैठ जाते है, उनकी गति अवरुद्ध हो जाती है। वे ध्येय तक पहुचने में असफल सिद्ध होते है। अतएव भद्र पुरुषो ! मै आपसे कह रहा था कि यह मज़िल बडी दूर की है और इस तक पहुचने के लिए अथक परिश्रम होना चाहिए। ऐसी दृढ भावना हो कि कोई भी मुसीबत आये, उसे पार करते चलें।

याद रक्खो, जिसमें उत्साह होता है, वीरता होती है, जीवन मे कार्य करने की पूरी लगन होती है, वे अपने ध्येय में सफल होते है। आपत्तिया आती है, वे पहाड की तरह उडकर रास्ता रोक देती है और कभी-कभी उनपर विजय प्राप्त करने के प्रयास में प्राण भी निछावर कर देने पडते है, फिर भी साधक—सच्ची लगन का साधक—क्षण भर भी पीछे हटने का विचार नही करता और न अपना मार्ग ही बदलता है। वह मृत्यु का आलिंगन करके अपने शेप रहे कार्य को आगामी जीवन में पूरा करता है, क्योकि उसको पूर्ण विश्वास होता है कि आत्मा अमर है और परिपूर्ण सिद्धि के लिए अनेक जन्मो मे साधना करनी पडती है।

विरोधी शक्तियां यो ही नष्ट नही होती, किन्तु जब अपनी ताकत अधिक होती है तभी वे नष्ट होती हैं। अपनी शक्ति को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सभी शक्तियो का समन्वय किया जाय, सब मिल कर जूझे। तभी काम हो सकता है। अगर एक-एक शक्ति बिखरी हुई प्रतिपक्षी के मुकाबले पर आयेगी तो उसे परास्त होना पडेगा। इसके विपरीत शक्तिया एक साथ मिल कर प्रतिपक्षी पर आक्रमण कर दें तो विजय प्राप्त होने में कोई शका नही है।

दीपक पर पतगे आ-आ कर गिरते है। एक आया, तो खत्म हो गया। दूसरा आया, वही खत्म हो गया और इस तरह हज़ारो की लाशो का ढेर लग जाता है। इस प्रकार एक-एक आने के कारण वे खत्म होते चले गये। कदाचित् उन पतगो में यह समझ होती कि एक-एक आने के कारण ही हम सब समाप्त हो रहे हैं और यह समझ कर वे हज़ारो की सख्या मे सगठित होकर दीपक पर टूट पडते तो दीपक को बुझना ही पडता। हा, ऐसा करने में दस-बीस की जान तो अवश्य जाती किन्तु बाकी सबके लिए आराम हो जाता। पीछे वालो को भस्म होने का अवसर न आता।

इसी प्रकार जब तक मनुष्य की मानसिक, वाचिक, कायिक तथा ज्ञान, दर्शन और चरित्र सबधी शक्ति और विचार-शक्ति पृथक्-पृथक् रहती है, तब तक वह धर्म के क्षेत्र में विजय नही कर सकता। किन्तु जब यही शक्तिया एक साथ सुसगठित होकर केन्द्रित होकर, एक दिशा मे, एक ही ध्येय से चलती है, तो बड़े

से बडे प्रतिपक्षी को–मिथ्यात्व और मोह को–परास्त कर देती है, उसे निर्मूल बना देती है ।

तो मै कहने जा रहा था कि मनुष्य चलता है किन्तु रास्ते मे जब आपत्तिया आती है तो वह रुक जाता है और आगे नही बढ पाता, इस कारण उसे सफलता भी नही मिलती । इस तरह अनेक ऋषि-मुनि चले, किन्तु विफल हुए ।

तो इस दु ख को जन्म देने वाला कौन है ? सभी चले ढू ढने को । किसी ने ग्रह-नक्षत्रो को दु ख का मूल माना, किसी ने देवो को और किसी ने भैरो, भवानी, जगदम्बा को ही दु ख का कारण समझ लिया और उसी में उलझ गये । वही भगवान् महावीर भी दु ख के मूल स्रोत की तलाश में कटिबद्ध होकर चले । वे दृढप्रतिज्ञ होकर चले कि मेरे कदम आगे से आगे बढते जायेंगे, पीछे नही हटेगे । उनके मार्ग मे देवो ने उपद्रव किया, मनुष्यो और तिर्यचो ने भी बाधा पहुचाई, उनके मार्ग को रोकना चाहा, रोका भी, किन्तु उस महा-वीर महावीर के कदम आगे बढते ही गये । अप्रतिहत गति से उन्होने अपने कदम बढाये थे, अत कही भी वे डगमगाये नही । वह महावीर थे–– 'यथानाम तथा गुण' की उक्ति को पूर्णरूपेण चरितार्थ करने वाले धृतिवीर थे ।

नाम के पीछे भी कोई न कोई शक्ति और सच्चाई होनी चाहिए । कल रात्रि मे कुछ बात चली थी तो एक भाई ने कुछ प्रश्न किये । उन्होने कहा–नामादि चार निक्षेप शास्त्र मे चले है, सो यह बात कैसे है ?

मैने कहा––हा भाई, चार निक्षेप चले है ।

वे फिर बोले—नमस्कार पुण्य भी आया है शास्त्र में ?

मैंने उत्तर दिया—ठीक है, किन्तु नमस्कार किसे करना चाहिए ? यह नौ पुण्य किसके लिए है ? जीव के लिए है। अन्नपुण्य किसको देने से होता है ? क्या पाटिया को खिलाने-पिलाने से होगा ? और नमस्कारपुण्य, वस्त्रपुण्य आदि-आदि की आवश्यकता किसको है ? इन सब चीजो की आवश्यकता जीव को होती है। जड को सुख-दु ख या भूख-प्यास का प्रश्न ही नही है। उसे न सुख है, न दु ख है। अन्नपुण्य, पानपुण्य आदि का सबध जीव के साथ ही है, जड के साथ नही। अगर रोटी किसी मुर्दे को खिलाई जाय तो क्या वह खायेगा और खिलाने वाले को पुण्य होगा क्या ? पुण्य करने वाला भी और उसका फल भोगने वाला भी चेतन होता है। विवाह-सम्बन्ध तभी होता है जब दोनो चेतन हो। एक चेतन हो और दूसरा रबड का हो तो उनकी शादी किस काम की ? अरे दुनिया के लोगो ! दोनो ही चेतन होने चाहिए और तभी सन्तानोत्पत्ति शक्य है। इसी प्रकार पुण्य रूपी सतान भी तभी उत्पन्न होगी जब कि लेने वाला और देने वाला दोनो ही चेतन होगे। यदि देने वाला चेतन है और लेने वाला जड है तो पुण्य नही हो सकता।

तत्पश्चात् प्रश्न किया कि शास्त्रो में जगह-जगह मूर्ति का नाम आया है। इस सबध में आपका क्या कथन है ? मैंने कहा—शास्त्रो में चोर, जार, वेश्या वगैरह के नाम भी आये है। ऐसा उल्लेख आता है कि अमुक नगर में इतनी वेश्याये थी। इसका यह मतलब नही कि यह वेश्यागमन के लिए बतलाया है। वहा तो

जैसी स्थिति थी वैसी बतला दी गई है। उसमें कोई जानने योग्य है, कोई छोडने योग्य है और कोई ग्रहण करने योग्य है।

फिर वे बोले—उस समय वे वेश्यायें व्यभिचार करने वाली नही होती थी, किन्तु कला सिखाने वाली होती थी। मैंने कहा यह तुम्हारा कथन ठीक नही है, दु ख विषादादि में वेश्याओ का व्यभिचारशील होना सिद्ध है। इसलिए उनका शास्त्र मे कथन आया है।

सज्जनो! जो जैसा पक्ष ले लेता है, उसे उसके सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहना ही पडता है। अफीम खाने वाला कहता है—अफीम से प्रतिभा बढती है, गहरी नीद आती है। उसे खाने से थकावट महसूस नही होती। वह यह नही कहता कि अफीम खाने से मृत्यु हो जाती है। तो वेश्याओ से राजकुमार कला सीखते थे, यह कथन भी युक्तियुक्त नही, क्योकि राजकुमार तथा सेठो के लडके बडे होते थे तो उनको पढने के लिए कलाचार्य के पास भेजा जाता था, ऐसा शास्त्रो मे वर्णन आता है।

आचार्य तीन प्रकार के बतलाये गये है—कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। नृत्य करने, गीत गाने, पहेली बनाने, बत्तीस प्रकार के नाटक करने आदि की कलाए सिखाना कलाचार्य का काम था, वेश्या का नही। ७२ प्रकार की कलाये कलाचार्य सिखलाते थे। सौ प्रकार के शिल्प शिल्पाचार्य सिखलाते थे और धार्मिक साधना के मार्ग को सिखलाना धर्माचार्य का काम था। अतएव यह बात गलत है कि पूर्व काल में वेश्याओ से कला-शिक्षण ग्रहण किया जाता था।

यह चार निक्षेपो की बात यहा के लाला पन्नालाल जी ने चलाई थी। [illegible] उनसे चार निक्षेपो के नाम पूछे तो

वे इधर-उधर घूमने लगे, किन्तु ठीक तरह से चारो के नाम न गिना सके। मैने कहा—किराने के दुकानदार को अगर किराने की चीजो के नाम ही याद न हो तो वह व्यापार क्या करेगा ? अस्तु शास्त्र में चार निक्षेप आये है—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। ये चार निक्षेप प्रत्येक वस्तु में घटते है, चाहे वह जड़ हो या चेतन हो। मै इस पाट पर शयन करता हू। इसमे भी चार निक्षेप घटित होते है। यह पाट है, इस प्रकार वस्तु की 'पाट' यह सज्ञा नाम निक्षेप है। यह इतना लम्बा-चौडा और इस प्रकार की आकृति वाला है, यह स्थापनानिक्षेप हो गया। जिस लकडी से बना है, वह द्रव्यनिक्षेप है। इसमें वर्ण, गध, रस और स्पर्श आदि भाव है। इसलिए भाव निक्षेप हो गया। इस प्रकार इस पाट मे चारो निक्षेप विद्यमान है तो क्या आप इसको भी वदना-नमस्कार करोगे ? यदि चार निक्षेप वाले सभी वन्दना करने योग्य है तो कीजिए, इसको भी वन्दना कीजिए। अगर आप सोचते हो कि इसे वन्दना कैसे की जाय तो पाषाण की कल्पित आकृति को भी कैसे वन्दन किया जाय ? पाट वनस्पतिकाय का मुक्केल्लग शरीर है और वह पृथ्वीकाय का मुक्केल्लग शरीर है। उसमें भी चार निक्षेप है। नाम तो उसका मूर्ति है ही। उसकी आकृति विशेष रूप स्थापना भी है। जिस पाषाण से ही बनी है, वह द्रव्यनिक्षेप है। यदि द्रव्यनिक्षेप नही होता तो नाम और स्थापना भी न होते और वर्णरूप भावनिक्षेप भी न होता। अतएव यदि वह पुद्गल भी वन्दनीय नही है तो दूसरा पुद्गल भी वन्दनीय नही है।

सज्जनो ! आप लोगो को दिल मिला है, दिमाग मिला है, तो विचार करो। ऐ मनुष्य ! चौरासी लाख जीवयोनियो मे

तेरा सिहासन सबसे ऊचा है। विकसित होने का तुझे जो अवसर प्राप्त है, वह दूसरे को प्राप्त नही है। इस मनुष्य शरीर से पाचो ज्ञान, पाचो समकित, पाचो चरित्र और पाचो गतियां प्राप्त होती है। यहा आला से आला जो कुछ है, वह मनुष्य के लिए है। ऐ अभागे! तेरे लिए भगवान का कितना माल और कितना किराना रक्खा है, फिर भी तू उधर न चल कर उलटे रास्ता जाता है। कितने दरवाजे खुले रक्खे है कि मर्जी हो सो, खा, पी और पहन। किन्तु फिर भी गली में जाकर सडी-गली चीजें खा रहा है। मनुष्य जन्म मिलना बहुत कठिन है। किसी कवि ने कहा है —

मुश्किल पाना चेतन, ये तो नरतन फेर।
लख चौरासी माई, तेने उमर गवाई।
मर मर उपजा वाहीं, दुःख पाया घणेर ॥१॥
मनुष्य देह पाई कर नेक कमाई, शिक्षा मान भाई।
मन को विषयो से घेर ॥२॥
तन धन जोवन जाणो, रग पतंग समानो।
शबनम बिन्दु कहानो, ढलते लगदी न देर ॥३॥

सज्जनो! गुरु महाराज चेतावनी दे रहे है कि ऐ दुनिया के पामर प्राणियो! अबोध जीवो! जागो। समय तुम्हारे जागने का है। अगर इस बार अवसर चूक गये तो फिर जल्दी हाथ नही आने का है।

आपको मालूम है कि एक दफा जो मनुष्य जन्म से पिछड गये तो फिर कितना आतरा है? मनुष्य मर कर पुन मनुष्य रूप में उत्पन्न हो तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का अन्तर होता है। दो घडी का मुहूर्त्त होता है और दो समय से लगाकर दो घड़ी में एक

समय कम तक का काल अन्तर्मुहूर्त्त कहलाता है। यदि मनुष्य को पुन मनुष्य होने में उत्कृष्ट अन्तर पडे तो अनन्त काल का अन्तर हो सकता है। अनन्त उत्सर्पिणिया और अनन्त अवसर्पिणिया व्यतीत हो जाती है, फिर भी मनुष्यजन्म की प्राप्ति नही होती। अनन्त चौबीसिया गुज़र जाती है और यह जीव निगोद में ही पडा सडता रहता है।

बहिनो ! देवियो ! जरा गौर से खयाल करो कि फकीर क्या कह रहा है ? मनुष्य का अन्तरकाल उत्कृष्ट अनन्त काल है।

स्थिति दो प्रकार की है—भवस्थिति और कायस्थिति। भव जन्म को कहते है। एक जन्म म स्थित रहने की काल-मर्यादा को भवस्थिति कहते हैं। और भव तो बदलते रहे किन्तु पृथ्वीकाय आदि काया वही बनी रहे—उसी एक काय मे बार-बार जन्म लेकर उत्पन्न होता रहे और मरता रहे, उसे कायस्थिति कहते है। उदाहरणार्थ—पृथ्वीकाय का जीव अपनी भवस्थिति पूरी करके मरा और फिर पृथ्वीकाय मे हो उत्पन्न हो गया। उस भव को पूर्ण करके फिर मरा और फिर पृथ्वीकाय में उत्पन्न हो गया। इस प्रकार लगातार पृथ्वीकाय में जितने समय तक जीव रहता है, उस काल को कायस्थिति कहते है। निगोद की भवस्थिति जघन्य और उत्कृष्ट, दोनो अन्तर्मुहूर्त्त की है, परन्तु कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अनन्त काल की है। निगोदिया जीव एक अन्तर्मुहूर्त्त मे ६५५३६ भव करता है। इससे आप कल्पना कर सकते है कि उसका जन्म-मरण कितनी जल्दी-जल्दी होता है ! वास्तव में यह वर्णन सुनकर रोमाच खडे हो जाते है। निगोद के जीव को कितनी वेदना और

कितनी व्यथा होती होगी ? एक श्वास जितने अत्यल्प समय में जिसे अठारह बार मरना और जन्म लेना पडता है, उसके दु खो का किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है !

भद्र पुरुषो ! भगवान् ने सबसे अधिक एव गहरा दु ख जन्म-मरण का बतलाया है। इस दु ख की तुलना मे जीवन के बड़े से बडे दु ख भी नगण्य है।

इसलिए मै कहता हू—यदि यह पतग हाथ से छूट गई तो फिर डोर काबू मे नही आयेगी। अरे मानव ! तूने अत्यन्त कठिनाई से, न जाने किन-किन भवो मे भटकने के पश्चात्, कैसी-कैसी वेदनाए सहन करने के अनन्तर, मनुष्यभव पाया है। इसे पाया है तो धर्मसाधना द्वारा सफल कर लो, इससे जो उत्तम लाभ प्राप्त किया जा सकता है, कर लो। निरर्थक मत गवाओ।

दुनिया के लोगो ! जिसने जन्म लिया है, उसे अवश्य मरना पडेगा। जन्म लेने मे तो कदाचित् सन्देह हो सकता है, किन्तु मरने मे सन्देह नही। अतएव अपनी अनिवार्य आगामी मृत्यु के विचार को सदा सामने रखकर सरल व्यवहार करो। धर्मपूर्वक जीवनयापन करो। ढिठाई क्यो करते हो ? छल-कपट और प्रपच किस लिए करते हो ? आखिर तो यहा दुनिया के पदार्थ दुनिया में ही रह जायेगे और तुम्हे अपने पाप-पुण्य को साथ लेकर जाना पडेगा !

एक फकीर हो गया है, जिसका नाम मेहरमशाह था। वह खुदापरस्त या ईश्वरभक्त था। वह खुदा की बदगी करता था और हमेशा खुश रहता था।

एक दिन फकीर किसी गहन विचार में डूबा था कि तभी उसका एक भक्त आया। उसने कहा—आप तो हमेशा खुश रहने वालो में हैं। फिर आज यह उदासी क्यो ? किस कारण चिन्ता में बैठे है ?

फकीर ने जो उत्तर दिया, वह पजाबी भाषा की कविता में इस प्रकार प्रकट किया गया है —

है होल बड़ा मैनु, मजिलां दा ने, पल्ले राहदा खर्च तैयार नाहीं।
उत्थे औखिया घाटियां, राह लबे दूजा नाल मेरे कोई यार नाहीं।
उत्थे नगद बाजार विच तार नोगे, उत्थे घड़िदा कुछ उधार नाहीं।
मेहरम शाह दिल सशया विच रहदा,पल्ले कौडिया ने मेरे चार नाहीं।

इस कविता का नाम है बैत। अपराधियो को बैत लगाये जाते है। कहो तो तुम्हारे भी लगा दिये जायें बैत। तुम भी बहुत गपडसपड करते हो। लेकिन प्रिय बन्धुओ! फिक्र मत करना। कल से आना मत छोड देना। इस कविता का नाम बैत है तो ज्ञानी जनो ने भी ललकार लगाई है। वह ललकार ही उनका बैंत लगाना है।

मेहरमशाह कहता है—मजिल का रास्ता बहुत बडा है, किन्तु रास्ते के लिए खर्चा नही है। कोई ऐसा लगोटिया यार भी तो नही है जो रास्ते में मुझे दु ख से बचा ले। वहा तो नगदी का सौदा है, उधार का काम नही है।

चादनी चौक दिल्ली में घटे वाला हलवाई प्रसिद्ध है। कोई व्यावर वाला उसकी दुकान पर जाय और कहे कि एक रुपये की मिठाई दे दो और रुपया मेरे नाम लिख लो। तब वह यही कहेगा कि पधारो आगे, यहा उधार का काम नही है। तो जब दिल्ली में

भी उधार का काम नही है तो वह मजिल तो बहुत दूर की है। वहा उधार की सम्भावना ही क्या है ? यहा से साथ ले जाओगे तो आराम पाओगे।

तो मै कहना चाहता हू कि समकित का माल ले लो। फिर आनन्द ही आनन्द है। अगर यहा से दिवाला निकाल कर चले तो फिर समझ लो कि कुशल नही है।

मेहरमशाह कहता है—रास्ता लम्बा है और मेरे पास खर्च नही है।

जो जात-पात के चक्कर में पड गये तो अनन्त काल गुजर जाने पर भी मोड पर आना मुश्किल हो जायेगा। इसलिए बहिनो और भाइयो ! यह फकीर बार-बार चेतावनी दे रहा है कि—अगर दु ख से छुटकारा चाहते हो तो जिधर साफ रास्ता हो, उधर ही चलो। काटो के रास्ते पर चलोगे तो सुख नही पाओगे। मिथ्यात्व का मार्ग तीखे काटो से व्याप्त है। उसपर चल कर किसी नें सुख नही पाया और तुम भी सुख नही पा सकते। अतएव समकित के ही रास्ते पर चलो।

अफसोस है कि इतना समझाने पर भी भाग्यहीन जन भाटो मे भटकते है, काटो मे कदम रखते है और कीच में चक्कर काटते फिरते है। अतएव याद रक्खो कि तुम्हे सही और सलामत रास्ते पर ही चलना है। कहा है —

इस रास्ते चले जा तू बेखटके—खटके।
दयाधर्म की सडक बनी है,
इधर-उधर तू कांई भटके ॥ इस०, १ ॥

हिंसा मिथ्यात्व विषम मार्ग है,
नरक माँहि तुझे ले पटके ॥ इस०, २ ॥
दया समकित की सड़क अनोखी,
मुक्ति-नगर में पहुंचा दे सटके ॥ इस०, ३ ॥
अनन्त जीव इस मार्ग चली ने,
मोक्ष गया है कर्म कटके ॥ इस०, ४ ॥

सज्जनो ! आज राखी का दिन है । मैने सोचा कि मै भी आपकी राखी बाध दू । आज बाजार में दूकाने सजी है और रगबिरगी राखिया बिक रही है। परन्तु स्मरण रक्खो, यह राखिया कच्ची है । यह खराब हो जायेंगी । अगर तुमने सम-कित की राखी बधा ली तो कल्याण हो जायेगा । वह ऐसी रक्षा है कि कभी टूटती नही—निष्फल जाती नही । वह तुम्हे मोक्ष में ले जायेगी । अतएव आप रक्षा का बन्धन करो । रक्षा की प्रतिज्ञा करो कि हम यथासभव सब जीवो की रक्षा करेंगे और हिंसा मे धर्म नही मानेंगे । दया मे ही धर्म मानेंगे ।

भाइयो ! असली रक्षाबधन तो यही है। आप ऐसी राखी बाधो कि टूटे नही, फूटे नही और जहा भी जाओ, सदा साथ में रहे । मोक्ष में जाओ तो वहा भी वह सादि-अनन्त राखी तुम्हारे साथ ही रहे । ऐसी राखी ही सच्ची राखी है । उसी को बाध कर अपनी आत्मा का कल्याण करो ।

जैसे दूसरो को सुख पहुचाने से आपको सुख प्राप्त होता है, दु ख पहुचाने से दु ख होता है, उसी प्रकार दूसरे प्रणियो की रक्षा करने से अपनी रक्षा होती है, आत्मरक्षा का असली साधन पररक्षा है । वे भ्रम मे है, अज्ञान में है, अधकार में है जो

दूसरे जीवो की हिंसा करके अपनी रक्षा चाहते है। ऐसे लोगों की कदापि रक्षा नही हो सकती । रक्षा उन्ही की होगी, निर्णय वही होगे, जो दूसरे प्राणियो की रक्षा करेंगे और उन्हे अभय बनायेंगे।

भद्र पुरुषो ! जो असली और सच्चा सुख चाहते हो तो शुद्ध देव, गुरु और धर्म पर सुदृढ श्रद्धा धारण करो और गुणो के पुजारी बनो। जो गुणो के पुजारी बनेंगे और वीतराग देव द्वारा प्ररूपित सन्मार्ग पर चलेंगे, वे ससार-समुद्र से तर जायेंगे और अनन्त आत्मिक आनन्द के भागी बनेंगे।

ब्यावर
२१-८-५६

: ४ :

दुःखों का उद्गम

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीर बुधा संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुल वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्ति कान्तिनिचय हे वीर ! भद्रं दिश ।।

× × ×

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिन कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।।

उपस्थित महानुभावो !

कल मैंने बतलाया था कि यह जीव अनादिकाल से दुःखो की परम्परा को भोगता चला आ रहा है, उसका मूल कारण क्या है, मूल स्रोत कहा है ? इस तथ्य को जब तक समझ नही लिया जाता, तब तक दुःखो पर नियन्त्रण नही किया जा सकता। क्योंकि जब तक रोग का पता नही लगता, उसका इलाज नही हो सकता।

दुःखो का रोग अनन्त काल से आत्मा के साथ चला आ रहा है। उसको समझने के लिए भी किसी विशेषज्ञ वैद्य-डाक्टर की आवश्यकता है। रोग जब तक थर्ड स्टेज—तृतीय अवस्था

पर नही पहुचा है, तब तक ही उसका इलाज हो जाना चाहिए। तृतीय श्रेणी पर पहुच जाने के पश्चात् और असाध्य हो जाने पर उसका इलाज होना सभव नही रहता। किन्तु यह रोग, जो परम्परा से जीव के साथ लगा है, एकाएक समझ मे नही आता।

आत्मा दु ख नही चाहता, फिर भी इसके पीछे दु ख क्यो लगा हुआ है, इस बात की जाच करने के लिए बहुत से आचार्यों ने, धर्मगुरुओ ने और अध्यात्म के नेताओ ने विचार किया है। वे बैठे नही रहे। उन्होने सोचा है, विचार भी किया है और खोज में आगे भी बढे है, मगर सफर बहुत ही लबा था। मजिल तक पहुचने के लिए बडी तैयारी की आवश्यकता थी और अटूट धैर्य अपेक्षित था। इसके अभाव में वे कृतकार्य न हो सके। मूल कारण को नही समझ पाये और कुछ का कुछ समझ बैठे। उनकी दृष्टि दु खो के अन्तरग कारण तक न पहुच सकी और वे बाह्य चीजो को ही दु ख का कारण मान बैठे।

दु खो का मूल स्रोत इतना सूक्ष्म है कि वह दिव्य चक्षुओ के द्वारा ही देखा जा सकता है, न कि बाह्य नेत्रो द्वारा। केवल ज्ञान और केवल दर्शन रूप आखे ही उसके सूक्ष्म स्वरूप को देख सकती है। जिन्हे यह नेत्र प्राप्त नही थे, वे समझने का प्रयत्न करके और चाहना करके भी उसे न देख पाये और ऐसा होना भी स्वाभाविक ही था।

उसी दु ख रूपी रोग की उत्पत्ति के मूल स्रोत को समझने के लिए भगवान् महावीर भी चले। उन्होने दु खो के मूल उद्गम स्थल को जानने लिए, उनसे राहत पाने के लिए और दूसरो को दु खो से मुक्ति दिलाने के लिए राजपाट छोडा, ऐश-आराम के

सब साधन त्यागे और सार को केचुली के समान सब पदार्थों को छोड दिया । उन्होंने निश्चित दिशा में दृढ निश्चय के साथ क़दम बढा दिये और सुदृढ संकल्प कर लिया कि मैं दु:ख के उद्गम स्थान को, रागोत्पत्ति के मूल कारण को ढूंढ कर ही रहूंगा । इस खोज से मेरे कदम कभी पीछे नही हटेंगे । उन्हे अपने दृढ निश्चय पर अटल विश्वास था और पुरुषार्थ के प्रति अविचल श्रद्धा थी ।

जिस मनुष्य को अपने पुरुषार्थ पर विश्वास नही होता, उसे सफलता भी नही मिलती, क्योकि वह अपने विषय मे पहले से ही शंकाशील है कि मैं सफलता के क्षेत्र तक पहुंच सकूंगा या नही, अपने उद्देश्य को पूरा कर सकूंगा अथवा नही ? इस प्रकार की आशंका उसके बल को कम कर देती है और निर्बल संकल्प तथा निर्बल पुरुषार्थ मनुष्य को आगे बढने से रोकता है, कम से कम आगे बढने की प्रेरणा तो नही ही देता । जिसकी आत्मा इस प्रकार डावाडोल होती है, वह सम्पूर्ण शक्ति के साथ आगे नही बढ पाता ।

हां, तो महावीर स्वामी दृढप्रतिज्ञ होकर चले । एकनिष्ठा लेकर चले । उनके आगे एक ही विचार था कि मैं जिस कार्य को पूर्ण करने, जिस साध्य की सिद्धि के लिए निकला हू, उसे पूर्ण करके ही रहूंगा, बीच मे नही छोडूंगा । वे उस पथ पर कितने वर्षों तक चलते रहे लगातार ? उस स्रोत का पता पाने के लिए, शक्ति ग्रहण करने लिए और भावनेत्र प्राप्त करने लिए कि जिनके द्वारा वह दु:खस्रोत ठीक-ठीक समझा जा सके । वे एक नही, दो नही, चार नही, किन्तु साढे बारह वर्ष तक अनवरत एवं अबाध गति से चलते रहे ।

शास्त्र में प्रमाण मौजूद है कि भगवान् महावीर ने अपनी साधना के समय में कभी भी प्रमाद नही किया। एक वार जब साय-काल में दो घडी मात्र निद्रा आती है तो उसमें भी भगवान् उत्तमाति-उत्तम दस स्वप्न देखते है, जो वडे ही महत्त्व के थे, मोक्ष-प्राप्ति के सूचक थे। मै वास की जडें उखाड फेंक रहा हू, राक्षस को पछाड़ रहा हू इत्यादि आने वाले स्वप्न, कर्म जड को उखाड कर फेंकने तथा मोहराज को पछाड डालने आदि के वोधक थे।

भगवती सूत्र में स्वप्नो का उल्लेख आया है कि जिसे ऐसे-ऐसे स्वप्न आये, वह आत्मा एक भव करके अथवा दो भव करके अवश्य ही मोक्ष मे चला जाता है।

तो भगवान् महावीर चले, वनो में विचरण करते रहे, घोर कष्ट, उपसर्ग और परीषह सहते रहे, किन्तु इतने लम्वे काल में, एक वार भी घवरा कर पीछे न हटे, एक कदम भी उनका न रुका और न पीछे की ओर पडा। वे निरन्तर आगे से आगे वढते चले गये। उन्होने किसी भी आपत्ति को आपत्ति और कष्ट को कष्ट नही समझा। वल्कि यही माना कि यह उपसर्ग मेरी शक्ति को वढाने के लिए ही आये है, मेरी परीक्षा लेने के लिए है।

वास्तव मे सकट मनुष्य की शक्ति की वृद्धि के कारण होते है। कई वार इन्सान दु खो से व्यथित होकर कहता है, हाय मै दु खो से मरा जाता हू किन्तु यू नही कहता कि इन्सान वना जाता हू। भगवान् महावीर की महान् जीवनी का गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि उन्हे जो असाधारण शक्ति प्राप्त हुई थी, वे कष्टो के द्वारा ही प्राप्त हुई थी। यही कारण है कि वे स्वत,

आये सकटो को शान्ति के साथ सहन करते थे और जब सकट न आते दिखाई देते तो उन्हे उत्पन्न करके सहन करते थे। इस प्रकार अपनी आत्मा को दु खो की सान पर घिस कर और उसे तीक्ष्ण बना कर नूतन शक्ति प्राप्त करते थे । उन्होने यही समझा कि यह सब मेरी शक्ति को बढाने के लिए ही आये है, मेरी परीक्षा ले रहे है और मुझे परीक्षा देनी ही चाहिए, हताश नही होना चाहिए। इस प्रकार वे उस परीक्षा में पूर्ण सफल हुए। उर्दू का एक शायर कहता है —

खौफे कामयाबी है जब तक, कामयाबी है मुहाल,
मुश्किलें जब बध गई, हिम्मत सब आसा हो गई ।

भद्र पुरुषो ! उर्दू के इस शायर ने बडे ही सुन्दर ढग से एक रूपक कार्य करने वालो के सामने रक्खा है। उन्हे उत्साहित करने के लिए उसने कितनी उत्कट प्रेरणा दी है। वह कहता है— ऐ मनुष्य ! ऐ कार्य साधक ! ओ अपनी राह के पथिक ! जब तक तेरे दिल में यह खौफ है कि मुझे कामयाबी मिलेगी या नहीं और जब तक तेरे हृदय में यह सशय बना हुआ है, तो समझ ले कि तुझे सफलता मिलने वाली नही है। यह एक निश्चित तथ्य है। सफलता कब मिलती है ? जब तू कटिबद्ध हो जायेगा, कमर-बस्ता हो जायेगा और तू समझ लेगा कि मै पुरुष हू, पुरुषार्थी हू, उद्योगी हू और मुझमें कठिन से कठिन साधना करके सफलता पाने की क्षमता है। मै कोई चीनी (शक्कर) का बना खिलौना नही हू कि गल जाऊगा। मोम का बना हुआ नही हू कि दु ख की जरा-सी आच लगते ही पिघल जाऊगा। मै चैतन्य का धारक हू, फौलाद का बना हू और मेरे अन्दर अनन्त, असीम और प्रखर

शक्तिया विद्यमान है। मैं अजेय शक्तियो का पुंज हूं। उन सोती हुई शक्तियो को अब जगाना होगा, कार्यसाधक बनाना होगा और प्रकाश में लाना होगा।

इस प्रकार जब मनुष्य अपनी शक्तियो को पहचान लेता है, परख लेता है, उनपर पूरा भरोसा कर लेता है, तो उसमें एक ऐसे बल का प्रादुर्भाव होता है, जिसका उसने पहले कभी अनुभव ही नही किया था। जो काम उसे कठिन प्रतीत होते थे, जिन बातो को वह अपनी सामर्थ्य से परे समझता था और जो साधना उसे दूर की चीज़ जान पडती थी, वही उसके लिए सुसाध्य हो जाती है। जब हिम्मत आ गई, धैर्य उत्पन्न हो गया और अपनी अमोघ शक्ति पर विश्वास हो गया तो समस्त कठिनाइया आसान हो गईं। जो असाध्य प्रतीत होता था, वह सुसाध्य प्रतीत होने लगा।

आपको मालूम होगा कि जिसे लिखना नही आता, वह वडे आश्चर्य से कहता है—ओहो, कैसे लिखा जाता है? वह समझता है कि लिखना आना बहुत बडी बात है। किन्तु जब वह धीरे-धीरे लिखना सीख लेता है तो वही चीज़ उसके लिए सरल हो जाती है।

तो जब तक मनुष्य कार्य को हाथ मे नही लेता, तब तक उसे कार्य मे कठिनता प्रतीत होती है। किन्तु उसी कार्य मे जब सफलता मिल गई दीखती है, तो वही कहने लगता है—'अजी, इसमे क्या रक्खा है? यह तो बाये हाथ का खेल है। मगर उसके लिए मामूली तो अब हुआ है, पहले तो वह पहाड दिखाई देता था। इसी प्रकार जब तक मनुष्य किसी काम को अपने हाथ में नही लेता और उसके लिए कटिबद्ध नही होता, तब तक मामूली

काम भी उसे कठिन एव दुस्साध्य प्रतीत होता है। मगर जब उसे अपने पुरुषार्थ पर भरोसा हो जाता है और वह समझ जाता है कि मुझ मे महान् शक्ति है और मेरे लिए कोई भी काम असाध्य नही है, तो वह उस कार्य मे भी शीघ्र सफलता प्राप्त कर लेता है। नेपोलियन ने गर्व के साथ कहा था कि इमपौसिबल (असम्भव) शब्द मेरे शब्दकोप मे ही नही है। उसके इस विश्वास ने उससे आश्चर्यजनक काम करवाये और आज विश्व के प्रधान वीरो मे उसकी गणना होती है।

कहने का आशय यह है कि जब तक मनुष्य अपने आत्मदेव को भूला हुआ है, तब तक उसे मामूली-सा कार्य भी अतीव गरुतर प्रतीत होता है। किन्तु जब वह अपनी पौरुष शक्ति को पहचान लेता है और उसपर निश्चल विश्वास कर लेता है, तब उसके लिए ससार का कोई भी काम असम्भव नही रह जाता।

सज्जनो! दुनिया के कार्यों की तो बात ही क्या है, इस आत्मा में मोक्ष तक प्राप्त करने की शक्ति विद्यमान है। अगर यह शक्ति उसमें न होती तो मोक्ष की प्राप्ति भी न होती और फिर मुक्ति के लिए ज्ञानी-जनो के द्वारा किये जाने वाले सब प्रयास निष्फल ही हो जाते। पर एक-दो नही, अनन्तानन्त जीव मुक्ति प्राप्त कर चुके है। वे अनन्त काल व्यतीत हो जाने पर भी जो सिद्धि प्राप्त नही कर सके थे, समय आने पर और पुरुषार्थ करने पर शीघ्र ही उसे प्राप्त करने में समर्थ हो गये।

तो आत्मा मे अनन्त शक्ति है, किन्तु उसकी वह शक्ति दबी हुई है, आच्छादित हो रही है। उर्दू के एक शायर ने बडी ऊंची उडान लेकर कहा है :—

असल अपनी को गर देखे, तो तू ही खुदा खुदा होवे।
अगर अपना रूप लख, पर से जुदा होवे ॥
तो तेरा मर्तबा आला दुनिया में वा होवे।
बकुल ताकत सुख नजर कुल तुझमें अयां होवे ॥

सज्जनो ! शायर कहता है—हे आत्मन् ! यदि तू अपनी असली अवस्था, को देख ले तो तू खुदा ही हो जायेगा। अरे ! महावीर–महावीर की रट क्या लगा रक्खी है। यदि तू अपने स्वरूप को, शक्ति को और आत्मस्वरूप को समझ ले, देख ले, तो तू स्वय ही खुदा बन सकता है, परमात्मा के स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है और त्रिभुवनपूज्य बन सकता है, तव इन्द्र भी तेरी सेवा मे उपस्थित होगे।

भद्र पुरुप ! यदि तू गैरो से जुदा हो जाये तो तेरा मर्तबा सारी दुनिया मे आला है और वह प्रकट हो जायेगा। तुझमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख, यह अनन्त चतुष्टय विद्यमान है और यह भाव तेरे अन्दर से ही प्रकट होने वाले है।

शास्त्र मे दो प्रकार के प्राण मान गय है—द्रव्य प्राण और भाव प्राण। द्रव्य प्राण पुद्‌गलरूप होते है जो कि प्रकृति से, माया से बनने वाले है। पुद्‌गलरूप दस प्राण ये है—पाच इद्रिया, मन वचन, काय, आयु और श्वासोच्छ्वास। ये पुद्‌गलरूप द्रव्य के प्राण होने से ही जीव नाटक कर रहा है, यह जीव नाच रहा है, खेल-कूद कर रहा है, किन्तु याद रखना, ये तेरे निज के प्राण नही है। तेरे निज के होते तो तझ से यह पृथक् न होते। फिर तो किसी को न मरना पडता और न किसी को रोना पडता !

सज्जनो ! तुम्हारे यहा रोने का रिवाज ही कुछ और तरह का है । कोई वृद्ध पुरुष मर जाता है तो सब मिल कर उस मृतक का मखौल उडाते है और रोते है तो कहते है—'चाबिया कठे छोड गया हो ! नाना छोटा है हो !

अरे तुम रोते हो कि मरने वाले की हसी कर रहे हो ? अभी तक उस मृतक वृद्ध का छोकरा छोटा ही रह गया क्या ? जब कि उस छोकरे के छोकरे भी मौजूद है । पजाब में तो ऐसा अलार्म नही दिया जाता ।

भद्र पुरुषो ! मै आप से कहने जा रहा था कि यह द्रव्य प्राण आते है और जाते है, इनका सयोग और वियोग होता रहता है, किन्तु भाव प्राण, जो आत्मा की निधि और सम्पत्ति है, स्थायी रहते है, अमर है । इनपर काल का जोर नही चलता । आत्मा की दुनिया में काल प्रवेश नही कर सकता । भाव प्राण आत्मा की निज की वस्तु है । और पराई तो पराई ही है, कभी भी छीनी जा सकती है, दसो प्राण पराये है, आत्मा के अपने नही है । इसी कारण जीव मरता है । उसके उन प्राणो का वियोग हो जाता है । भाव प्राण आत्मा के निजी प्राण है । उनका कभी वियोग नही होता । जीव कभी भाव प्राणो से मरता नही । इन्ही पर जीव की हस्ती टिकी हुई है । जीवित अवस्था में भी और मृतक अवस्था मे भी वे विद्यमान रहते हैं ।

हम द्रव्य प्राणो के मिलने को वडा भारी वरदान मानते है, वडा गौरव समझते है, किन्तु वास्तव मे देखा जाय तो यह आत्मा के लिए वन्धन रूप है । जब द्रव्य प्राण की परिणतिया पूरी तरह नष्ट हो जायेगी, तभी आत्मा का निर्वाण होगा, मुक्ति होगी, यह

निश्चित और निर्विवाद तथ्य है । यह द्रव्य प्राण आत्मा को बंधनो से जकडते हैं और मोक्ष में नही जाने देते । यह पौद्गलिक प्राण आत्मा के लिए वरदान नही, बल्कि अभिशाप हैं । इन्होने ही आत्मा के असली स्वरूप की प्राप्ति मे रुकावट डाल रक्खी है । ज्ञान और दर्शन हो जाने पर भी जब तक द्रव्य प्राण विद्यमान रहते है, तब तक तेरहवे और चौदहवे गुणस्थान वाले केवल ज्ञानी जीव भी मोक्ष मे नही जा सकते । जब तक आयु कर्म मौजूद है, दसो प्राण मौजूद है, जब तक कर्म रहते है, तब तक प्राण भी रहते है और जब कर्म नष्ट हो जाते है तो द्रव्य प्राण भी नष्ट हो जाते है । किन्तु भावप्राण विद्यमान रहते है और अपने विशुद्ध रूप मे रहते हैं ।

जिन्हे सच्चे, वास्तविक प्राण कहना चाहिए, वे आत्मा पर टिके है । अनन्त ज्ञानशक्ति, अनन्त दर्शनशक्ति, अनन्त आत्मिक सुख और अनन्त आत्मिक वीर्य शक्ति ही भाव प्राण है । जब तक आत्मा है, तब तक इनका भी अस्तित्व है और इनके होने से ही आत्मा का टिकाव है । जो आत्माए मोक्ष मे चली गईं, उनके द्रव्य प्राण नष्ट हो गये । किन्तु भाव प्राण उनके विद्यमान है । सिद्ध आत्माए जो है वे मोक्ष रूप है, किन्तु हम पुद्गलो के वशीभूत हो रहे है ।

सज्जनो ! आपमें से बहुतो को अभी तक जीवादि तत्त्वो की भी पूरी जानकारी नही है । शास्त्र मे बतलाया है कि जो जीव को नहीं जानता है, अजीव को नही जानता है और जीवाजीव को भी नही जानता है, वह मोक्ष को कैसे जान सकता है ?

कहा जा सकता है कि वस्तुएं दो ही हैं—जीव और अजीव, जड और चेतन। फिर शास्त्र मे जीव, अजीव और जीवाजीव, यह तीन पद किस प्रयोजन से आये है ? जैसे कि कहा है —

जो जीवे वि न जाणेइ, अजीवे वि न याणइ।
जीवाजीवे अयाणतो, कथ सो नाहीइ सयम ॥

—दश० अ ४ गा १२

पर इस गाथा का आशय ऊपर आ चुका है। यह दशवैकालिक सूत्र की गाथा है। यह सूत्र साधु साध्वियो को अध्ययन काल में सबसे पहले पढाया जाता है। जिसने इस सूत्र को समझ लिया, जान लो कि बहुत कुछ समझ लिया। इस सूत्र मे जीव-अजीव का बोध है, साधू के आचार-गोचर का बोध है, साधु भाषा का बोध है। विस्तारपूर्वक आहार-ग्रहण सबधी शुद्धि का विधान है। गुरु का विनय किस प्रकार करना चाहिए, इसका स्पष्टीकरण है और तपस्या आदि समाधियो का वर्णन है। जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है, वह सुविनीत शिष्य कहलाता है और जो आज्ञा का पालन नही करता, वह अविनीत है। इन दोनो को क्या क्या फल मिलता है, आदि-आदि बातो पर भी इस सूत्र मे प्रकाश डाला गया है। इस सूत्र के अन्त में बतलाया गया है कि जिस उमग, उत्साह और वैराग्य से तूने कुटुम्ब-परिवार का परित्याग किया है, उस उमग, उत्साह और वैराग्य को तू स्थायी रखना। उसमे फर्क मत आने देना। सिह की तरह ही दीक्षा लेना और सिह की तरह ही उसका पालन करना।

शास्त्र में चार प्रकार के पुरुष बतलायें गये है —

(१) कोई-कोई पुरुष सिंह की तरह दीक्षा लेते है और कष्ट आने पर सियार बन कर भाग जाते है।

(२) कोई-कोई सियार की तरह डरते-डरते दीक्षा लेते है। सोचते है, दीक्षा लेना मेरु गिरि का भार उठाना है, समुद्र को भुजाओ से पार करना है और लोहे के चने चबाना है। यह सयम-मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। मैं इसपर चल सकूगा या नही ? मै सयम को निभा सकूगा अथवा नही ? मगर जब दीक्षा धारण कर लेते है और गुरु की कृपा हो जाती है तो फिर सिंह की तरह सयम का पालन करते है।

गुरु की कृपा की महिमा अवर्णनीय है। राजा की कृपा हो जाय तो जागीर मिल जाती है, सेठ की कृपा से धन-दौलत प्राप्त हो सकती है, किन्तु गुरु की कृपा हो जाय तो मोक्ष की कुजी मिल जाती है और बेडा पार हो जाता है। गुरु की कृपा प्राप्त कर अनन्त जीव निहाल हो गये है। तो कोई-कोई साधक डरते-डरते सयम अंगीकार करते है, पर गुरु कृपा से उनकी वीरता बढती जाती है।

(३) तीसरी तरह के पुरुष वे है जो शूरवीर शेर की तरह उठते है, सयम धारण करते है और शेर की तरह ही जीवन पर्यन्त उसका पालन करते है। वे निरन्तर पराक्रम करते रहते है और कभी निर्बलता नही आने देते।

(४) चौथे प्रकार के पुरुष वे है, जो डरते-डरते ही त्याग के क्षेत्र मे अवतीर्ण होते है और डरते-डरते ही खत्म हो जाते है।

तो यदि दशवैकालिक सूत्र ज्ञानी गुरु से ठीक रूप से पढ लिया जाय तो आचार आदि के विषय मे धुरन्धर ज्ञानी बना जा सकता है। हा, तो उसी दशवैकालिक सूत्र में बतलाया है कि जो जीव को, अजीव को और जीवाजीव को नही जानता, वह सयम को भी नही जान सकता।

अब प्रश्न यह है कि यह तीन राशियाँ कहाँ से आ गई ? राशिया तो जीव-अजीव रूप दो ही हे, फिर यह तीसरी जीवाजीव राशि क्यो बतलाई गई ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मूल रग यद्यपि पाच ही है, किन्तु आज आपके सामने कितने रग विद्यमान हे ? पाच से भी ज्यादा आप देखते हे न ? कहिये, वे कहा से आगये ? वे सभी रग, जो पाच से अतिरिक्त दिखाई देते है, अनेक मूल रगो के सम्मिश्रण से ही बने हे। अतएव वे अनेक होने पर भी पाचं से अतिरिक्त नही कहे जा सकते। इसी प्रकार मूल राशिया तो दो ही है, परन्तु इन दोनो के सम्मिलन से तीसरी जीवाजीव राशि दृष्टिगोचर है। मूलत वह दोनो से भिन्न नही है, तथापि तीसरी कहलाती है।

भाइयो ! यह मत कहना कि महाराज ने तीन राशिया कायम कर दी, महाराज तो निह्नव है, आप किसी को भी सर्टिफिकेट देते देर नही करते। मगर आप मेरे दोष भले निकाले, किन्तु भगवान् की वाणी में हेरफेर न करे। मेरा नुक्स निकालोगे तो मेरी हानि नही होगी। सभव है कुछ मुझ लाभ हो जाय। मेरी निन्दा करोगे तो भी मेरा कुछ विगाड न होगा ! अलवत्ता निन्दा करने वालो की ही हानि है। हमें तो चिन्ता है तो अपने

ज्ञान-चरित्र की ही चिन्ता है। इनका सरक्षण होता रहे तो फिर निन्दकों की कोई चिन्ता नही। हम जानते है कि यह ससार है। इसमें कई प्रकार की खोपडिया है। सबकी मति एक-सी नही होती। सबकी रुचि भी एक-सी नही होती। आचार और विचार भी एक-सा नही होता। कहा है —

सब सरीखे नर नहीं, सब सरीख नहिं नार।
कोई खोटा कोई भला, यू चला जाय ससार ॥

यह ससार समुद्र है। इसमे सीपे भी है, कच्छ-मच्छ भी भरे हैं और मोती भी है। यहा सब प्रकार के मनुष्य है। इस बात मे कोई आश्चर्य भी नही है। मनुष्य चाहे कि सबसे प्रशसा प्राप्त कर ली जाय तो यह सभव नही। सबको प्रसन्न करने की चेष्टा भी सफल नही हो सकती। अतएव उसके लिए एक ही मार्ग है कि वह अपने सत्य मे मस्त रहे। अपनी शुद्ध बुद्धि मे जो प्रशस्त प्रतीत होता हो, मगलमय जान पडता हो और नीति-धर्म एवं लोकमर्यादा से विरुद्ध न हो, उसी पथ का अनुसरण करता जाय। ऐसा करने में जो भी निन्दा या प्रशसा मिले, उसे समान भाव से ग्रहण करता रहे।

हा, तो मूल विषय पर आ जाये। राशिया दो है, परन्तु पूर्वोक्त गाथा में तीन पद प्रयुक्त किये गये है। इस सबध मे कुछ और स्पष्टीकरण कर देना उपयुक्त होगा।

यहा जीव शब्द से उस वस्तु का ग्रहण किया गया है जो पुद्गल द्रव्य के ससर्ग से सर्वथा रहित है और जो केवल जीव भाव मे है। वह सिद्ध भगवान् है। यदि हमे सिद्धो का ज्ञान न हो और हम यह न जानें कि अशरीरी भी आत्माए होती है तो

हमें मोक्ष की करनी करने का भाव ही नही होता। जिस लडके को यह पता नही कि बी० ए०, एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने से क्या लाभ होता है, वह उच्च शिक्षण का प्रयत्न ही नही करेगा। अतएव यहा जीव शब्द से अशरीर आत्मा का ग्रहण करना चाहिये।

अजीव का अर्थ है—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गल और काल। यह पाच अजीव द्रव्य है। जिसे अजीव का ज्ञान नही है, वह भी आत्मा का कल्याण नही कर सकता। जिसे यही पता नही कि मै बद्ध हू, जकडा हू, वह छुटकारा, मोक्ष पाने का प्रयत्न कैसे कर सकता है ? जब बधन का ज्ञान होता है, तभी उससे छुटकारा पाने की इच्छा की जाती है। जब बन्धन का ज्ञान होता है तो यह भी ज्ञान होता है कि बन्धन का कारण जीव से भिन्न पुद्गलरूप अजीव ही है। अजीव ने ही जीव को बाध रक्खा है। अतएव जो पुद्गल, जीव से भिन्न है, वह यहा अजीव कहा गया है।

अब जरा विचार कीजिये कि हम क्या है ? हम न तो सिद्धो के समान शुद्ध आत्मा है और न वस्त्र, पात्र आदि की तरह शुद्ध अजीव है। हम दोनो के सयोग रूप है। हमारा आत्मा जीव है और शरीर, प्राण आदि अजीव है। हम जो कुछ भी आख, नाक, कान, हाथ, पैर आदि दृष्टिगोचर हो रहे है, वह सब अजीव है और जिसने इन सबको धारण कर रक्खा है, जिसकी सत्ता से समस्त इन्द्रिया अपने-अपने विषय में प्रवृत्ति कर रही है, वह जीव है, आत्मा है। इस प्रकार जीव और अजीव—दोनो मिले हुए है। जो पुद्गल भाव है, वह अजीव का अश है और जो आत्मा है, वह जीव भाव है।

दूसरे शब्दो में यो कह सकते है कि गेहू गेहू है और चना चना है। किन्तु जब दोनो मिल जाते है तो उनकी बेजड़ सज्ञा हो जाती है। चीजे तो वहा भी मूल में दो ही है, फिर यह बेजड कहां से आ गया ? बेजड का जो व्यवहार होता है, वह सर्वथा बे-जड अर्थात् निराधार नही है, क्योकि बेजड का भाव अकेले गेहू और अकेले चने से अलग होता है। उसका स्वाद भी पृथक् होता है । तो यद्यपि मूल मे बेजड की कोई पृथक् इकाई नही है, तथापि वह सयोगजन्य तीसरी वस्तु कहलाता है, उसी प्रकार जीव और अजीव अपनी-अपनी इकाई मे भिन्न-भिन्न है। जीवाजीव की पृथक् इकाई नही है, फिर भी दोनो के मेल से इस तीसरी राशि की सज्ञा सार्थक है। दोनो के सम्मिश्रण से यह तीसरी वस्तु बनी है।

दूध मे नकली दूध और घी मे नकली घी मिलाने से जैसे मजा नही रहता, इसी प्रकार आत्मा को आनन्द मिलता है तो शुद्ध भाव से मिलता है । परन्तु दुर्भाग्य से आत्मा निखालिस दशा में नही—मिश्रभाव मे परिणत हो रहा है। इस सम्मिश्रण को समाप्त कर देना और आत्मा को विशुद्ध दशा मे ले आना प्रत्येक के लिए शक्य नही है। किन्तु इस दुश्शक्य अनुष्ठान में भी सफलता प्राप्त करना इस जीवन का चरम पुरुषार्थ है। यही सर्वोपरि सिद्धि है और इसी सिद्धि मे आत्मा की कृतार्थता है। उर्दू के एक शायर ने क्या अच्छा कहा है —

दुरगी छोड के एक रग हो जा।
या मोम हो जा या संग हो जा।

इधर भी और उधर भी—दोनो तरफ मत रहो। अभी तक तुम्हारा मार्ग एक नही है । तुम एक ही तीर से दो शिकार

खेलना चाहते हो। किन्तु जो दुतरफ़ा चलता है, वह कही का नही रहता और किसी को भी वह खुश नही कर सकता।

सज्जनो ! इस मिश्रपन को छोडो। हमारी साधुपन, श्रावकपन, स्वध्याय, ध्यान, तप आदि-आदि की जो भी साधनाए है, वे इस मिश्रपन को छोडने के लिए ही है, अर्थात् आत्मा को पुद्गल के ससर्ग से पृथक् करके शुद्ध स्वरुप मे लाने के लिए है। मगर अधिकाश लोग इस सचाई को भूल जाते है और मिश्रपन को और अधिक बढावा देते हैं। यही नही, यदि कोई उसे पृथक् करना चाहता है तो बीच में हम चौधरी वन जाते है। जान नही, पहचान नहो, फिर भी माल खाने के लिए कोई न कोई रिश्ता खोज निकालते है। मगर इस तरह चौधरी नही बना जाता। आखिर हमारी कलई खुल ही जाती है।

एक तेली था। वह तेल पीलने और वेचने का व्यवसाय करता था। एक बार श्राद्ध के दिन आये। उस समय लोग अपने मृतक पितरो को, उनकी मरणतिथि के दिन उनके लिए तर्पण करते है। यानी उनके लिए यहा से पार्सल करके भेजते है, क्योकि शायद उनकी सन्तान के पास उनके पते आ जाते होगे ! और उस दिन प्राय भारतीयो की जन्मघूटी खीर बनाई जाती है। साथ ही मालपूआ और तरह-तरह की मिठाइया, शाक-सब्जी और नमकोन चीजें भी तैयार की जाती है।

श्राद्ध के दिनो में ब्राह्मण दुर्लभ हो जाते है। उनका बाजार तेज हो जाता है। ब्राह्मणो को भर पेट भोजन खिला कर दक्षिणा भी दी जाती है।

तेली ने सोचा, इस समय मेरा रोज़गार ठडा है तो थोडे दिनो के लिए मैं भी क्यो न पडित बन जाऊ ? उसने गुरुदत्त

और रविदत्त आदि पण्डितो सरीखी लम्बी धोती पहन ली, जनेऊ धारण कर लिया और छापा-तिलक लगाकर एक पोथी हाथ में ले ली। लोग उसे भी जिमाने ले जाने लगे। दो-चार दिन तो उसकी दाल गल गई, पर एक दिन किसी ने पूछ लिया, आप कौन हैं ?

तेली बोला। मैं ब्राह्मण पण्डित हू।

सज्जनो! जो झूठा होता है वह बोलने में जोर बहुत लगाता है। पूछने वाला होशियार था। उसके उत्तर से वह भांप गया कि यह कोई न कोई धूर्त्त है, बहुरूपिया है। असली ब्राह्मण नही मालूम होता। उसने पुन. प्रश्न किया—पण्डित जी आप कौन-से ब्राह्मण हैं ?

यह प्रश्न सुनते ही उसके पैरो तले की ज़मीन खिसकने लगी। जैसे चोर और झूठा आदमी घबरा जाता है, वह भी घबराया।

कोई-कोई लोग दिखावटी बातो से अपनी असलियत छिपाने की कोशिश करते हैं, परन्तु वह अन्तत सामने आ ही जाती है। उस समय उन ठगो का भडा फट जाता है, पर्दा फाश हो जाता है।

तो ऐसा प्रश्न करने पर उसके मुह से निकल पडा, या अल्लाह! क्या ब्राह्मण भी कई तरह के होते हैं ?

अल्लाह का नाम सुनते ही प्रश्नकर्त्ता समझ गया कि यह ब्राह्मण नही, मुसलमान है।

तेली भी समझ गया कि मेरी कलई खुल गई है। अब यहाँ ठहरने में कुशल नहीं। वह वहाँ से नौ दो ग्यारह होकर अपने घर भाग आया।

तो मै कह रहा था कि सब धार्मिक साधनाएँ मिश्रपन से अलग होने के लिए है। जैसे दूध और पानी तथा खल और तेल युक्ति से जुदा हो जाते है, उसी प्रकार जीवात्मा को जुदा करने के लिए भी युक्ति की आवश्यकता है। युक्ति बिना मुक्ति नही होती। हमारे जितने भी प्रयास है, वे सब प्रमाणित करते है कि हम किसी भी तरह पुद्गलो से अलग होकर अपने असली स्वरूप में विशुद्ध आत्मा के रूप मे आना चाहते है। किन्तु इतनी धर्म-क्रियाएँ करते हुए भी किसी-किसी मनुष्य में श्रद्धा नही है। वह सदैव प्राय शकाशील रहता है। किन्तु शास्त्रो का कथन है कि जिसके अन्त करण मे शका का साम्राज्य बना रहता है, वह अतत पथ से भ्रष्ट हो जाता है। अतएव किसी भी धर्म-साधना को प्रारभ करने से पहले मनुष्य के मन मे भगवान् के वचनो के प्रति पूर्ण श्रद्धा होनी आवश्यक है। जो सम्यग्दृष्टि होता है, उसका एक ही जीवनसूत्र होता है, एक ही घोषणा होती है, एक ही विचारणा और एक ही पुरजोर उच्चारण होता है और होना है एक ही पक्का विश्वास और वह यह है कि —

तमेव सच्चं णीसकं जं जिणेहिं पवेइयं।

जो तत्त्व राग-द्वेष आदि समस्त विकारो के विजेता एव केवल-ज्ञान और केवलदर्शन के धनी जितेन्द्रदेव ने प्ररूपण किया है, वही सत्य है और उसमे शका के लिए किंचित् भी अवकाश नही है।

जिन भगवान् चाहे सामान्य केवली हो अथवा तीर्थंकर हो, उनके केवलज्ञान मे कोई अन्तर नही होता। अन्तर सिर्फ अति-शयो मे है, आत्मिक विभूति मे नही। एक राजा है और दूसरा

राजा का सहोदर भाई है। दोनो की सम्मति में अन्तर नही होता, सिर्फ अधिकार मे अन्तर होता है। इसी प्रकार सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली के केवलज्ञान रूपी धन में कुछ अन्तर नही । पुण्य के प्रकर्ष के कारण बाह्य अतिशय में अन्तर पडता है। इसी कारण तीर्थंकर बडे माने जाते है, यद्यपि वे पुण्य-जनित अतिशय निर्वाण प्राप्त करने पर साथ नही जाते। साथ जाने वाले तो केवलज्ञान और केवलदर्शन ही है, जो आन्तरिक-आध्यात्मिक विभूति है।

उन केवलियो मे जाति या वर्ण की भी कोई छाप नही होती कि अमुक जाति का ही केवली हो सकता है और अमुक जाती का नही। कहा है —

> जात न पूछे साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
> मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ॥

सज्जनो! समरभूमि में शत्रु के विरुद्ध सग्राम मचाने वाली और विजय प्रदान करने वाली है तो वह है तलवार, न कि म्यान। म्यान का वहाँ कोई मोल नही, कुछ काम नही। इसी प्रकार मोक्ष की साधना में भी दस नम्बर या बीस नम्बर (दसता या बीसा) से काम नही चलता। उस साधना में कोई भी जाति या कोई भी वर्ग रुकावट पैदा नही कर सकता। मोक्ष के पथ पर चलने वाला कोई भी मुमुक्ष, चाहे वह किसी भी जाति का क्यो न हो, मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हाँ, शर्त है तो यही कि उसके चित्त में वीतराग की वाणी के प्रति पूर्ण सुदृढ श्रद्धा होनी चाहिए। जिसका मन शकाग्रस्त है, वह निर्वाण का अधिकारी नही हो सकता।

इस विषय को स्पष्ट रूप से समझने के लिए एक उदाहरण लीजिये—किसी नगर मे एक सेठ रहता था, मगर उसके पास धन नही था। दैवयोग से उसे एक सिद्ध पुरुप मिल गये। सेठ ने उनकी हार्दिक सेवा की और वे सेठ पर मेहरबान हो गये। उन्होने उसे एक मत्र दिया और कहा—शरद्पूर्णिमा की रात्रि में, नगर से बाहर, निर्जन स्थान मे, किसी वृक्ष के नीचे भट्ठी जलाना। भट्ठो पर तेल से भरी कढाई रख देना। ऊस वृक्ष की शाखा से कच्चे सूत का छीका बाँधना। छीका ठीक कढाई के उपर हो। फिर तुम निर्भय होकर, दृढ सकल्प के साथ उस छीके मे बैठ कर इस मत्र का जाप करना और छीके का एक-एक तार काटते जाना। इस विधि से मत्र सिद्ध कर लिया तो तुम्हे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो जायेगी। फिर जहा जी चाहे, स्वच्छदतापूर्वक विचरण करना। अगर मत्र के सवध में अथवा कच्चे सूत के छीके के विषय मे शका रक्खेगा तो तेल की कढाई में गिर कर जल मरेगा।

सेठ ने वह मन्त्र और मत्रविधि कागज पर लिख लिया और प्रसन्न होकर घर आ गया। उसे प्रसन्नता इस वात की थी कि मत्र सिद्ध हो जाने से रेल, हवाई जहाज़, गाडी आदि का किराया नही खर्च करना पडेगा और जब जहा जाना चाहूगा, तत्काल आकाश मे उडकर पहुच जाऊगा। इस प्रकार विचार करते-करते शरद्पूर्णिमा का दिन आ पहुचा। वह सोचने लगा कि आज मत्र की सिद्धि करनी है।

सज्जनो! वह सेठ मत्र सिद्ध करने के लिए छटपटा रहा है, किन्तु शका रूपी राक्षसी उसके पीछे पड गई। वह उसे मत्र न सिद्ध करने के लिए वाध्य करने लगी। उसके चित्त में रह-रह कर

आशंका उठने लगी कि कच्चे सूत के छीके में बैठा और कही सूत टूट गया तो सीधा कढाई के उबलते हुए तेल में जा गिरूंगा। ऐसा हुआ तो प्राणो से हाथ धोना पडेगा । इस आशका ही आशका में पडे रहने के कारण वह मत्र सिद्ध न कर सका । अन्त में वह यो ही मर गया । किन्तु उसने एक बुद्धिमत्ता की और वह यह कि मत्र और उसे सिद्ध करने की विधि कागज़ पर लिख कर वह तिजोरी में रख गया । उसने सोचा—मैं कायरता वश इस मत्र को सिद्ध न कर सका, किन्तु सभव है मेरा लडका बडा होकर इसे सिद्ध करले ।

सेठ का एक ही लडका था—जुआरी, लम्पट और दुराचारी। उसने अपने पिता के बचे-खुचे धन को स्वाहा कर दिया था और पेट भर खाने को भी मोहताज हो गया था । आप जानते हैं कि ऐसे दुर्व्यसनी और उडाऊ लोगो को बाजार मे उधार मिलना भी कठिन हो जाता है । ऐसे नाज़ुक समय मे नाते-रिश्तेदार भी मु ह मोडने लगते हैं ।

लडके ने तिजोरी टटोलना शुरू किया कि इधर-उधर रक्खा हुआ कुछ मिल जाय तो कुछ दिन आराम से कटे । पर उसे उस कागज़ के सिवाय वहा कुछ नहीं मिला । उसने कागज़ लेकर पढना आरम्भ किया तो पता चला कि यह मत्र है और इसे सिद्ध कर लेने पर मै आकाश मे उड सकता हूं और मनचाही सैर कर सकता हू । उसके हृदय मे उत्साह था, अत सब साम । लेकर वह बगीचे में एक वृक्ष के नीचे गया । सूत का छीका भी डाल से लटका दिया । अब वह हिम्मत करके वृक्ष पर चढा, किन्तु नीचे खौलता हुआ तेल देख कर उसके मन मे भय का सचार हो गया । वह भयभीत होकर नीचे उतर आया । इस प्रकार कई बार वह

चढा और उतरा। मन्त्रसिद्धि का प्रलोभन उसे वृक्ष पर चढाता था, परन्तु प्राणो का भय नीचे उतार देता था। इस प्रकार दुविधा मे पडा हुआ सेठ का लडका कई बार चढा और कई बार उतर गया।

सज्जनो! आप अपने अनुभव से जानते है कि कोई भी प्राणी, किसी भी स्थिति में क्यो न हो, मरना नही चाहता। अखिल विश्व के विराट वैभव की तुलना में भी प्राणो का मूल्य अधिक समझा जाता है। यही कारण था कि सेठ का वह लडका प्राणभय के कारण मन्त्र साधने मे समर्थ नही हो रहा था।

इधर सेठ का लडका वृक्ष पर चढने और उतरने का कार्य कर रहा था और उधर शहर में एक जौहरी के यहा चोरी हो गई। चोर बहुमूल्य रत्नो का एक डिब्बा चुरा कर भाग गया। लोगो ने उसका पीछा किया। वह चोर भागता-भागता अचानक उसी जगह जा पहुचा, जहा सेठ का लडका मन्त्र साधने का उपक्रम कर रहा था। लोगो ने उस बगीचे को घेर लिया और सोचा—अब भाग कर कहा जायेगा?

चोर से भी दुनिया बहुत डरती है। मैंने लोहारा सराय नामक यू पी के एक ग्राम में चौमासा किया था। वहा रात्रि को किसी बनिये के घर में एक चोर घुस गया। घर वाला चिल्लाया—पकडो, पकडो, चोर आया! आसपास के घर वालो ने यह आवाज़ सुनी तो वे घर मे घुसे-घुसे ही चिल्लाने लगे कि—आये, आये, पकडो, पकडो! किन्तु एक भी भला आदमी साहस करके घर से बाहर न निकला। प्रत्येक को यही भय था कि बाहर निकले नही कि खोपडी टूटी नही। दूसरे दिन जब घर वाले

ने कहा कि मेरे चिल्लाने पर भी कोई न आया तो पडोसी कहने लगे—आवाज़ तो दे दी थी। हल्ला भी मचा दिया था। मगर मरने के भय से घर से बाहर निकला नही गया !

हा, तो वह चोर, सेठ के लडके के पास आया। उसने पूछा—भैया, यह क्या कर रहे हो ?

लडके ने कहा—मत्र साधना चाहता हू, मगर कढाई मे गिर जाने का डर लगता है। मत्र मेरे पिता जी सभाल कर रख गये थे, किन्तु सिद्ध करने की हिम्मत नही पड रही है।

चोर ने कहा—तुम यह जवाहरात का डिब्बा लो और मत्र का कागज मुझे दे दो।

चोर ने विचार किया—पिता अपने पुत्र के लिए जो मार्गदर्शन करता है, वह हितकर ही होता है। अतएव यह मत्र सच्चा ही होना चाहिए। मगर मुझे तो यो भी मरना पडेगा। तो इस विद्या की सिद्धि के लिए ही क्यो न मरू ? कदाचित् विद्या सिद्ध हो गई तो प्राण भी बच जायेगे और आगे की जिन्दगी भी मजेदार हो जायेगी। परन्तु मरने की कोई सभावना नही है, क्योकि पिता पुत्र का अशुभचिन्तक हो ही नही सकता। कोई पिता अपने पुत्र का मरण नही चाहता।

चोर ने डिब्बा देकर मत्र का कागज़ ले लिया और पूर्ण विश्वास के साथ, निश्शक होकर वृक्ष पर चढ गया,तथा छीके मे बैठ कर मत्र का जाप करने लगा। एक बार मत्र का जाप करता है और सूत का एक तार काट देता है। जब आखिरी तार रह गया और चोर ने मत्र का जाप करके उसे भी काटा तो विद्या सिद्ध हो गई। उसी ... वह विद्या-बल मे आकाश मे उड गया।

सेठ का लड़का देखता ही रह गया। चोर का उडना देखकर उसे पश्चात्ताप तो हुआ, परन्तु जवाहरात का डिब्बा मिल जाने के कारण वह सतोष मान सका। वह सोचने लगा—चलो अच्छा ही हुआ। मरने का खतरा भी न उठाना पडा और जवाहरात भी हाथ लग गये।

उधर चोर की तलाश में खडे लोगो ने सोचा—बहुत देर हो चुकी है और चोर निकल नही रहा है। देखना चाहिए कि वह कहा छिप रहा है ? यह सोच कर वे उसी तरफ बढे जिधर सेठ का लडका डिब्बा लिये खडा था। लोगो ने उसे पकड लिया। डिब्बा छीन लिया और उसकी खूब मरम्मत की। लडका रोने चिल्लाने लगा और अपनी कथा सुनाने लगा। परन्तु वहा सुनने वाला कौन था ? आखिर वह लडका जेलखाने में डाल दिया गया। उसने अपनी सफाई मे सब कुछ कहा, परन्तु चोरी के माल के साथ पकडे गये व्यक्ति को कौन निर्दोष समझता ? किसी ने उसकी बात पर भरोसा न किया। उसे कारागार से मुक्त कराने वाला कोई न मिला।

भद्र पुरुषो ! यह तो एक दृष्टान्त है पामर प्राणियो को, सरल तरीके से, कोई गभीर विषय समझाने के लिए। इसका आशय यह है कि जैसे सिद्ध पुरुष ने सेठ को विद्या दी थी, उसी प्रकार गुरु महाराज ने आध्यात्मिक विद्या दी है और कहा है कि भगवान् के वचनो में शका मत करना। निश्शक भाव से गुरु के वचनो पर विश्वास करोगे तो तुम्हे ऊर्ध्वगामिनी विद्या प्राप्त होगी, अर्थात् मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

पर साधारण जीव सेठ की तरह और उसके लडके की तरह उस कथन पर भरोसा नही करते। जो भरोसा करता है, वह सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

सज्जनो ! अशक भाव से भगवान् के वचनो की आराधना करके अनन्त जीव मोक्ष में चले गये है, वर्तमान मे जा रहे हैं और भविष्य में भी अनन्त जीव मोक्ष मे जायेंगे। धर्मश्रद्धा से वडे-वडे पापियो के बेड़े पार हो गये।

मगर आजकल के भक्तो की मनोभावना निराली ही है। वे सामायिक या पौषधादि में बैठ कर भी क्या कहते है —

राज रिद्धी रमणी मिले, लक्ष्मी को नहि पार।

अरे ! क्या इन वस्तुओ की प्राप्ति के लिए धर्म की आराधना करते हो ? यह पदार्थ तो तुम्हे अनन्त वार प्राप्त हो चुके है। इनसे आत्मा का कल्याण नही, अकल्याण होता है, उत्थान नही, पतन होता है, सुख नही, दु ख मिलता है। इन्ही पर-पदार्थों की ममता तो ससार के समस्त अनर्थों की जड है। उस जड को उखाडने के लिए ही धर्म की साधना की जाती है और तुम उलटे धर्मसाधना करके इन्ही पदार्थों की कामना करते हो। भाइयो ! कैसे तुम्हारी आत्मा का उत्थान होगा ? किस प्रकार तुम दु.ख से मुक्त होओगे ?

इसीलिए मै वार-वार कहता हू कि अपनी दृष्टि शुद्ध बनाओ। दृष्टि शुद्ध हुए विना गाडी अगाडी चलने वाली नही है। अगर तुमने गुरु महाराज द्वारा वतलाये हुए महामत्र की विधिपूर्वक सिद्धि कर ली तो तुम्हे ऊर्ध्वगमन की सिद्धि प्राप्त हो जायेगी। वस, सवसे वड़ी शर्त यही है कि उसे श्रद्धापूर्वक जपते रहना। अगर श्रद्धाभाव न रहा तो कोरे के कोरे रह जाओगे, क्योकि साधना के लिए कष्ट भी सहन करोगे और शका रहने से सिद्धि भी प्राप्त नही होगी। इस प्रकार न इधर के रहोगे और न उधर

के रहोगे। ऐसी स्थिति में सेठ के लडके के समान ससार रूपी कारागार की यातनाए सहन करनी पडेंगी। अतएव सुदृढ श्रद्धाशील होकर कर्मों के तारो को काटते जाओ। नीचे तपस्या की भट्ठी जलाकर उसपर विवेक की कढाई चढा दो और करणी का तेल उसमें डाल दो। उग्र करणी करते जाओ तो एक दिन कर्मों के समस्त तार कटते ही ऊर्ध्वगमन की सिद्धि प्राप्त हो जायेगी।

सज्जनो! आकाश में उडने वाला तो फिर भी कभी गिर सकता है और नीचे आ जाता है, वल्कि उसे नीचे आना ही पडता है, किन्तु कर्मों के तार कटने पर जो ऊर्ध्वगमन-सिद्धि प्राप्त होती है, उससे फिर कभी अध पतन की सभावना ही नही रहती। फिर कभी भवप्रपच में पडने का प्रसग नही आता।

यह अपूर्व अवसर है। अतएव दु खो के मूल स्रोत को खोजने के लिए कटिबद्ध हो जाओ और अबाध अप्रतिहत गति से अग्रसर होओ। जो अविराम गति से अपने अगीकृत पथ पर चलते रहते है, वे लक्ष्य पर पहुच ही जाते है। भगवान् महावीर का पुनीत आदर्श अपने समक्ष रक्खो।

श्रद्धापूर्वक ज्ञान-चारित्र की आराधना करोगे तो निश्चय ही आपका परम कल्याण होगा।

ब्यावर
२२-८-५६

: ५ :

दुःखों का स्रोत—आरम्भ

वीर. सवसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं वुधा सश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नमः ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्ति कान्तिनिचय हे वीर ! भद्रं दिश ॥

× × ×

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा' पूज्या उपाध्यायका. ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका,
पञ्चैते परमेष्ठिन. प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥

सज्जनो और वहिनो !

अभी गायन के रूप मे आपको जो कीर्तन सुनाया गया है, उसमें अरिहन्त भगवान् के गुण वतलाये गये है। साथ ही यह भी वतलाया गया है कि अरिहन्त का गुणगान करने की हमें क्यो आवश्यकता पडी ? अरिहन्त के गुणो का गान करने से क्या लाभ होता है ?

यहा यह प्रतिपादन किया गया है कि जो मनुष्य श्रद्धा एव भक्ति के साथ परमात्मा का गुणगान करता है, कीर्तन करता है,

उसकी विशेषताओं को जिह्वा से दोहराता है और स्मरण करता है, वह स्वय अरिहन्त बन जाता है।

कहिये, इससे सुन्दर खजाने की कुंजी और क्या मिलेगी ? केवल श्रद्धा के साथ गुण गाना और अरिहन्त बन जाना, यह कितना सस्ता सौदा है ! कितनी सरल तरकीव है ! किन्तु श्रद्धा के साथ गुण गाना ही तो कठिन है।

सज्जनो ! परमात्मा के प्रशस्त गुणो के गान करने का मनोभाव उत्पन्न हो जाना, उस ओर आत्मभाव हो जाना वडा कठिन है। आज मनुष्य निन्दा और चुगली मे तथा विकथा और गपशप मे समय खर्च कर देगा और ऐसा करने मे परम आनन्द का अनुभव करेगा, किन्तु जब भगवान् के गुणगान का समय आता है तो उसे नीद आने लगती है। इस सम्वन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नही। आपको अपने-अपने मनीराम (मन) का भली-भाति अनुभव है। जब आप सामायिक करने बैठते है और परमात्म-स्मरण करने का उपक्रम करते है, तो आपके मनीराम कितनी उछलकूद मचाते है ? आप उन्हे इधर ले आना चाहते है, मगर वह इतने हठी है कि मानते नही। कभी इधर और कभी उधर भागते है और आपके नियत्रण को व्यर्थ वना देते है। उस समय आत्मा का और मन का सघर्ष होने लगता है, यद्यपि यह सत्य है कि इस सघर्ष में जो वलवान् होता है, वह अपने प्रतिपक्षी को पराजित कर देता है और स्वय विजयी वनता है,

मगर आत्मा में बल कब आता है ? आत्मिक शक्ति हो, आत्मीय वीर्य हो, तभी सघर्ष में सफलता मिलती है और तभी दुश्मन को पछाडा जा सकता है। ऐसा न हो तो दुश्मन ही आत्मा पर कावू पा लेता है।

हा, तो ज्ञानी कहते है कि प्रभु के गुण गाने से गुण गाने वाला स्वयमेव प्रभु वन जाता है। किन्तु यहा प्रश्न किया जा सकता है कि—यह ठीक है कि अरिहन्त में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदि अनेक प्रकार की विशेषताए थी, किन्तु उन विशेपताओ पर तो उनकी ही आत्मा का अधिकार है। उनसे हमारा क्या लाभ हो सकता है ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—यह ठीक है कि अरिहन्तो के गुण उनकी आत्मा से ही सम्वन्ध रखते है। किसी भी पदार्थ के गण उससे पृथक् नही हो सकते, क्योकि द्रव्य और गुण मे तादात्म्य सम्वन्ध होता है और तादात्म्य सम्वन्ध किसी भी काल मे, किसी भी उपाय से भग नही किया जा सकता। किसी द्रव्य के गुण यदि उससे भिन्न हो जायें तो न तो उस द्रव्य की ही सत्ता शेष रहे और न उस गुण की ही। क्योकि द्रव्य के विना गुण और गुण के विना द्रव्य कही रह ही नही सकता। अतएव अरिहन्तो के गुण उनकी आत्मा को छोडकर अन्यत्र नही जा सकते—हमारी आत्मा में भी नही आ सकते। पानी में जो शीतराता है, वह पानी का ही गुण है। किन्तु जो पानी के पास वैठता है, उसे क्या शीतलता की प्राप्ति नही होती ? उसे शीतलता का अनुभव होता है, शीतल पवन लगता है और यदि वह सताप से पीडित है तो उसका सताप शान्त हो जाता है, आह्लाद की अनभूति होती है। इसके विपरीत वह व्यक्ति यदि उवलते हुए पानी के कढाव के समीप वैठता है तो उसमे से निकलने वाली उष्णता का प्रभाव भी उसपर होता है।

अरिहतो को आत्मा शीतल आत्मा है, क्योकि उसमें से कषायो की [illegible] समूल नष्ट हो चुकी है। उनकी आत्मा

स्वच्छ, पवित्र एव शीतल सरोवर की तरह है। जो उनके सम्पर्क में आता है, जो उनकी संगती करता है, जो उनकी कल्याणी वाणी का श्रवण करता है और जो उनका गुणगान करता है, उसकी आत्मा को भी उनके गुणो की शीतल वायु स्पर्श करके शान्ति प्रदान करती है। कहा है —

'ससर्गजा दोषगुणा भवन्ति।'

अर्थात्—ससर्ग से दोषो की भी उत्पत्ति होती है और गुणो की भी उत्पत्ति होती है।

यदि कोई मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी विषयलम्पट, रागी और द्वेषी व्यक्ति, चाहे वह कोई साधारण मनुष्य हो या देव रूप मे, जो भी उसके ससर्ग में आता है तो उसे वहा शान्ति नही मिल सकती। जैसे गर्म पानी के पास जाने पर शीतलता नही मिलती, किन्तु उष्णता की ही प्राप्ति होती है। इसी प्रकार आत्मशान्ति के इच्छुक व्यक्तियो को तो शान्तिमयी आत्मा के पास जाने से ही शान्ति मिल सकती है और यह गुणगान करना भी उस लोकोत्तर शान्ति से परिपूर्ण वीतराग आत्मा के ससर्ग मे आना ही है और उसके साथ सबध जोडना है।

सज्जनो! मन मे जितेन्द्रदेव के प्रति श्रद्धा या निष्ठा होना, पूज्य भाव होना ही उनके साथ मानसिक संबध जोडना है। वचनो द्वारा उनका गुणगान करना वाचनिक सम्बन्ध स्थापित करना है और काया के द्वारा अरिहन्त भगवान् को नमस्कार करना, वे जब यहा होते है तो उनकी आहार-पानी से सेवा करना, उपदेश सुनना तथा उनके द्वारा उपदिष्ट साधनारूप धर्मक्रियाओ का आचरण करना उनसे कायिक सबध जोड़ना है।

याद रखना चाहिए कि जब तक हमारा मन, वचन और काय के योगो द्वारा अरिहन्तो के साथ सम्बन्ध नही हो जाता, तब तक हम अरिहन्त नही बन सकते। अगर तीनो में से किसी भी एक योग की न्यूनता रह जायेगी तो भी हमारी आत्मा अरिहन्त भाव प्राप्त नही कर सकती। जो भी रसायन बनाई जाती है, अगर उसके नुस्खे के अनुसार सारी चीजें हो, तो वह रसायन बनती है, अन्यथा नही बन सकती। अतएव हमें तीनो योगो द्वारा अरिहत परमात्मा के साथ सबध जोडना चाहिए। अर्थात् मन मे उनके प्रति श्रद्धाभाव, भक्तिभाव और बहुमान का भाव होना चाहिए, वचनो से गुणगान होना चाहिए और काय से उनके द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना चाहिए। यही उनके साथ सम्बन्ध जोडना है। अरिहनो के नाम पर नाचना, कूदना, तान तोडना और जीवो की हिंसा करना, उनके साथ सम्बन्ध जोडना नही है बल्कि तोडना है। मन, वचन, काय से प्रभुभक्ति की तरफ लगने से ही परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

सज्जनो! अरिहतो का हमारे उपर महान् उपकार है। जो व्यक्ति हमारे उपर थोडा-सा भी उपकार कर देता है, हम उसका बडा ऐहसान मानते है और बदला नही चुका सकते, तब अरिहत भगवान् द्वारा कृत उपकार की महत्ता का तो कहना ही क्या है! उसका बदला तो भव-भव में प्रयत्न करके भी सहज मे नही चुकाया जा सकता।

इस दुनिया मे जिसका कोई नही है, उसके आधार भगवान् है। भगवान् के समवसरण मे, दरबार मे, गरीब और अमीर, पशु और पक्षी तथा दुष्ट और सज्जन, सभी को समान अधिकार प्राप्त है। वहा शूद्रो को भी जाने का उतना ही अधिकार है, जितना

किसी ब्राह्मण को । उच्चता-नीचता की भावना को लेकर मनुष्य जाति के जो भी विभाग किये गये है, उनके पीछे केवल स्वार्थवृत्ति ही काम कर रही है। मनुष्य जाति एक है और अखड है और उसमें कोई आधारभूत भेद नही। सामाजिक सुविधा के लिहाज से वर्णों की व्यवस्था अवश्य की गई थी, परन्तु उसमे उच्चता-नीचता की कोई कल्पना नही थी। स्वार्थी वर्ग ने वाद मे यह विष-वेल बो दी है।

भगवान् के समवसरण मे वारह प्रकार की परिषद् आती थी। उसमें देवता, मनुष्य और तिर्यञ्च भी होते थे। सभी भगवान् की शरण मे आकर जीवनोत्थान कर सकते थे। सभी को परम शान्ति प्राप्त करने का समान अधिकार था। वीतराग प्रभु का हाथ सव के सिर पर समान था। सभी उनके पीयूषमय प्रवचन से लाभ उठाते थे।

तो मै कह रहा था कि जव अरिहतो का हमारे प्रति इतना महान् उपकार है, जिससे हम कभी उऋण नही हो सकते, तो हमारा यह पवित्र कर्त्तव्य है कि हम शुद्ध हृदय से उनका गुण-गान करें, तभी हम कृतज्ञ हो सकते है।

भद्र पुरुषो, अरिहन्त भगवान् भूले-भटके जीवो को राह दिखलाने वाले है, दिशाभ्रान्तो को दिग्दर्शन कराने वाले है और अनन्त काल से जो जीव दु खो की यातना भोग रहा है और कर्मरोग से पीडित है, उसके लिए वही सच्चे वैद्यराज बन कर वीमारी से बचाने वाले है। यह ससारी जीव अनादि काल से दु खो से घवरा रहा था, छटपटा रहा था और यातनाओ से छुटकारा पाने के लिए तड़प रहा था और दु खो से मुक्त होने की कोशिश कर

रहा था, किन्तु उसे राहत नहीं मिली। तो उस दुःख का—कर्मरोग का पता लगाने के लिए अनेक कर्मठ व्यक्ति कमर कस कर चले, किन्तु वाधाओ और आपत्तियो के थपेडो से घवरा कर वापिस लौट आये और सफलता प्राप्त न कर सके। किन्तु उनमे एक महान् वीर-पुरुषोत्तम भी था, जो प्रचड से प्रचड वाधाओ के सामने झुका नही, विपदाओ की पर्वतमालाएँ जिसका पथ अवरुद्ध न कर सकी, विघ्नो के महासागर जिसकी गति को कुठित न कर सके और परीषहो के अल्हड तूफान जिसके वेग को मन्द न कर सके। वह दृढनम सकल्प और अव्याहत पुरुषार्थ की पूजी लेकर प्रस्थित हुआ था और चला तो चलता ही चला। कही भी ठिठका नही, रुका नही। वह वीरवर जगत् में महावीर के नाम से विख्यात हुआ। उसने दुःखो के मूल को समझ लिया, पा लिया और खोज कर दुनिया से कहा —

आरंभज दुक्खमिणं ति नच्चा।

अर्थात्—प्राणियो को सभी प्रकार के दुःख हिंसा आदि आरभ से ही होते है। ऐसा जान कर जो दुःखो से वचना चाहते है, उन्हे आरभ से वचना चाहिए।

इसी सिद्धान्त पर भगवान् महावीर का जीवन चला। उन्होने अपना समस्त जीवन अनारभ और अहिंसा के आधार पर व्यतीत किया और जगत् के हित के लिए उसी मार्ग का प्रकाश किया।

कई दिनो से इस मूल सूत्र के लिए भूमिका वनाई जा रही थी और आज उसके उल्लेख का अवसर आ सका। इसमें कोई आश्चर्य की वात नही, क्योकि विवाह होने मे वहुत देर नही लगती, किन्तु विवाह की भूमिका के लिए वहुत दिन पहले ही

तैयारी शुरू हो जाती है। इसी प्रकार मैंने भी इस सूत्र के लिए बहुत दिनो से आपकी आत्मभूमिका को स्वच्छ करने का प्रयत्न किया है और अब यह सूत्र शायद आपकी उर्वरा बुद्धि-भूमि मे बीज का काम दे सकेगा।

तो भगवान् महावीर ने फरमाया है कि ससार में जितने भी दु ख है, उनका प्रथम और मूल कारण शरीर है। यद्यपि शारीरिक दु खो से अतिरिक्त मानसिक दु ख भी कहे जाते है, मगर वह भी शरीर के होने पर ही होते है और शरीर के अभाव मे नही होते। अतएव उनका मूल कारण भी शरीर ही है। यह शरीर ही समस्त दु खो और रोगो का घर है। इसमे हीरे-पन्ने नही किन्तु मल-मूत्र भरे पडे है, गदगी भरी पडी है और यह नाना प्रकार की व्याधियो का घर है। जो महाभाग शरीर से मुक्त हो चुके है—अशरीर अवस्था प्राप्त कर चुके है, उन्हे कोई दु ख नही होता।

यद्यपि यह शरीर अनेक प्रकार की व्याधियो का घर है और अत्यन्त अशुचि से परिपूर्ण है, तथापि यह भी सत्य है कि ससार के समस्त दु खो का आत्यन्तिक निरोध इसी शरीर के द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार यह शरीर ऐसा है कि इसी से दु ख भोगे जाते है और इसी से दुखो का निवारण भी किया जाता है। चीज तो वही है किन्तु वैद्यराज ठीक ढग से उसका सेवन कराते है तो रोग कम हो जाते या मूलतया नष्ट हो जाते है, यदि कोई मूर्ख सेवन कराता है तो रोग की वृद्धि हो जाती है। यह सेवन करने की विधि पर निर्भर है।

तो ससार मे प्राणी तन, धन, जन, मन या कण से दु खी नजर आते है, अर्थात् कोई शरीर से लाचार है—बीमार है, किसी के पास धन नही है और धन के अभाव मे दु ख पा रहा है,

किसी के मन में चिन्ता और शोक है तो वह भी दु.खी हो रहा है, कोई इष्टवियोग और अनिष्टसयोग के कारण दु ख का अनुभव कर रहा है। इस प्रकार यह ससार दु खो का भडार है और कोई भी प्राणी ऐसा दिखाई नही देता जो अपने आपको पूर्ण सुखी कहता या समझता हो। वास्तव में ऐसा सभव नही है कि ससार में रहते हुए भी कोई दु खो के स्पर्श से शून्य रह सके।

इन उपरोक्त सब दु खो का मूल स्रोत आचाराग सूत्र में भगवान के द्वारा प्रदर्शित कर दिया गया है, जो बडे ही महत्त्व का है, हृदयग्राही है और सत्य वस्तुस्वरूप का निदर्शक है। यह भगवान् के साक्षात् वचन है, हमारी या तुम्हारी कल्पना नही है। इस वचन पर भगवान् की छाप है। ऐ भगवान् का नाम लेने वालो! और ऐ भगवान् के नाम पर हिंसा करने वालो! भगवान् के मुख से निकले हुए सूत्र को हृदय मे उतारो। यदि उतार लोगे तो तुम्हारा बेडापार हो जायेगा। किन्तु भगवान् के वचनो के विरुद्ध यदि मनमानी करते हो और भगवान् को भी पाप का भागी बनाते हो तो इससे तुम्हारा कल्याण होने वाला नही है।

शास्त्र में आया है कि तुम्हे किसी देवी-देवता ने दु ख नही दिया है, ईश्वर ने दु ख नही दिया है, ग्रह-नक्षत्र ने दु ख नही दिया है और पडोसी ने भी दु ख नही दिया है, किन्तु यह सभी दु ख, जो तू भोग रहा है, आरम्भज ही है। सब दु खो का दाता आरभ है। ससार के प्राणियो के साथ जितने भी दु ख लगे है, सब आरभ से उत्पन्न होने वाले है और उस आरभ के नौ भग है या नौ विकल्प है और वे इस प्रकार है —

मानसिक, वाचिक और कायिक—यह आरभ के मूल तीन भेद है। तीनो के भी सरभ, समारभ और आरभ के भेद से

तीन-तीन भेद होते है। इस प्रकार सब मिल कर नौ भग बन जाते है।

यहा आरभ तीसरे नंबर पर है। उससे पहले दो श्रेणियाँ है, जो आरभ को प्रोत्साहन देने वाली और ठीक रूप से बल देने वाली है। अतएव जब तक पहले की दों श्रेणियो या भूमिकाओ को नही समझ लिया जाता, तब तक आरभ का ठीक तरह से स्पष्टीकरण नही हो सकता।

आपको पता होगा कि सज्ञा की दृष्टि से ससारी जीव दो प्रकार के होते है—सज्ञी और असज्ञी। जो मन वाले है, वे सज्ञी और जो विना मन के है, वे असज्ञी कहलाते है। मनुष्यगति और तिर्यंच गति मे सज्ञी और असज्ञी दोनो प्रकार के जीव होते है, किन्तु देव और नारक सज्ञी ही होते है। यद्यपि असज्ञी जीव देवगति और नरकगति में जाकर उत्पन्न होते है, परन्तु वे वहा जाकर सज्ञी हो जाते है। असज्ञी जीव मर कर नरक में जाये तो पहले नरक तक ही उत्पन्न होता है।

सज्जनो! मन मे भी वडी शक्ति है। यह सज्ञी मनुष्य के जीवन को ऊचे से ऊचा ले जाने में भी समर्थ है और नीचे से नीचे पहुचा देने में भी समर्थ है। मन के अभाव में जीव ज्यादा से ज्यादा पाप या पुण्य नही कर सकता। अतएव वह यदि देवलोक मे जाये तो प्रथम देवलोक तक ही जाता है और नरक जाये तो प्रथम नरक तक जा सकता है। कहा भी है —

मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो।

यद्यपि पाप काय से और वचन से भी किये जाते हैं, किन्तु समस्त पापो का मूल यदि कोई है तो वह मन ही है। जो व्यक्ति

किसी को वचन द्वारा अथवा काय द्वारा दुःख देना चाहता है, वह सर्वप्रथम मन में वैसा विचार करता है। मन के बल-बूते पर ही फिर वचन और काय प्रहार करना शुरू कर देते हैं। अतएव मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु या मित्र है तो मन है। यह आत्मा मन के अधीन होकर सातवें नरक में और मन की परिणामधारा बदलते ही २६वें देवलोक में भी जा सकता है। काय से और वचन से कुछ भी न करके केवल अपनी मन की भावना ही भावना द्वारा क्षण भर में सातवें नरक में और दूसरे ही क्षण में सर्वार्थसिद्ध विमान में भी पहुँचने की सामग्री उपार्जन कर लेता है।

आशय यह है कि तुमको धन मिल गया है, यह पुण्य का उदय है और लाभान्तराय कर्म का क्षयोपक्षय है। किन्तु अब धन का दुरुपयोग या सदुपयोग करना तुम्हारे हाथ की बात है। उसी धन से चाहो तो दान देकर, वस्त्र, भोजन, गैया आदि देकर पुण्योपार्जन कर सकते हो और ऊँचे देवलोक के अधिकारी भी बन सकते हो। शक्ति मिली है तो उसका सदुपयोग या दुरुपयोग करना धनी के अधीन है। शस्त्र तुम्हारे हाथ में है, उसे चाहे रक्षक बना लो, चाहे भक्षक बना लो। यदि उसे ठीक ढंग से पकड़ कर, समय आने पर, शत्रु के सामने खड़े हो जाओगे तो आत्मरक्षा कर सकोगे और यदि उसे लेकर बेढंग से बिस्तर पर सोओगे तो इधर से उधर करवट बदलने पर वही तुम्हारा भक्षक भी बन सकता है।

याद रखना, शास्त्रकार बतलाते हैं कि सबसे बड़ा पाप का कारण मन है। मनोहीन असञ्ज्ञी जीव न अधिक पुण्य कर सकते हैं, न पाप कर सकते हैं और न उनकी विशेष ऊँची नीची गति ही होती है क्योंकि उन्हें मन प्राप्त नहीं है। वे सिर्फ वचन

और तन से ही पाप करते हैं। उनमे विचारणा करने की शक्ति नही है, वे सोच नही सकते, क्योकि सोच-विचार मन के द्वारा ही होता है। यह मन.शक्ति न होने के कारण वे अगर देवगति मे जाते है तो भवनपति या वाणव्यन्तर ही होते हैं—ज्योतिष्क और वैमानिक देव नही बन सकते, क्योकि इसके लिए जो विशेष पुण्योपार्जन होना चाहिए, उसे वे मन के विना कर नही सकते। जिसे वडा व्यापार करना है, उसकी पूजी भी उसी अनुपात से बहुत होनी चाहिए। थोडे-से द्रव्य से कोई भारी व्यापार करना चाहे तो कैसे हो सकता है? इसी प्रकार बहुत उच्च गति पाने के लिए मन की सहायता चाहिए। जो मन मे उदारता रक्खेगा, मन से प्रशस्त चिन्तन करेगा, शुभ परिणाम धारण करेगा, वह महान् पुण्योपार्जन कर सकता है। आपकी भावना क्या होनी चाहिए?

सर्वे सुखिन सन्तु, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दु खमाप्नुयात्॥

अर्थात् ससार के सभी जीव सुखी हो, सभी जीव नीरोग हो, सवका कल्याण हो और किसी को भी दु ख की प्राप्ति न हो। 'सुखी रहे सब जीव जगत् के, कोई कभी न घवरावे'। यह उपरोक्त पक्ति, मेरी भावना नामक एक छोटी सी पुस्तिका में छपी हुई है। हा, तो इस प्रकार मन में विश्व के प्राणी मात्र के लिए यही शुभ भावना रहनी चाहिये कि सभी जीव सुखी हो और किसी को दु ख न देखना पडे। यह भावना 'मेरी भावना' की पोथी तक ही सीमित न रह जाये, किन्तु हृदय मे उतर जाये, तभी आपका कल्याण होगा। अगर यह भावना वचन मात्र तक सीमित

न रह कर आत्मा की निज की भावना बन जायेगी, तभी समझो कि वह मेरी भावना है। अन्यथा वह तेरी चीज़ नही, पुस्तक की है। तेरी चीज़ तो तभी हो सकती है, जब वह तेरे अधिकार मे हो। मानो, एक चीज दूसरे के कब्जे मे है और तू समझता है कि यह मेरी है, किन्तु जब तक पूर्णतया उसपर तेरा अधिकार नही हो जाता, समझ ले कि वह तेरी नही, परायी है। 'मेरी भावना' को बार-बार पढने की सार्थकता तभी है जब उसे पढने से राग-द्वेष की प्रचण्ड आग शान्त हो जाये और प्राणीमात्र के प्रति समभाव की जागृति हो जाये। जीभ से बोल देने मात्र से आत्मा का हित होने वाला नही। किसी को मालूम है कि इस नुस्खे में दुस्साध्य रोग की दवा लिखी हुई है और उस दवा का सेवन करके कितने ही रोगी नीरोग हो गये है। किन्तु जब तक वह उसके अनुसार दवा बना कर सेवन नही करेगा और बार-बार नुस्खे को ही पढता रहेगा, तब तक उसके रोग की उपशान्ति नही होगी। रोगोपशान्ति के लिए औषध का सेवन ही उपयोगी होगा, नुस्खे का रटन उपयोगी नही हो सकता।

इसी प्रकार 'मेरी भावना' मे आत्मा की बीमारी को दूर करने के लिए सुन्दर-सुन्दर नुस्खे लिखे हुए है, मगर उन्हे बोल लेने मात्र से कैसे लाभ हो सकता है? उन नुस्खो का सेवन करो, जीवन मे उतरोगे और उसमे लिखी हुई समस्त श्रेष्ठ बात को धारण करके जीवनोत्थान के कार्य करोगे, तो ही नीरोग अवस्था प्राप्त कर सकोगे। मगर आज के मानव को तो बीमारी ही कुछ निराली है। ज्यो-ज्यो दवा दी जाती है, त्यो-त्यो रोग की अभिवृद्धि होती है। इसका कारण यह नही कि दवा ठीक नही है, किन्तु रोगी की पथ्य के प्रति उपेक्षा है। उसके लिए ऐसे

कुशल वैद्य की आवश्यकता है, जो नुस्खे के मुताबक ही दवा बना कर दे और फिर उसके पथ्यपालन को भी देख-रेख रक्खें ।

हा, तो मै यह कह रहा था कि मन के द्वारा मनुष्य अपने भविष्य को उन्नत भी बना सकता है और निकृष्ट भी बना सकता है । मन वाले सज्ञी जीव चारो गतियो मे है, किन्तु असज्ञी जीव मनुष्य गति और तिर्यंच गति में ही होते है । सज्ञो जीव के लिए मोक्ष का द्वार भी खुला है । उसके लिए सारी विलायतें खुली है । वह जहा जाना चाहे, वहा जा सकता है और जहा से चाहे वहा से माल मगवा सकता है । किन्तु असज्ञी जीव मे वह शक्ति नही है और शक्ति नही है तो वह अधिक लाभ और हानि का अधिकारी भी नही है ।

तो आरम्भ की तीन श्रेणिया है । उनमे पहली श्रेणी है सरभ अर्थात् किसी काम को प्रारम्भ करने का उपक्रम करना । किसी मनुष्य, देव, नारक या तिर्यंच प्राणी के मन मे किसी को दु ख देने के, पीडा पहुचाने के विचार उत्पन्न होना सरभ है । ऐसी दुष्ट भावनाए प्राणी के मन में प्राय उत्पन्न होती रहती है । इस प्रकार की भावना की शुरूआत को मन का सरभ कहते है । जब सरभ हो गया तो वह दु ख देने के जो साधन थे, सामग्री थी, जिन-जिन कारणो से वह किसी का बुरा कर सकता था, उन साधनो को जुटाने लगा । इस प्रकार मन ही मन किसी को पीडा पहुचाने के साधन जुटाना मन का समारभ हो गया । इस प्रकार सरभ और समारभ करके वह पाप का भागी वन गया । यद्यपि उसने अभो तक किसी का कुछ बिगाड़ा नही है, तथापि बिगाडने को भावना उत्पन्न होने के कारण और साधन सामग्री

जुटाने के कारण उसे पाप का भागी बनना पडा। उसकी आत्मा पाप से भारी हो गई।

इसके पश्चात् जो कुछ करने का विचार किया था और जिसके लिए साधन जुटाये थे—जो हानि किसी को पहुचानी थी, उसे मन ही मन कर डाला तो वह मानसिक आरम्भ हो गया।

आज मनुष्य को और कुछ नही तो कम से कम मन तो मिला ही है। वह चाहे तो उस मन से किसी का भला भी कर सकता है, ससार का भला सोच सकता है और मन पुण्य का उपार्जन कर सकता है। लघुकर्मी जीव तन, मन और धन से दूसरो का भला करता है। मन से किसी का हित सोचने में न किसी प्रकार की कठिनता होती है और न धन व्यय होता है। बल्कि दूसरो का हित चाहने से, दूसरो का हित हो अथवा न भी हो, सोचने वाले का हित तो हो ही जाता है। कितना सस्ता सौदा है, फिर भी अभागा मनुष्य अपने मन को अशुभ चिन्तन से हटा कर शुभ चिन्तन मे प्रवृत्त नही करता! किन्तु जो ऐसा नही कर सकता, वह अपने उस प्रचुर पुण्य को, जिसके उदय से मन की प्राप्ति होती है, व्यर्थ ही नष्ट करता है। यही नही, वरन् उस पुण्य-प्राप्त मन से घोर पाप का भी सचय कर लेता है। एक उर्दू-शायर कहता है —

> है नहीं मुश्किल जीतना दस लाख सुभटो का।
> है आफरूं उसकी कि जिसने अपना मन जीता॥

सज्जनो! वासुदेव मे दस लाख योद्धाओ—शूरवीरो को पछाडने का बल होता है। वे अकेले दस लाख वीर सुभटो को पछाड देने मे समर्थ होते है। साधारण मनुष्य उनके लिए मेंढक के

समान है। यद्यपि एक मनुष्य दस लाख योद्धाओ पर विजय प्राप्त कर ले, यह विस्मयजनक बात है, फिर भी वासुदेव मे वह विस्मय-कर असाधारण शक्ति होती है। इतनी प्रचण्ड शक्ति के धारक वासुदेव के लिए भी मन को जीतना सरल नही है। शायर कहता है —

उठाया कोह रुस्तम ने, अगर तो सख्त नादा है।
उठाना दिल का दुनिया से, अजबकारे नुमायां है॥

आपने रुस्तम पहलवान का नाम तो सुना है न ? उसने अच्छे-अच्छे पहलवानो को कुश्ती युद्ध मे पछाड दिया था। हरेक को उसके सामने आने की हिम्मत नही होती थी। और कहने को तो ससार रुस्तम के सम्बन्ध मे यह भी कहता है कि उसने कोह-पर्वत भी उठा लिया था, अर्थात् उसमे बडी जबर्दस्त शक्ति थी। यद्यपि पहाड उठा लेने योग्य वस्तु नही है, तथापि आलकारिक कथन इस प्रकार के होते है और अलकार के पर्दे को हटा दिया जाये तो इस का अर्थ यही होगा कि उसमें अद्भुत और असाधारण शक्ति थी। क्योकि एक आदमी बडी से बडी वस्तु को हिला सकता है, किन्तु उठा तभी सकता है जब कि वह उसके कधे पर आये। पहाड कधे पर आ नही सकता, अतएव उठाया भी नही जा सकता। अतएव हमे यही समझना चाहिए कि यह उन महान् वीरो की शक्ति का विशेष ढग से किया गया वर्णन है।

मगर उर्दू शायर कहता है कि कदाचित् मान लिया जाये कि रुस्तम ने पहाड उठा लिया और उसमे असाधारण शक्ति थी, मगर ऐसा करके भी उसने कोई बुद्धिमत्ता नही दिखलाई। इतनी शक्ति पाकर भी उसने उठाया तो पहाड उठाया! इससे

उसे क्या लाभ हुआ ? कुछ भी तो नही। अगर पहाड उठाने के वदले वह निन्दा से, चुगली से, राग-द्वेष से और बुरी भावनाओ से अपने मन को ऊचा उठा लेता तो उसकी उस प्रचण्ड शक्ति का सदुपयोग हो जाता और उसका नाम सुनहरी अक्षरो में लिखने योग्य हो जाता। मगर उसने उठाये भी तो पत्थर उठाये ! कोई ऐसी चीज नही उठाई, जिससे उसका कल्याण हो जाता ! और फिर पत्थर तो पत्थर ही है, चाहे घर का हो, चाहे वाहर का। ठोकर लगी नही कि चोट आई, क्योकि घर का पत्थर भी कोई रवर का नही होता। उसका धर्म चोट पहुचाना है और चोट पहुचाये विना वह नही रहेगा।

तो कवि कहता है—रुस्तम ने अगर पहाड उठाया तो वडी गलती की। अगर वह उसी शक्ति को, पापो से मन को ऊँचा उठा देने मे लगा देता तो उसका वेडा पार हो जाता। मगर आज निरर्थक कार्यों में और पाप के कार्यों मे शक्ति लगाने वाले वहुत है। धर्म मे अपनी शक्ति व्यय करने वाले विरले ही मिलते है। जिनकी गति-मति खोटी होती है, वे निन्दा और चुगली करते रहते है। जो लोग मुँहपत्ती वाँध कर भी और धर्मस्थानक में भी अपनी पाप-रामायण चलाते रहते है, वे घर पर कव चूकने वाले है ? धर्मस्थानक मे तो धर्म की साधना ही होनी चाहिए। परन्तु—

दिन गँवाया वातो में, रात गँवाई सोय।
दोय घड़ी प्रभु नहि भज्यो, मुक्त कहा से होय ॥

दिन वातो में व्यतीत कर दिया और रात्रि सोकर खो दी। ऐसे लोग धर्मसाधना कव करेगे और धर्मसाधना के विना मुक्ति कैसे पायेगे ?

तो मै कह रहा था कि मन से प्राणी कल्याण भी कर सकता है और अकल्याण भी कर सकता है । वह धन से पुण्योपार्जन भी कर सकता है और पाप भी कमा सकता है। मनुष्य को पुण्य से पचेन्द्रिय पर्याय और उसमे भी मनुष्यभव मिल गया। इतना पाकर यदि कोई उसका सदुपयोग करता है, तब तो वह धर्म और पुण्य का भागी बनता है और यदि निन्दा-चुगली आदि पाप करके दुरुपयोग करता है तो पाप का भागी बन जाता है । इसी मन के द्वारा मनुष्य स्वर्ग और नरक भी प्राप्त कर लेता है।

आपने सुना ही होगा कि प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को इस मन ने क्या-क्या नाटक दिखलाये । काय से तो वे ध्यान मे निश्चल खड़े थे, किन्तु दुष्ट मन के वशीभूत होकर, क्षण-क्षण मे बदलने वाली परिणामधारा से उन्होने प्रथम, द्वितीय यावत् सातवे नरक तक का टिकट कटा लिया था। मगर ज्यो ही मन ने पुन मोड खाया, परिणामधारा पलटी और शुभ परिणामो की जागृति हुई तो सोचने लगे—किसका राजपाट और किसका बेटा-बेटी । हे आत्मन् ! तुझे इन बातो की चिन्ता क्यो करनी चाहिए ? जिस कीचड में से निकल चुका है, अब फिर क्यो उसमें फँस रहा है ? ऐसा सोचा और उनकी दुनिया दूसरी हो गई। वह पहले सोचते थे—राज्य पर शत्रु ने आक्रमण कर दिया है। वह मेरे बेटो को मार रहा है। मै साधु बन गया तो क्या हुआ, आखिर तो अभी जीवित हूँ ! मै क्षत्रिय हूँ और क्षत्रिय का धर्म है कि वह शत्रु से देश की रक्षा करे। परन्तु जब मन ने अपना गलत रास्ता छोड कर सही रास्ता पकडा तो उन्हे वास्तविकता का बोध हुआ। इस ससार में कोई किसी का शत्रु नही, मित्र नही, पुत्र नही। सभी जीवो के साथ अनन्त-अनन्त बार सब प्रकार के सबध हो चके है ! फिर

किससे प्यार और किससे वैर किया जाये ? ऐसा बोध होते ही और परिणामधारा उच्चकोटि पर पहुँचते ही उन्हे सर्वज्ञ-सर्वदर्शीपन प्राप्त हो गया। वास्तव में मन के विकार ही दुखप्रद होते हैं। किसी ने सत्य ही कहा है —

सुखाय दु खाय च नैव देवा
न चापि काल' सुहृदोऽरयो वा।
भवेत्पर मानसमेव जन्तो.।
ससारचक्रभ्रमणैकहेतुः ॥

अर्थात्—सुख अथवा दु ख न तो देवता देते है, न काल देता है। न मित्र सुख दे सकते हैं और न शत्रु दु ख पहुँचा सकते हैं। यह तो प्राणी का मन ही है जो ससार-चक्र मे परिभ्रमण का कारण होता है। समस्त सुख-दु ख मन की ही बदौलत प्राप्त होते हैं।

अतएव मन को सयम मे रखने की ही सबसे अधिक आवश्यकता है। मन का दमन किया जा सका तो इन्द्रियो का दमन करना चुटकियो का खेल हो जाता है, क्योकि इन्द्रियो को कुपथ या सुपथ मे प्रवृत्त करने वाला मन ही है। मन की प्रेरणा के बिना इन्द्रिया बेचारी कुछ भी नही कर सकती।

एक कहावत है—'सूत न कपास, जुलाहो से लट्ठमलट्ठा।' अर्थात् निष्कारण ही लोग आपस मे लडने-झगडने लगते है। इस जीव के साथ अनादि काल से विषय-विकार लगे है। उनकी ट्रेनिंग लेने की आवश्यकता नही रहती। कोई कु वारा देखता है कि—हाय, मेरे पडोसी की शादी हो गई है, किन्तु मेरी नहीं हुई; उसे यह विचार नही आता कि पिछले अनन्त जन्मो में मेरी

अनन्त शादियाँ हुई है । अगर इस-जन्म मे न भी हो तो क्या है ? भगवती सूत्र मे कथन है कि इस जीव के अनन्त काल में अनन्त नाते हो गये है । फिर भी उसकी भावना उधर ही जाती है ।

एक सेठ इसी शादी की गुत्थी को सुलझाने के विचार कर रहा था कि उसे नीद आ गई । सज्जनो ! मनुष्य जैसी भावना लेकर शयन करता है, उसे प्राय वैसा ही स्वप्न दिखाई देता है । जा धर्मकथा या धर्मविचारणा करते करते सोता है, उसे स्वप्न भी वैसा ही आता है । जब कोई नवकारमत्र का उच्चारण करता हुआ सोता है तो उसे नीद भी जल्दी आती है और स्वप्न भी आये तो प्राय अच्छा ही आता है । एक बजाज़ नीद में बोलता है — धोती फाड दो, फाड दो । इसका कारण यही है कि वह उसी चीज की भावना लेकर सोया था, अतएव अपने सस्कारो के कारण वैसा ही कहता है ।

एक बाबू साहब ससुराल जाने की तैयारी में थे । वह घर से चल कर स्टेशन पर पहुँचे तो देखा कि लोग टिकट खरीदने लगे है और गाड़ी रवाना होने मे देर नही है । वह हापता-हाँपता टिकटघर जाकर टिकटविक्रेता बाबू से बोला—बाबजी, जल्दी से टिकट दे दीजिये ।

बाबू ने पूछा—कहा का टिकिट चाहिए ?

उसने कहा—ससुराल का टिकट दे दीजिए ।

उसकी भावना ससुराल की ओर ही दौड रही थी और उसी के विचार दिमाग मे चक्कर लगा रहे थे , अतएव मुँह से भी ससुराल का टिकट ही निकला । उसे ससुराल की ही याद रह गई और वहा के स्टेशन का नाम कहना भूल गया । उसका यह

कहना सुन कर दूसरे लोग हँसने लगे और कहने लगे कि अच्छा आया विना पैसे का ड्रामा ! टिकट बाबू ने कहा—भाई, ससुराल का टिकट नही मिलता । यहा गाँव के टिकट मिलते है ।

हाँ, तो जव वह सेठ शादी का विचार करते-करते सो गया तो उसे स्वप्न आया कि उसकी सगाई हो गई है और शादी के लिए तारीख नियत हो गई है । वराती सव तैयार हो रहे है, लोग सज-धज कर आ रहे है और वह स्वय वडा बाका दूल्हा वन गया है ! उसकी सजावट मे कुछ कसर नही रह गई है ।

वरात रवाना हुई और लडकी वाले के घर पहुँच गई । यथासमय पाणिग्रहण की विधि सम्पन्न हुई और गाजे-वाजे के साथ वधू घर पर आ गई । शयनगृह मे दोनो पति-पत्नी शयन कर रहे है । तव वह सेठ कहता है—भाग्यवती ! गर्मी है जरा परे सरक जाओ । लो तुम न मानो तो मैं ही सरक जाता हूँ । और इस प्रकार कहता हुआ ज्यो ही वह अधिकाधिक सरका कि धडाम से नीचे गिर पडा और हड्डी टूट गई । डाक्टर के पास गया और प्लास्टर चढवाना पडा ।

डाक्टर ने सेठ से पूछा—क्या हुआ ? कैसे लगी ?

सेठ—डाक्टर साहव ! कुछ न पूछिए ! विना कुछ हुए ही मर गया !

डाक्टर—कुछ कारण तो होगा ?

सेठ—न सगाई हुई, न विवाह और हड्डी टूट गई ।

इसके वाद उसने अपने स्वप्न का हाल वतलाया और अपनी दुर्दशा के लिए रोने लगा ।

कहने का आशय यह है कि जीवो की आशा-पिपासा अनन्त काल से विपय-विकारो की ओर खिच रही है । निवृत्ति के पथ

पर कदम बढाना उनके लिए अत्यन्त ही कठिन हो रहा है।

यही बात प्रसन्नचन्द्र मुनिराज के विषय में लागू होती है। वे ध्यान-मुद्रा में है, साधू-अवस्था में हैं, किन्तु मन के चक्रव्यूह मे ऐसे फँसे कि मन ही मन द्वारा सातवे नरक के योग्य दलिए इकट्ठे कर लिए। परन्तु ज्यो ही उनका हाथ अपना मुकुट सँभालने के लिए सिर पर गया और मुकुट के बदले मुण्डित मस्तक का हाथ से स्पर्श हुआ कि मन पलट गया। उन्होने विचारो के उस चक्रव्यूह को तोडना शुरू किया। मन के बुरे विचार रूप शत्रुओ पर काबू करते-करते सातो नरक के योग्य जो दलिए थे, उन्हे नष्ट कर दिया। उनकी भावना उत्तरोत्तर शुक्लपक्षी होती गई, क्योकि कहा है—

भावना भवनाशनी।

वास्तव मे शुद्ध भावना अनन्त-अनन्त भवो का नाश करने वाली है। जैसे दियासलाई की छोटी-सी आग रूई के बडे-से-बडे ढेर को भी क्षण भर में भस्म कर देती है, उसी प्रकार शुद्ध भावना भी पापो के पुज को बात की बात मे नष्ट कर डालती है। भावना की बदौलत ही दान, शील, तप आदि की क्रियाए सफल होती है। कहा है —

भव्यैश्च भावना भाव्या, भरतेश्वरवद्यथा।
फलन्ति दानशीलाद्या, वृष्ट्या यथेह पादपा॥

अर्थात् भावना के प्रताप से दान, शील आदि धर्म फलप्रद होते है, जैसे वर्षा के कारण वृक्ष फल प्रदान करते है। अतएव भव्य

जीवो को भरत महाराज की तरह भावना आनी चाहिए। देखिए —

षट्खण्डराज्ये भरतो निमग्नस्ताम्बूलवक्त्रः सविभूषणश्च ।
आदर्शहर्म्ये जटिते सुरत्नैर्ज्ञान स लेभे वरभावतोऽत्र ।।

चक्रवर्ती भरत सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के षट्खण्ड राज्य में डूबे हुए थे। मुख मे पान का बीडा है और अग-अग पर आभूषण शोभा पा रहे है। सुन्दर एव बहुमूल्य रत्नो से जटित आदर्श महल मे स्थित है। फिर भी उत्कृष्ट भावना के प्रभाव से उन्हे केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई।

भावना मे कितनी शक्ति है और उत्तम भावना का क्या माहात्म्य है, यह बात भरत जी के चरित से भली भाति समझी जा सकती है। वस्तुत भावना ही धर्म का हृदय है, प्राण है। ठीक ही कहा है कि —

यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या ।

अर्थात् भाव-विहीन क्रिया यथेष्ट फल प्रदान नही करती।

हा, तो जब राजर्षि प्रसन्नचन्द्र मानसिक उतार-चढाव की तेज रफ्तार मे से गुजर रहे थे, उसी समय राजा श्रेणिक उधर से निकले और उन्हे वन्दना करके भगवान् महावीर के दर्शन के लिए चले गये। भगवान् महावीर से उन्होने प्रश्न किया—प्रभो! प्रसन्नचद्र महाराज अभी काल करे तो कहा जाए ?

भगवान्—पहले नरक मे।

श्रेणिक—और अब काल करे तो ?

भगवान्—दूसरे नरक मे।

श्रेणिक के आश्चर्य की सीमा न थी। उसने फिर पूछा–प्रभो ! और अब काल करें तो कहा जाये ?

भगवान्—तीसरे नरक मे।

श्रेणिक—अब ?

भगवान्—चौथे मे।

इस प्रकार श्रेणिक का कुतूहल वढता गया और वह प्रश्न भी करता रहा। भगवान् ने पाचवे, छठे और अन्त में सातवे नरक मे उत्पन्न होने की बात कही। यहा तक राजर्षि की भावना गिरती जा ही रही थी। मगर जब उनकी भावना मे चढाव आरम्भ हुआ तो भगवान् ने उन्हे प्रथम, द्वितीय, तृतीय, यावत् छब्बीसवें देवलोक तक का अधिकारी वतलाया।

राजा श्रेणिक इतनी शीघ्रता के साथ मनोभावो मे उतार-चढाव की वाते सुन कर अत्यन्त चकित हो गया और सोचने लगा—वडी विषय गति है इस मन की ! इसने क्षण भर मे सातवे नरक में पहुचा दिया और क्षण भर मे सर्वार्थसिद्ध विमान मे आसीन कर दिया। कैसा अद्भुत नाटक है ! गजब का तमाशा है !

श्रेणिक इस सोच-विचार में डूबा हुआ ही था कि उसी समय उसे आकाश मे गुजरते हुए विमान दिखाई दिये। उसने भगवान् से प्रश्न किया—'भते ! यह विमान कहा जा रहे है ?

भगवान्—मगधराज ! जिन महामुनि के विषय मे तूने प्रश्न किया था, उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया है। उनकी उपासना करने तथा केवल ज्ञान का महोत्सव मनाने के लिए देवगण अपने-अपने विमानो से जा रहे है।

श्रेणिक—भते ! आपका कथन सत्य है। उसमे सशय के लिए लेश मात्र भी अवकाश नही है। जिनेन्द्र का वचन त्रिकाल मे अन्यथा नही हो सकता। किन्तु यह कथन केवल श्रद्धा से ही माना जा सकता है। वुद्धि इसे ग्रहण नही कर पाती।

भगवान्—ठीक कहते हो। यह वुद्धि की अक्षमता और अपूर्णता का ही परिणाम है राजन् ! प्रसन्नचन्द्र साधु तो वन गये किन्तु मनोवेग के कारण उनकी भावना वदल गई। वे युद्ध मे निरत हो गये और दुश्मनो का सफाया करने लगे। उनका रौद्र-ध्यान वढता-वढता चरम सीमा पर जा पहुचा। मगर जव हाथ मस्तक पर घूमा और राजमुकुट के वदले घुटी खोपडी हाथ मे आई तो उन्हे अपनी साधुता की स्मृति हुई। वस, परिणामो का स्रोत दूसरी दिशा मे तीव्रतर वेग के साथ वहने लगा और आत्मा मे निर्मलता वढती गई। आघात का प्रत्याघात हुआ, अर्थात् जितनी तेजी से परिणामधारा नीचे गिरी थी, उससे भी अधिक तेजी के साथ वह ऊची चढी। फल यह हुआ कि उन्हे केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति हो गई। इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

श्रेणिक ने कहा—कृतार्थ हुआ देव, इस अनुग्रह के लिए मन की चपलता के विषय मे जानता तो था, परन्तु यह नही समझ पाया था कि उसकी गति इतनी अधिक चचल है ! वह क्षण मे सातवें नरक का और क्षण मे मोक्ष का द्वार खोल देता है।

भगवान्—राजन् ! मन की सृष्टि ऐसी ही है। मन आत्मा के उत्थान मे भी सहायक हो सकता है और पलक में भी।

श्रेणिक—प्रभो ! सत्य है, असदिग्ध है।

सज्जनो ! माताओ और वहिनो ! तुम्हे मनोवल प्राप्त है, तुम्हे सोचने-विचारने और हित-अनहित का विवेक करने की शक्ति

मिली है । यह शक्ति मुफ्त मे नही मिली है । इसके लिए आपको उपार्जित पुण्य की वहुत पू जी व्यय करनी पडी है । अतएव मन मूल्यवान् वस्तु है और वडी उपयोगी है । इस शक्ति से अपना कल्याण करो । कल्याण तभी होगा जब दूसरो का भला सोचोगे, इससे दुष्ट चिन्तन न करोगे । प्रभु के साथ इसे तन्मय कर दोगे । इससे कभी अशुभ विचार न करोगे । कभी दुर्विषयो की ओर न दौडने दोगे । यद्यपि मन को कावू में रखना सरल नही, वहुत कठिन है, परन्तु असम्भव नही है । अभ्यास और साधना से मन पर नियत्रण किया जा सकता है ।

तो इस कार सरभ, समारभ और आरभ—यह तीन दर्जे मन के होते है । इसी प्रकार वचन के और काय के भी तीन-तीन दर्जे समझ लेने चाहिए । उदाहरणार्थ किसी को मारने के लिए वोलने या मत्र पढने की तैयारी की, मत्र पढना शुरू कर दिया और उससे हानि पहुचा दी तो यह वचन से सरभ, सभारभ और आरभ हो गया । इसी प्रकार किसी पर शस्त्र उठाने का उपक्रम किया, शस्त्र उठा लिया और प्रहार कर दिया तो यह काय से सरभ, समारभ और आरभ हुआ ।

आरभ की यह नौ कोटियाँ है । ज्ञानी पुरुषो ने अथाह ज्ञान के समुद्र को शीशी में भर दिया है । वे कहते है—दुनिया के लोगो , तुम्हे इधर-उधर कही दौडने की आवश्यकता नही है, दु ख का स्रोत खोजने के लिए । समस्त दु खो का उद्‌गम तो तुम्हारे भीतर ही है । तुम्हार आरभ से ही सब दु ख उत्पन्न होते है । भगवान् ने खोज दिया है —

आरभज दुक्खमिण ति नच्चा ।

हिंसा करना, जीवो का वध करना, त्रस और स्थावर जीवो के प्राण लूटना, फिर चाहे वह धर्म के लिए या दूसरे काम के लिए हो, चाहे नाम के लिए, चाहे दाम के लिए, चाहे स्वर्गधाम के लिए हो, सब आरभ है। जो धर्म के नाम पर त्रस-स्थावर जीवो के प्राण लूट कर भी उसे पुण्य बतलाते है और धर्म बतला रहे है और उसे धर्म का साधन समझ रहे है, उन्हे भगवान् के कहे हुए सूत्र से निश्चय कर लेना चाहिए। मै उनसे कहता हूँ कि आरभ से आत्मा को सुख प्राप्त नही होगा। आरभ जीव को दुःख देने वाला है। फिर पुरुष किसी भी काम के लिए हिंसा क्यो न करे, हिंसा तो हिंसा ही है। कोयले को हजार वार स्नान कराओ, कोयला कोयला ही रहेगा। अर्थात् अगर कोयला धोने से शुक्ल बन सकता है तो हिंसा भी मोक्ष देने वाली हो सकती है। किन्तु न ऐसा कभी हुआ, न होगा।

सज्जनो ! 'आरभज दुक्ख' यह आचारागसूत्र का पाठ है। इसे स्थानकवासी, मूर्तिपूजक और तेरहपथी भी मानते है। दिगम्बरो को भी इस सूत्र को मानने मे कोई आपत्ति नही हो सकती।

तात्पर्य यह है कि आरभ के स्वरूप को समझ कर उसे घटाने का और अन्तत त्याग करने का प्रयत्न करना चाहिए। आरभ में न कभी धर्म हुआ है और न तीन काल मे कभी होगा ही। जो आरभ करते है, माया करते है और प्रमाद करते है, वे पुन पुन गर्भ मे आयेगे। ऐसा शास्त्रो मे स्पष्ट कथन कर दिया गया है।

सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा विचार करता हुआ आरभ में धर्म नही मानता, किन्तु मिथ्यादृष्टि शब्द में, रूप में, रस मे, गध में और स्पर्श में आसक्त हो जाता है। इन्द्रियो का स्वभाव है

कि जहाँ चमक-दमक एव झिलमिलाहट करती रोशनी देखी, जहा केसर-कस्तूरी, इत्र, तेलफुलेल आदी की गध आई, जहा खाने-पीने एव नाचने-गाने आदि की सामग्री दिखाई दी, वही वे जोक की तरह चिपक जाती है और हटाये नही हटती है । परन्तु अपनी इन्द्रियो को और मन को वश मे करके मिथ्यात्व से समकित की ओर आना चाहिए । आरभ को घटाते रहने से ही एक दिन वह आता है कि जोव मोक्ष के सन्निकट भी पहुच जाता है ।

भगवान् ने जो परम सूत्र फरमाया है, उसपर अमल करने से ही आत्मा का कल्याण होगा । जो धर्म के नाम पर हिंसा करेंगे, वे दोहरे पाप के भागी होगें । एक तो आरभ के और दूसरे मिथ्यात्व के पाप से उन्हे लिप्त होना पडेगा ।

सज्जनो ! समय चला जाता है, बात रह जाती है । यह सुनहरा जीवन वार-बार नही मिलता । अतएव अरिहन्तो के गुणगान करो और उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलो । बन सके तो आठो पहर, अन्यथा सुबह-शाम तो अवश्य गुणगान करो । उससे क्या लाभ होगा ?

सुबह शाम जिसको तेरा ध्यान होगा ।
बड़ा भाग्यशाली वो इन्सान होगा ।।

भव्य जीवो ! शास्त्र की खुली घोपणा है कि सुख चाहो तो आरभ को घटाओ । जो ऐसा करेगा वह ससार-समुद्र से पार हो जायेगा ।

२३-८-५६ ब्यावर

: ६ :

दुःख और आरम्भ

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता, सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता.,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा पूज्या उपाध्यायका. ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिन, कुर्वन्तु नो मङगलम् ।।

उपस्थित महानुभावो । यह सर्वविदित है कि इस असार ससार मे अनन्त अनन्त काल से अज्ञानी प्राणी अनेक प्रकार की, परम्परा के रूप मे चली आने वाली शारीरिक और मानसिक यातनाएँ भोगता चला आ रहा है । इस क्रम का अन्त ही नही है । आज भी प्राणी यह यातताएँ भोग रहा है और भविष्य में भी भोगता चला जायेगा । इस विपय मे मैने कल वताया था कि ज्ञानी पुरुपो ने इस यातना के क्रम के कारण और उद्गम पर विचार करके यह निर्णय दिया है कि इन सब यातनाओ और व्याधियो का एकमात्र मूल स्रोत आरभ है । जहाँ आरम्भ है वहा परिग्रह है। अर्थात् जहा-जहा किसी भी प्रकार की हिसात्मक प्रवृत्तिया है, दूसरे शब्दो में जहा-जहा आरम्भी हिसा है, वही-वही परिग्रह है। परिग्रह, हिसा और आरम्भ—एक-दूसरे के साथ जुडे हुए है, अ , कहा जा सकता है कि अभिन्न है । जहा परिग्रह

होता है, वहा हिंसा भी होती है और आरम्भ भी होता है। परिग्रह की मात्रा जितनी अधिक होती है, उतना ही अधिक आरम्भ होता है। जितना मोटा आरम्भ हो, परिग्रह का भी उतनी ही मात्रा मे अधिक होना अवश्यम्भावी है। ये जितने मोटे-मोटे कारोबार है, वे आरम्भ के अभाव में हो ही नही सकते। खेद की बात है कि वर्त्त-मान में मनुष्य की प्रवृत्ति आरम्भ को घटाने की ओर कम और उसे बढाने की ओर अधिक है। जबकि वास्तविकता यह है कि आरम्भ जितना बढेगा, जन्म-मरण का यह कष्टदायी चक्र भी उतना ही अधिक बढता जायेगा। क्योकि कारण और कार्य क्या कभी पृथक् हो सके है। कारण है तो कार्य का होना अवश्यम्भावी है। यह न कभी हुआ है, न कभी हो सकता है कि कारण तो हो किन्तु कार्य न हो। कारण जितना अधिक होगा उतना ही अधिक कार्य भी होगा। उदाहरण के लिए सन को लीजिये। जितना अधिक सन होगा, रस्सी उतनी ही लम्बी बनेगी। और जितनी लम्बी रस्सी बनेगी, बधन भी उसी अनुपात में अधिक होगा, जीव उतना ही अधिक बधन मे बधेगा। अतएव ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि हे जीवात्माओ! यदि तुम्हे शाति इष्ट है, यदि तुम नाना प्रकार की शारीरिक और मानसिक दुःख-यातनाओ एव व्याधियो रूपी बधन से मुक्ति चाहते हो, तो आरम्भ को कम करो। यह सत्य है कि सासारिक कार्यों मे आरम्भ के विना काम चलता नही किन्तु कम से कम धार्मिक कार्यों मे तो आरम्भ को स्थान न दो। क्योकि कहा है —

> अन्य स्थाने कृत पाप, धर्मस्थाने विनश्यति।
> धर्मस्थाने कृत पापं, वज्रलेपो भविष्यति ॥

सासारिक कार्यों मे, जैसे मकान बनाने, दूकान बनाने, लेन-देन करने आदि में गृहस्थ को मजबूर होकर आरम्भ करने पडते है, क्योकि वे अनिवार्य है, पर जप-तप एव अन्य धार्मिक कार्यों द्वारा, धार्मिक स्थान मे उनकी निवृत्ति करके उन पापो को नष्ट किया जा सकता है। किन्तु यदि धर्म-स्थानो पर भी आरम्भ का, अर्थात् पाप का क्रम चलता रहे और जितने पाप घर पर न किए जायें, उससे अधिक धर्म-स्थानो पर किये जाये तो फिर अन्यत्र कही भी शान्ति का मिलना असम्भव है। वे पाप कहा धोये जा सकते है? सज्जनो। कीचड से मलिन हुए वस्त्र की शुद्धि स्वच्छ जलाशय में सभव है। किन्तु यदि वह जलाशय ही कीचड़ मे सना हुआ हो तो फिर उस वस्त्र की शुद्धि कहा होगी? इसलिए यह स्मरण रखिये कि धर्मस्थानो पर तो धर्मक्रियाएँ ही होनी चाहिएँ। जो स्थान जिस निमित्त हो, वहाँ वही कार्य होना चाहिए। रसोईघर मे रसोई बनाने-खिलाने का कार्य, दूकान मे दूकानदारी का कार्य ही किया जाना शोभा देता है। नाम दूसरा रखना और कार्य दूसरा करना उस नाम की अवहेलना करना तो है ही, साथ ही यह दुनिया को धोखे मे भी डालना है। वाचनालय वही है जहा वाचन हो, पुस्तकालय वही है जहा नाना विषयो की पुस्तकें हो। किन्तु उन्ही स्थानो पर यदि कूडा-कर्कट अथवा लकडी-पत्थर रखें हो तो वह वाचनालय या पुस्तकालय न कहला कर कबाडी-खाना ही कहलायेगा। उसी प्रकार आप भी अपनी दूकान के व्यवसाय के अनुरूप ही वहाँ साइनबोर्ड लगाते है। किन्तु यदि नाम कुछ और है और कार्य वहा कुछ और ही होता है, तो मै कहूगा कि वह यथा नाम तथा गुण वाली दूकान नही है, अथवा वह तो दुनिया को ठगने का साधन

मात्र है। इसी प्रकार धार्मिक स्थान वही है जहाँ सामायिक, पौषध, छ काया और तपस्या-स्वाध्याय वगैरह होता है। हम कहेंगे कि वहा यथार्थ कार्य-सिद्धि हो रही है। किन्तु जहा धर्म कार्य के स्थान पर छ काया का कूटा किया जाता हो, वह धर्म-स्थान नही है। रक्षणालय उसी को कहा जा सकता है जहा जीवो का सरक्षण किया जाता हो, जीवो पर दया की जाती हो और जीवो को अभयदान दिया जाता हो। किन्तु उसके विपरीत जहा नाम तो धर्मस्थान दिया गया हो और कार्य जीवो के वध का किया जाता हो, जहाँ छ काया के जीवो की हिंसा की जाती हो, वह नाम सर्वथा निरर्थक है, प्रवचना है और पाप है। इसी लिए मै कहता हू कि नाम सार्थक होना चाहिए, निरर्थक नही। निरर्थक नाम निमू ल्य है।

सज्जनो ज्ञानी पुरुषो ने दुनिया मे तीन प्रकार के नाम बताये है—(१) यथार्थ नाम, (२) अयथार्थ नाम और (३) अर्थशून्य नाम। नाम का होना ससार में इसलिए आवश्यक है कि उसके अभाव मे सासारिक कार्य नही चल सकते। किसी वस्तु अथवा व्यक्ति को पुकारने के लिए उसकी कोई न कोई नाम सज्ञा होना आवश्यक है। धन के अभाव में धनी, ज्ञान के अभाव मे ज्ञानी और ध्यान के अभाव मे ध्यानी नही हो सकता। क्योकि यदि दुनिया मे धन, ज्ञान और ध्यान नाम की कोई वस्तु नही होती तो वे धनी, ज्ञानी और ध्यानी कैसे कहला सकते थे? नाम से ही नामी होता है। आपका अस्तित्व नाम से ही है। नाम न हो तो नामी को कैसे जाना जा सकता है ? पहिले वस्तु का होना आवश्यक है। पदार्थ के विना सज्ञा कायम नही की जा सकती। नामी होगा तो नाम भी होगा, किन्तु नाम के विना नामी भी नही है। ससार में

ऐसी कोई भी जड या चेतन वस्तु नही है, जिसका नाम न हो। सज्जनो ! यदि वस्तु का अस्तित्व है तो उसका कोई न कोई नाम होना भी अवश्यम्भावी है। नाम होने से ही हम उसको बुला सकते है, मगवा सकते है या प्राप्त कर सकते है।

कहने का अभिप्राय यह हुआ कि नाम और नामी दोनो साथ-साथ ही रहते है। उनका सह-अस्तित्व है। अर्थात् नाम है तो नामी भी है और नामी है तो नाम भी है। मूलतया वे नाम भी दो प्रकार के है। उसके दो रूप है। एक नाम तो कर्मोदय से पडता है और दूसरी नाम-सज्ञा गुणो के द्वारा पडती है। जो नाम-सज्ञा गुणो के कारण पडती है, वही यथार्थ नाम है। क्योकि जो नाम-सज्ञा कर्मो के द्वारा पडती है, वह तो तभी तक रहती है जबतक कि कर्म रहते है। कर्म नष्ट हो जाने पर वह नाम-सज्ञा भी स्वभावत नष्ट हो जाती है।

इस स्थान पर यह प्रश्न हो सकता है कि कर्मोदय से होने वाली नाम-सज्ञाएँ कौन-कौन-सी है ? सज्जनो। नामकर्म की १९३ प्रकृतिया है। नामकर्म के उदय से होने वाली नामसज्ञा को नामोदय कर्मसज्ञा समझना चाहिए। नामोदय कर्मसज्ञा में एकेन्द्रिय अर्थात् मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पतिकाम तथा द्वीन्द्रिय, त्रन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय, आदि आदि में सभी नाम-संज्ञाए गर्भित है। जब एकेन्द्रिय नाम हमारे सामने आता है तो तुरन्त ही मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति के जीवो का उद्बोधन मिल जाता है और हमारी दृष्टि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि जीवो की तरफ नही जाती। उसी प्रकार जब हम द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय आदि जीव नाम-सज्ञा से सम्बन्धित होते है

तो एकेन्द्रिय जीवो की ओर से हमारी दृष्टि ओझल हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो-जो जड और चेतन नाम-सज्ञाए हमारे सामने आती है, उन-उन वस्तुओ का नक्शा हमारे सामने खिच जाता है। एकेन्द्रियादि नामोदय कर्म सज्ञा से उस उस जाति में रहे हुए सभी जीवो का सामूहिक रूप मे हमे बोध हो जाता है। सज्जनो ! एकेन्द्रिय नाम व्यर्थ हो नही है। ये नाम हमारे और आपके रखे हुए नही है। ये नाम सस्करण किसी कल्पना के आधार पर भी नही है। ये नाम कर्मों के उदय से माने गये है। जैसे, जिन्होने द्वीन्द्रिय नाम कर्म बाधा है, दो इन्द्रियें प्राप्त करने योग्य कर्म बाधे है, उतनी कीमत अदा की है, उन्हे दो इन्द्रिया मिल गई है। वे नाम कर्म के उदय से ही मिली है। वे उन्हे किसी माता-पिता, देवी-देवता या परमात्मा के द्वारा प्राप्त नही हुई है। उन्होने पूर्वजन्म में द्विन्द्रिय नाम कर्म उपार्जन किया था, उसके फलस्वरूप उनको दो इन्द्रिया प्राप्त हुई। जैसा कर्म होता है, उसी के अनुरूप ही फल की प्राप्ति होती है। बैंक अथवा खज़ाने से रुपया उसी को प्राप्त होता है, जिसके पास उसके लिए चैक होता है। किन्तु चैक तो हो नही और रुपया लेने बैंक मे जाया जाये तो उसकी जो दुर्दशा होगी, वह आप जानते ही है। ठीक यही बात जीव के कर्म-बधन के विषय मे है। जिस जोव ने भाव इन्द्रिया बाध ली है, उसने द्वीन्द्रियपने का चैक ले लिया है और इस चैक का रुपया उसे उस ख़ज़ाने से प्राप्त हो जायेगा जहाकि उसे जाना है, उत्पन्न होना है। उसे वही दो द्रव्येन्द्रिया प्राप्त हो जायेगी। आशय यह है कि जीव को इन्द्रियो रूपी धन वही मिलेगा जहा जिस जाति में उसको जाना है। किन्तु मिलेगा उसी को जिसने चैक प्राप्त कर लिया है। सज्जनो ! इस ससारी-

दुनियादारी के चैक मे तो एक वार फर्क भी पड सकता है, उसका रुपया प्राप्त होने मे आपत्ति भी आ सकती है, किन्तु यह निश्चय जानो कि जिसने यहा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पचेन्द्रिय नाम कर्म का चैक ले लिया है, भावेन्द्रिया वाध ली है, उसे उसके अनुरूप द्रव्येन्द्रिया अवश्य ही मिलेगी। न उसमे किसी शका के लिए स्थान है, न किसी प्रकार का उसमे परिवर्तन ही है। यह एक अटल सिद्धान्त है।

सज्जनो ! मै आपको नाम के विषय में कहने जा रहा था। जिन जीवो ने भावेन्द्रियपने का वध कर लिया है तो समझो कि वह चैक उन्हे मिल चुका है। इसी विपय मे श्रीमद्भगवती सूत्र मे श्रीगौतम ने भगवान् से प्रश्न किया है कि—'हे भगवन् ! जीव शरीर से इन्द्रिय सहित निकलता है या अनिन्द्रिय ?' उत्तर मे भगवान् ने कहा है कि—'जीव किसी अपेक्षा मे सेन्द्रिय निकलता है और किसी अपेक्षा से अनिन्द्रिय भी निकलता है।' गौतम ने फिर प्रश्न किया कि भगवन् ! ये दोनो वाते एक साथ कैसे हो सकती है ? सहित कैसे और रहित कैसे ? हा और ना तो एक दूसरे के विरोधी है।' किन्तु सज्जनो ! जिनको ज्ञान नही है उनको ही विरोध दिखता है। यह याद रखना कि भगवान् का मार्ग अनेकान्तवाद का है, एकातवाद का नही। वह अनेक दृष्टियो को लेकर चलता है। एकान्तवादी कहानियो की दृष्टि मे जहा केवल ना या हा ही है, वही पर ज्ञानियो की दृष्टि मे ना भी है और हा भी है। जिनकी सीमित दृष्टि मे केवल हा ही है, उनकी दृष्टि मे ना के लिए स्थान नही है। किन्तु ज्ञानियो की दृष्टि में जहा हां है वहा ना भी है। तुम लोगो को यह वात वडी अटपटी-सा प्रतीत होती होगी कि यदि हा है तो फिर उसी के साथ नही को

क्या काम और यदि नही है तो फिर वहां हा कैसे हो सकता है ? ज्ञानियो का कथन है कि ससार में जितने पदार्थ है, वे अनन्त-अनन्त धर्म को लिये हुए है। सज्जनो ! यहा धर्म का मतलब सामायिक, पौषधादि क्रियाए नही है, किन्तु "वत्थु सहाओ धम्मो"—अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। हमारा ज्ञान जितना अधिक बढता जाता है, उतने ही वस्तु के अधिक धर्मो को हम जानने लगते है। ससार मे सूक्ष्म और स्थूल अनेक प्रकार के पदार्थ है। जिनकी दृष्टि तीव्र और स्वस्थ है, वे मोटे-मोटे पदार्थों के अतिरिक्त सूक्ष्म पदार्थों को भी देख सकते है। किन्तु जिनकी देखने की शक्ति क्षीण है, वे तो केवल मोटी-मोटी वस्तुओ को ही देख पाते है, सूक्ष्म वस्तुओ तक उनकी दृष्टि की पहुच नही होती।

उपरोक्त दृष्टान्त से क्या यह निर्णय निकाला जाये कि चूकि मोटी दृष्टि वालो को सूक्ष्म वस्तुए दिखाई नही देती, इसलिए वे सूक्ष्म वस्तुए अपना अस्तित्व ही नही रखती ? ऐसा नही है। सूक्ष्म वस्तुए तो है, किन्तु मोटी दृष्टि से वे दिखाई नही देती। जिनकी दृष्टि तीव्र है, सतेज है, उन्हे मोटी वस्तुओ के साथ ही साथ सूक्ष्म वस्तुए भी दिखाई देती है। अत यह निर्णय निकलता है कि दृष्टि के मोटी हो जाने से सूक्ष्म वस्तुओ का अभाव नही हो गया। अभाव तो सूक्ष्म और तीव्र दृष्टि का ही हुआ।

अत यह कहा जा सकता है कि एक ही वस्तु में अनन्त-अनन्त स्वभाव स्वरूप धर्म स्थित है, किन्तु देखने वालो में से जिसकी दृष्टि जितनी तेज है, सूक्ष्म है, उसे उतने ही अधिक धर्म उस वस्तु मे दिखाई देते है। मै कह रहा था कि भगवान् का

कथन है कि—जीव इन्द्रिय सहित भी जाता है और इन्द्रिय रहित भी। भद्रपुरुषो ! यहा हमे अनेकान्त द्वारा विचार करना होगा। इन्द्रिये भी दो प्रकार की है, द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। जिसने भावेन्द्रिय का उपार्जन नही किया उसे द्रव्येन्द्रिय भी प्राप्त नही हो सकती। अर्थात् एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक का जो बध पडता है, अथवा जैसा कि मैने पहले कहा—चैक मिलता है, उसे भावेन्द्रिय समझना चाहिए। भावेन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय प्राप्त करने का साधन है, मूल है। दूसरे शब्दो मे इन दोनो में बीज और वृक्ष का सम्बन्ध है। बीज के द्वारा ही वृक्ष बनता है। फिर भी बीज पृथक् है और वृक्ष पृथक् है और यह पृथक्त्व होते हुए भी दोनो में अन्योन्याश्रय सबध है। अर्थात् बीज यदि नही हो तो वृक्ष न हो और यदि वृक्ष न हो तो बीज भी न हो। यह होते हुए भी बीज और वृक्ष को पृथक्-पृथक् ही माना जाता है। इसी प्रकार का सबध भावेन्द्रियो और द्रव्येन्द्रियो का है। भावेन्द्रिय को हम बीज कह सकते है और द्रव्येन्द्रिय को वृक्ष। यदि भावेन्द्रिय रूप बीज न हो तो द्रव्येन्द्रिय रूप वृक्ष भी नही हो सकता और यदि द्रव्येन्द्रिय रूप वृक्ष न हो तो भावेन्द्रिय रूप बीज की प्राप्ति भी असभव माननी चाहिए। अत यह स्मरण रखना चाहिए कि द्रव्येन्द्रिय मे ही भावेन्द्रिय की प्राप्ति सभव है, क्योकि यदि वृक्ष का ही अभाव है तो उससे उत्पन्न होने वाले बीज का भी अभाव स्वय ही हो गया।

सज्जनो ! अभिप्राय यह है कि भावेन्द्रिय से ही द्रव्येन्द्रिय मिलती है। किन्तु भावेन्द्रिय का बध उसी के द्वारा होता है जिसे द्रव्येन्द्रिय प्राप्त करनी होती है। आप इतना तो जानते ही होगे कि बध वही होता है जहाँ कषाय और भोग होता है। कषाय और

भोग के अभाव में भावेन्द्रिय का वध भी नही होता, उसका भी अभाव हो जाता है। इसीलिए कहा है—

"नास्ति मूल कुत शाखा ?"

अर्थात्—मूल के अभाव मे शाखा कहा से आयेगी ?

उपरोक्त कथन सर्वथा सत्य और सुन्दर है। यदि मूल ही न हो तो शाखा कहा से होगी। मुक्ति के इच्छक पुरुषा को इस गभीर कथन पर विचार करना चाहिए।

प्रसग यह चल रहा था कि जीव जब परलोक में जाता है, तो उसके साथ भावेन्द्रिया ही रहती है। वहा जाने पर उसे अपने चैक से रुपये प्राप्त करने है। अर्थात् भावेन्द्रियो के वध के अनुरूप ही उसे उस खजाने से इन्द्रिय, शरीर और प्राण आदि प्राप्त होगे। जीव यहा से अपने साथ केवल भावेन्द्रियो को लेकर ही जाता है, द्रव्येन्द्रियो का त्याग कर जाता है। वह यहा से औदारिक, वैक्रिय और आहारिक शरीर से रहित होकर जाता है। सज्जनो ! ससार में कोई भी प्राणी इन तीन शरीरो को अपने साथ लेकर नही जाता है। देवता और नारक, मनुष्य और तिर्यञ्च, जिन-जिन प्राणियो मे भी उपरोक्त वैक्रियादि शरीर पाये जाते है, वे उन्हे त्याग कर ही परलोक को जाते है।

इस स्थान पर यह प्रश्न होता है कि फिर जीव अपने साथ कौन-सा शरीर ले जाता है ? भद्पुरुषो ! उत्तर यह है कि जीव अपने साथ तैजस और कार्मण शरीर ही ले जाता है। जो भी जीव इस लोक से परलोक को जाता है, वह अपने साथ वहा उत्पन्न होने की गति का चैक ले जाता है और निश्चित स्थान से,

खजाने से उस चैक का रुपया प्राप्त करता है। कोई भी जीव छः वोल वाधे विना अपने वर्तमान शरीर को खाली नही करता। एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के सभी जीवो को छ वोल की आवश्यकता होती है। अगले जन्म से भी जीव अपने वर्तमान जीवन में छ वोलो का वध वाधकर लाया था। उन्हे यहा भुगत कर फिर भविष्य जन्म के लिए वह छ वोलो का वध वाधता है। इसी वध के परिणामस्वरूप उसे अगले जन्म के चैक के लिए चैक प्राप्त होता है। छ वोल ये है—गति, जाति, स्थिति, अवगाहना, अनुभाग और प्रदेश।

सज्जनो! सनातन धर्म मे मृत्यु के उपरान्त गरुड पुराण सुनाया जाता है। उसमे जीव की गति और कर्म के विषय में वताया गया है कि ऐसा कर्म करने से ऐसी गति मे और ऐसा कर्म करने से ऐसी गति मे जीव जाता है। उसी गरुड पुराण में एक स्थान पर यह लिखा है कि मरने के वाद जीव को कही घूमने की आवश्यकता नही रहती। त्रणजलोक की तरह, जोकि एक सुडियाग्लट नाम वाला द्वीन्द्रिय प्राणी है, जिसके केवल शरीर और मु ह ही होते है और वह लट अपने शरीर का पिछला हिस्सा तभी उठाती है जबकि पहले अगले हिस्से को स्थान प्राप्त हो जाये, इसी तरह जीव भी दूसरे जन्म की प्राप्ति के निश्चित होने पर ही पहले जन्म मे छूटता है। इस उदाहरण से उन स्वार्थी ब्राह्मण पडितो की वात सर्वथा खडित हो जाती है जो यह कह-कहकर भोले और अज्ञानी जीवो को भ्रम में डालते है कि अमुक-अमुक समय तक तुम्हारे पूर्वजो को चोला प्राप्त नही होगा।

सज्जनो! यह कितनी पापमय और त्याज्य वात है? पितृतर्पण, श्राद्ध आदि करा कर अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए

भोले जीवो को असत्य बातें कहना यदि पाप नही है तो फिर और क्या हो सकता है ? इस प्रकार का कथन सर्वथा असत्य है। किन्तु अज्ञानी जीव इस असत्य कथन के भीतर के रहस्य को जान नही पाते और जैसी भी उल्टी-सीधी बातें पडित कहते है, वे करते चले जाते है। दान, दक्षिणा, भोजन, वस्त्रादि से उन पडितो का घर भरते है और स्वय अधकार में डूबे रहते है।

किन्तु आप लोग यह अच्छी तरह याद रखें कि इन उपरोक्त मिथ्या कल्पनाओ का आत्मा के साथ कोई सबध नही है। आप स्वय ही एक सीधा सा उदाहरण देखिये और बताइये कि क्या यदि ईंट, चूना, पत्थर, लकडी आदि तो एक व्यक्ति को दी जाये और इच्छा यह की जाये कि इमारत किसी अन्य व्यक्ति की बन जाये तो क्या यह सभव है ? मै मानता हू कि यह कभी सभव नही है, आप यदि इसके विपरीत विचार रखते हो तो वह आप जाने। किन्तु उन्ही पडितो के गरुड पुराण में यह लिखा है कि जीव का तब तक शरीरान्त या प्राणान्त नही होता जबतक कि अगले गति-रूप शरीर को जमाने के लिए उसका स्थान निश्चित नही हो जाता—ठीक उस त्रणजलोक लट के समान, जिसका वर्णन मैने अभी-अभी ऊपर किया है। ऐसी स्थिति मे जीवात्मा की एक-एक वर्ष तक विना कोई शरीर धारण किये इधर-उधर भटकते रहने की बात सर्वथा निर्मूल और असत्य सिद्ध हो जाती है। यह कल्पना ही भ्रान्तिमूलक और गलत है। सत्य तो यह कि जिस पल जीव यहा प्राण-त्याग करता है, उसी पल वह दूसरे स्थान पर नया शरीर धारण कर लेता है। किन्तु यहा तो लोभी व्यक्तियो ने जीव को कुछ कम भी नही, पूरे एक साल तक भटका दिया है। इस असत्य कल्पना और प्रवचना की दुहाई है।

आप लोग भी जब चलते है तब पिछला कदम तभी उठाते है जबकि पहला कदम पहले स्थिर कर लेते है। यदि इसके विपरीत आपका आचरण हो जाये तो सभवत बतीसी का ही ठिकाना न रहे।

गीता उन्ही पडितो का धर्म-ग्रन्थ है। उसी में यह लिखा है कि दूसरा पैर पहला पैर जम जाने पर ही उठाया जाता है। इसी तरह वर्तमान जन्म तब ही छोडा जाता है, जब अगला जन्म-स्थान निश्चित हो जाता है। जब उन्ही के धर्म-ग्रन्थ में यह बात स्पष्टता से लिखी हुई है तो मेरी समझ में यह नही आता कि सदेह के लिए स्थान कहा रह जाता है। प्रत्येक धर्म में जो महा-पुरुष हुए है, वे सबके शुभचिन्तक और हितैषी हुए है। उन्होंने जो कुछ कहा है वह भावी पीढी के रक्षण की दृष्टि से ही कहा है। अतएव यह मानना चाहिए कि जैन सिद्धान्त या गरुड पुराण मे और गति के सिद्धान्त से जीव की जन्म-सबधी इस शका का समाधान हो गया।

सज्जनो! जैन सिद्धान्त यह कहता है कि जबतक यह जीव आगे जाने वाली छ बातो को नही बाध लेता है, तब तक अपने पहले वाले शरीर का त्याग नही करता है। जीव पहले अपनी गति को बाधता है, अर्थात् इस जन्म के बाद उसे जिस स्थान पर जन्म लेना है—नरक, तिर्यंच, मनुष्य या देव गति, उस स्थान पर जन्म लेने के उपयुक्त कर्म वह पहले ही बाँध लेता है। इस भविष्य की आयु का बध जीव द्वारा अपनी पहिली आयु के तीसरे भाग मे कर लिया जाता है। इस प्रकार करते-करते जब प्राप्त आयु में अन्तर्मुहूर्त समय रह जाये उस समय तो वह अपने अगले जन्म की आयु

बाध ही लेता है। जैसे आपको यदि कही बाहर जाना है, तो आप अपनी यात्रा के लिए टिकट चार दिन पहले भी ले सकते है और यदि ऐसा न हो सके तो गाडी के छूटते-छूटते भी आप टिकट ले सकते है। किन्तु टिकिट तो लेना ही होता है। उसके बिना विदाउट टिकट (without ticket) यदि यात्रा की जाये तो टी० टी० आकर आपसे पिछले जकशन से लेकर डबल चार्ज करेगा।

खेद की बात है कि आजकल बिना टिकट सफर करने वाले यह कहते है कि अब तो भारत स्वतन्त्र है, हमें टिकट लेने की क्या आवश्यकता है ? किन्तु ओ बिना टिकट यात्रा करने वालो ! तुम लोग हो तो देश की आत्मा हो, प्राण हो। देश के उत्थान और पतन की सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी तुम्ही लोगो पर है। भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद तो तुम्हारी ज़िम्मेदारी और भी अधिक बढ गई है। विदेशियो की दृष्टि में तुम लोग प्रामाणिक नागरिक हो। अपने इस सम्मानपूर्ण स्थान की तुम स्वय ही रक्षा करो। उनकी दृष्टि में स्वय को अप्रामाणिक सिद्ध न होने दो ! अपनी प्रामाणिकता का परिचय देते हुए तुम्हे अब तो और भी अधिक ईमानदार होना चाहिए। तुम समझते होगे कि तुम केवल सरकार को ही धोखा दे रहे हो। किन्तु यह नही जानते कि सरकार को धोखा देने के साथ ही साथ तुम अपने आपको भी धोखा दे रहे हो। इस धोखेबाजी से तुम यहा तो दडित होओगे ही, किन्तु यह भी निश्चय जानो कि आगे भी तुम्हे इसका दड अवश्य प्राप्त होगा। किसी भी उपाय द्वारा उससे बचा नही जा सकता।

अत यह तुम्हारा और प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्त्तव्य है कि सरकार को समृद्धिशाली और मजबूत बनाने का प्रयत्न किया

जाये। भारतीय जीवन की उन्नति इसी वात पर निर्भर है। यह राष्ट्र तभी विकसित हो सकता है और फल-फूल सकता है जवकि प्रत्येक भारतीय प्रामाणिकतापूर्वक अपना प्रत्येक कर्त्तव्य पूरा करे और किसी भी प्रकार सरकार को धोखा देने का प्रयत्न न करे। लेकिन देखा जा रहा है कि आप लोगो ने तो अपने राज्य का उल्टा ही अर्थ निकाल लिया है। उदाहरण के लिए एक मौलवी साहव थे। जव वे मुसलमानो को शराव पीते हुए देखते थे तो उनको वहुत वुरा लगता था। वुरा लगने का कारण यह था कि कुरानशरीफ मे शराव पीना, व्याज लेना, सुअर की वलि देना और चोरी किये हुए पशु को वलि देना—ये वाते वुरी वताई गई है। इन कामो के करने से खुद की पूजा नही वल्कि अपमान होता है। अर्थ यह है कि हराम का माल तो खुदा को भी हजम नही हो पाता, फिर उसी खुदा के वन्दे होकर तुम लोग कैसे इन्हे हजम कर जाते हो ! यही सोचकर वे मौलवी साहव लोगो को वहुत समझाते और माथापच्ची करते किन्तु उनकी वात कोई नही मानता था। लोग उनकी कही हुई वात से उल्टा ही काम करते थे। संसार का आज यही हाल है। सच्ची शिक्षा देने वाला व्यक्ति हमें अपना दुश्मन प्रतीत होता है। उर्दू के एक शायर ने लिखा है —

"नसीहत मत करे नासा मेरा दिल घवराय है
जो मुझे नसीहत करे दुश्मन नजर वह आय है।"

शिक्षा देने वाला तो भले को ही शिक्षा देता है और हित की ही वात कहता है, किन्तु जिसके वुरे दिन आते है उसपर किसी भी शिक्षा या आदेश का कोई असर नही होता।

कहा जाता है कि पडितो की पडिताई और ज्ञानियो का ज्ञान भी उपयुक्त पात्र मिलने पर ही काम आता है। सीधी-सी वात

है कि बीज नये-नये अकुर पैदा करता है और उससे बडे-बडे फलदायी वृक्ष बनते है। किन्तु यह भी तभी सभव होता है जबकि बीज को उर्वरा और अच्छी भूमि मिले। उसके विपरीत यदि बीज तो अच्छा हो किन्तु जमीन खराब मिले तो वह बीज ही नष्ट हो जाता है। ठीक इसी प्रकार शिक्षा देने की बात है। शिक्षा अच्छी हो, हित की हो और उससे व्यक्ति के अनन्त कल्याण की सभावना हो, किन्तु अज्ञानी और मूर्ख व्यक्ति उसका उल्टा ही अर्थ निकाल कर अपना हित करने के स्थान पर अहित ही कर लेते है। यही बात हम गृहस्थ और साधुओ पर घटित कर सकते है। साधू गृहस्थ के हित के लिए अनेक सदुपदेश देते है। किन्तु यदि गृहस्थ योग्य न हो और अपना हित न चाहे तो फिर उसका कोई इलाज ही नही।

एक कथा है। एक स्थान पर गुरु और शिष्य ठहरे हुए थे। शिष्य गोचरी के लिए गये और उन्हे एक गृहस्थ के घर ताज़े बने हुए ३२ बडे मिल गये। मौसम शीतकाल का था। बडे एकदम गरमागरम थे। शिष्य के मन में लोभ उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कि जब तक मै ये बडे गुरु महाराज के समीप तक ले जाऊगा तब तक ये ठडे हो जायेगे। मेरे हिस्से के आधे बडे गुरु महाराज मुझे देगे ही। तब क्या बुराई है यदि मै अपने हिस्से के आधे बडे यही खा लू ? यह विचार कर उस सरलपरिणामी शिष्य ने १६ बडे वही खा लिये। बडे अत्यन्त स्वादिष्ट और ज़ायकेदार थे। शिष्य को बहुत मजा आया। उसने फिर सोचा कि बिचारे गुरु महाराज को यह क्या पता कि बडे कुल कितने मिले थे। वे तो यही विचार करेंगे कि बडे १६ है और उसमें से आधे वे मुझे देंगे ही। तो फिर मै उनमे से अपने हिस्से के बड़े यही क्यो न

खा लू ? ऐसा विचार करके ८ वडे और खा लिये। इस प्रकार उसके पास ३२ वडो में से अब ८ वडे शेष बचे। वह कुछ ही दूर और गया होगा कि उसकी भावना में फिर परिवर्तन हुआ। जीभ के स्वाद ने फिर ज़ोर मारा। उसने विचार किया कि गुरु जी तो वडे दयालु हे, अपने शिष्य पर उनका असीम प्रेम है और उसी प्रेम के नाते इन आठ वडो मे से भी आधो पर वे मेरा हक समझेगे और अवश्य ही मुझे मेरा हिस्सा देगे। तब फिर व्यर्थ ही इन्हे ठडा करने से क्या लाभ ? मे इन्हे यही क्यो न खा लू ? यह विचार करके उसने चार बडे और खा लिये।

सज्जनो ! एक बार जो व्यक्ति स्वाद के वश मे हो जाये, क्या वह फिर उससे सहज ही मुक्त हो सकता है ? वह वेचारा शिष्य भी इसका अपवाद न रह सका। वडो का स्वाद और चटपटापन उसके मुह मे बार-बार पानी ला रहा था। उससे रहा नही गया और वह भोला शिष्य दो वडे और खा गया। इन वडो में से अब दो ही शेष बच रहे थे। किन्तु शिष्य की तृप्ति तो अब भी नही हुई। सच ही है, लालसाओ की कभी तृप्ति होती ही नही है, उनका कही भी अन्त नही है। अत उसने फिर सोचा कि कुछ भी हो, गुरु जी इन दो वडो में से एक मुझे अवश्य ही देगे और यह सोच कर वह एक और वडा भी खा ही गया। अब उसके पास केवल एक ही वडा बच रहा था। उसने विचार किया कि यह तो मेरा धर्म नही है कि मे जो कुछ भी आहार गृहस्थ के यहा से लाया हू, वह गुरु जी को दिखाऊ भी नही। यदि नही दिखाऊगा तो मै गुरु का गुनहगार कहलाऊगा। अत वह उस एक वडे को लेकर गुरु के पास पहुचा। गुरु जी को वदना कर जो कुछ आहार

वह लाया था सो उसने उनके सन्मुख रख दिया। गुरु जी ने ज्योही पात्र में केवल एक बडा देखा तो वे आश्चर्यान्वित हो गये। उन्होने शिष्य से पूछा कि अरे! तुझे ऐसा कौन दातार गृहस्थ मिला कि जिसने तुझे केवल एक ही वडा बरहराया? यह प्रश्न किये जाने पर उस स्वच्छ हृदय वाले शिष्य ने, जोकि कपट करना नही जानता था, यद्यपि मूर्ख था, सहज भाव से उत्तर दिया —

गुरु जी। बडे तो मुझे कुल बत्तीस मिले थे। किन्तु इस रसना के वशीभूत होकर मैंने राह मे आधे-आधे करते-करते ३१ बडे खा लिये और अब यह एक ही शेष बचा है, जो मै आपकी सेवा में ले आया हू।

यह सुनकर गुरु जी ने कहा, "अरे दुष्ट। तूने मुझे बताये बिना ही बडे कैसे खा लिये? तब शिष्य ने सहजभाव से उस अवशिष्ट एक बडे को भी उठाकर अपने मुह मे रखते हुए कहा— गुरुजी! ऐसे।

सज्जनो। वह शिष्य कितना निष्कपट था। साथ ही कितना सरल परिणामी था। किन्तु था वह मूर्ख, बेसमझ और नादान ही। किन्तु भद्रपुरुषो। पहले तीर्थंकर के समय के साधू होते भी ऐसे ही है जोकि हृदय के शुद्ध, स्वच्छ और सरल होते हुए भी मूर्ख होते है। जबकि अन्तिम तीर्थंकर के साधू वक्र और जड होते है अर्थात् न उनमे सरलता ही होती है और न विशेष समझ ही होती है। इस प्रकार उनमे दोहरी बुराई होती है। वे कपट सहित बाते भी करते है और मूर्ख भी होते है। प्रथम तीर्थंकर के समय के साधू बात जैसी हो वैसी हो सहज भाव से कह देते है। वे उसमे हेराफेरो, तू बाफेरी और गोलमाल करना नही जानते। इसके विपरीत पाचवे

तीर्थंकर के साधू प्राय हृदय के साफ भी नही होते । बातें भी सीधी तरह नही करते और सरल वात को भी आसानी से समझते नही । किन्तु बीच के बाईस तीर्थंकरो के साधू शुद्ध और सरल हृदय वाले तथा बुद्धिमान् थे ।

अस्तु, सज्जनो ! मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि कुछ लोग ऐसे जडमति होते है कि उन्हे समझाना ही असभव होता है । यदि कोई उन्हे समझाने का प्रयत्न करता है और उनके हित की शिक्षा देता है तो वह व्यक्ति उसे अपना दुश्मन नजर आता है । वह यही सोचता है कि इस उपदेशक का कब टिकट कटे और मेरा पिड छूटे। उसी प्रकार यदि किसी बेटे को उसके माता-पिता उसके हित की वात समझाते है तो वह कपूत बेटा यही सोचता है कि बुड्ढे कब मरे और कब मै स्वतन्त्र हो जाऊ । किन्तु वह मूर्ख यह नही जानता कि बडे-बूढो की कृपा से ही तो अकल आयी है । यदि नसीहत देने वाला, मार्ग-प्रदर्शन करने वाला भी किसी को अपना शत्रु नजर आता है तो यह उसकी भाग्यहीनता नही तो फिर और क्या है ? यदि सत्य वात कहने पर भी कोई उसे असत्य माने और जानबूझकर, आँखे होते हुए भी उन्हे बन्द रखकर कुए मे पडे तो इसमे उपदेशक का क्या दोष है ? दोष तो उसके भाग्य का ही समझना चाहिए ।

हाँ, तो प्रसग यह चल रहा था कि वे बेचारे मौलवी साहब मुसलमानो को हर तरह से प्रयत्न कर करके यह समझाते थे कि "देखो, शराब पीना अच्छा नही है । इससे अपने दीन और ईमान मे फर्क आता है ।" किन्तु मौलवी साहब कितना भी क्यो न समझाएँ कितना भी क्यो न बकें, सुनने वालो के कानो पर जू तक रेंगने

वाली नही थी। आखिर वे हैरान और परेशान हो गये और सोचने लगे कि इस तरह मै एक-एक काफिर को कहाँ तक समझाऊँ, अपना मगज मारू ?

एक दिन एक मेला भरा। उस मेले मे हजारो की सख्या मे मुसलमान सम्मिलित हुए। मौलवी साहब को अवसर मिला। उन्होने सोचा कि एक-एक को अलग-अलग समझाना तो कठिन है। यह सोचकर वह मेले मे गये और वहा जाकर शराब के ठेके की दूकान पर बैठ गये। उन्होने सोचा कि मुझे शराब पीने वालो की शराब ही तो छडानी है। जब लोग मुझे यहा बैठा हुआ देखेगे तो शर्म के मारे स्वय ही यहाँ पीने नही आयेगे।

किन्तु सज्जनो ! क्या मौलवी साहब की, यह तरकीब कारगर हुई ? नही। इसका उल्टा ही परिणाम निकला। शराब पीने वालो ने ज्योही मौलवी साहब को शराब की दूकान पर बैठे हुए देखा, वे आपस में कानाफूसी करने लगे कि देखो, अब तो ये मौलवी साहब भी हमारी जमात में शरीक हो गये है। अब इनसे शर्माने की क्या आवश्यकता ? बस, फिर क्या था, वे लोग बेधडके शराब की दूकान पर आने लगे, बोतलो पर बोतले खाली करने लगे। कोई कोई मसखरा तो यहा तक मस्त हुआ कि शराब का प्याला मौलवी साहब को दिखा-दिखा कर कहने लगा कि मौलवी साहब ! हमे अजहद खुशी है कि अब आप भी हमारी जमात में आ मिले है। यह माजरा देख मौलवी साहब बेचारे बडे पशोपेश में पडे कि कहा तो मै इन लोगो को शराब पीने से रोकने आया था और कहा यह बात ही उल्टी हो गई कि शराब पीना छोडना तो दूर, ये बेधडक हमेशा से अधिक शराब पी रहे है और साथ

ही मुझे भी शराबी समझ रहे है। सच ही है, मूर्खों को उपदेश देना और उनकी सगति में बैठना भी एक गुनाह है। मै भी यही कह रहा था कि मूर्खों को हित की बात समझाना, उपदेश देना और सत्य बात बताना निरर्थक है, क्योकि वे उन बातो का सदा ही उल्टा अर्थ लगाते है।

सज्जनो! शास्त्रो के श्रवण से, ज्ञानियो की सेवा से एव सुन्दर पुस्तको के पठन-पाठन और अध्ययन से अनेक बातें स्पष्ट होकर सुलझ जाती है। व्यक्ति के मस्तिष्क की अनेक भ्रान्तिया मिट जाती हैं और उसके समक्ष वस्तु का यथार्थ, सत्य स्वरूप प्रकट हो जाता है। तत्व की बात यह है कि जहा से भी मिले, हमे गुण को ग्रहण करना चाहिए। धर्म और जाति के भिन्न-भिन्न नामो की चिन्ता न करके हमें सकीर्णता से कुछ ऊपर उठना चाहिए और अपने ज्ञान से सत्य को प्रकाशित करना चाहिए। मैंने अभी आपके समक्ष गरुड पुराण की चर्चा की थी, गति का हवाला दिया था और जैन सिद्धान्त की अनेक बातो से उनका मेल बताया था। तो हमें यहा यह नही देखना चाहिए कि धर्म कौन-सा है और ग्रथ किस धर्म का है। यह भी विचार नही करना चाहिए कि धर्मोपदेष्टा किस जाति का है। किन्तु हमे तो सत्य की खोज करनी चाहिए, गुण-ग्रहण करना चाहिए। चरित्र से बडी कोई चीज नही है। व्यक्ति कोई हो, किन्तु चरित्र उसका यदि पवित्र है तो हमे उसकी पूजा करनी चाहिए। एक उर्दू के शायर ने कहा है —

"सीरत के हम गुलाम हैं, सूरत हुई तो क्या।
सुरखो-सफेद मिट्टी की मूरत हुई तो क्या॥"

इस कथन का आशय है कि हम केवल रग, रूप और सौंदर्य के ही पुजारी नही है। हम तो यदि पुजारी है तो गुणो के। अर्थात

मनुष्य-जन्म पाकर हमें अपने गुणो का विकास करना चाहिए, चरित्र की उन्नति की चिन्ता करनी चाहिए। उसके अभाव में हमारा सारा सौंदर्य व्यर्थ है। वह व्यक्ति जो सूरत-शकल में तो सुन्दर हो किन्तु चरित्र से हीन हो, उसकी उपमा उस सोने-चादी के सुन्दर वर्तन से दी जा सकती है जो देखने मे सुन्दर होते हुए भी भीतर गन्दगी से भरा हो। ठीक उसी प्रकार हमारा शरीर तो मिट्टी की मूर्त्ति है। इसकी शोभा गुणो से ही है।

इस काया को, जोकि मिट्टी से ही निर्मित है, कोई कितना भी सभाल कर क्यो न रक्खे, आखिर यह मिट्टी मे ही मिल जायेगी। किसी फारसी के शायर ने इस विषय में बडी ही सुन्दर बात कही है —

"मादर जिसे उर्मा नहीं करती तहे अफलाक अब कब्र में सोता है
धरी रहती है पोशाक।
और भी आराम जिसे देते थे, छाती पै 'सुलाकर'
घर आते है हाथो से उसे कब्र में जाकर॥"

वह बच्चे की शुभचिन्तक माता, जो प्रतिक्षण बालक की चिन्ता किया करती थी, उसे हमेशा कपडो से ढके रखती थी कि कही उसे सर्दी न लग जाये, कभी उसे नगा नही रहने देती थी, उसी के बालक की वह सारी पोशाक अब केवल खूटी पर टगी रह गई और वह बालक नग्न होकर हमेशा के लिए कब्र मे सो गया। उसका वह सुन्दर और कोमल शरीर मिट्टी मे मिल गया। एक समय था जब माता उस बालक के किसी भी अग पर तनिक सी भी मिट्टी नही लगने देती थी। किन्तु आज तो उसका वह

शरीर मिट्टी ही बन कर रह गया है । जो भाई, पिता अथवा अन्य कुटुम्बीजन उसको हर तरह का आराम देते थे, वे ही उसे चुपचाप कब्र में रख कर चले आते है । उस शरीर मे जब तक प्राण थे, उसे छाती से लगाकर रक्खा जाता था । किन्तु प्राण निकलने के बाद, उसे मिट्टी मे दफना कर और उसपर सैकडो मन मिट्टी डालकर चले आते है ।

सज्जनो ! समय बलवान् है और वह कभी स्थिर नही रहता । समय आता है और चला जाता है । किन्तु वह बात, जो मनुष्य करता है, शेष रह जाती है । यह जीवन, यह स्वर्ण-अवसर बार-बार मिलने वाला नही है । इस मनुष्य देह को पाकर जितना सभव हो और जहा से सभव हो, हमे अपने गुणो का विकास करना चाहिए । कहा है —

"उत्तम विद्या लीजिए जदपि नीच पै होय ।
परम अपावन ठौर में कचन तजै न कोय ॥

सोने की डली चाहे कितनी भी गदी जगह पर क्यो न पडी हो, उसे कोई नही छोडता । तो फिर क्या हमे अच्छी-अच्छी बातो को, गुणो को, जहा से भी वे प्राप्त हो सकें, ग्रहण नही करना चाहिए ? सज्जनो ! अच्छी बातो को, चाहे वे किसी भी ग्रथ मे हो, किसी भी धर्म मे हो, किसी भी व्यक्ति में हो, हमे अवश्य ग्रहण-करना चाहिए । प्राचीन अनुचित परम्पराओ और कुरीतियो के जाल से निकल कर हमें अपने दृष्टिकोण को विशाल बनाना चाहिए, तभी कल्याण सभव है । इस प्रसग पर यदि मै आप लोगो में प्रचलित एक कुरूढि की ओर आपका ध्यान आकर्षित करू तो

असगत न होगा। वह कुरूढि है मोसर करना, अर्थात् मर जाने के वाद न्यात को जिमाना। आप इस कुरूढि के शिकार इसलिए है कि आपको भी तो आरम्भ ही से इन स्वार्थियो और लोभियों द्वारा वही घुट्टी पिलाई गई है और उसका असर आपकी नस-नस में व्याप्त है।

सज्जनो! इन व्यर्थ की बातो में विश्वास करने वाले समझते है कि मरने वाले को तभी शाति मिलेगी जब ब्राह्मणो को और न्यात को माल खिला दिया जायेगा। कितना अज्ञान है! ये भोले-भाले व्यक्ति यह भी नही सोचते कि क्या जिसने अपने जीवन-काल मे सामायिक, पौषध, तपस्या और धर्म-क्रियाए की है, वह भी न्यात को जिमाने तक राख में ही लोटता रहेगा? इस प्रकार का उपदेश देने वाले लोभी पडितो को धर्म के नाम पर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए जन-समुदाय में भ्रान्तियाँ फैलाने के अतिरिक्त और काम ही नही है। दिवगत आत्मा को तो जहाँ जाना था, वहाँ वह चली गई। किन्तु अज्ञानी लोग अनेक प्रकार के भ्रमो में पडकर अपना और समाज का अहित करते है।

भद्र पुरुषो! जीव परलोक में जाने से पहले ही वहा का गति-रूप टिकट प्राप्त कर लेता है। फिर वह यहा से रवाना होता है। गति के वाद जाति का नम्वर आता है अर्थात् जिस एकेन्द्रियादि जाति मे जाकर उस जीव को उत्पन्न होना है, उस जाति का बध भी पहिले ही कर लेता है। जितनी आयु उसे वहा भोगनी है, उसका बध भी वह यही कर लेता है। अवगाहना रूप नक्शा भी यहा से मन्जूर कराया जाता है, जैसे कि विल्डिग वनना आरम्भ होने से पूर्व उसका नक्शा वनाया जाता है। इसके साथ ही अनुभाग,

अर्थात् कर्मों का रस, यानी इस भव में जीव ने जो दुःख-सुखमय कर्म बाधे है, उसके अनुरूप सुख-दुःखमय रस भी जीव यही से ले जाता है। इस जन्म में जीव जैसे भी रूखे या चिकने कर्म बाधेगा, अगले जन्म में उसको वैसा ही फल प्राप्त होगा। अन्त में यही बात प्रदेश के सबध में भी है कि इसे भी जीव यही से बाध कर ले जाता है। कोई कर्म वर्गणा थोडे परमाणुओ से और कोई विशेष परमाणुओ से बनी है। किन्तु होती वे अनन्त-प्रदेशी ही है। जीव उनको भोगता है। इस प्रकार इन छः बातो के बिना कोई भी जीव इस लोक से परलोक नही जाता है।

तो इस समय कर्मों के विषय में विचार चल रहा है। एक नाम होता है और दूसरा नामी। यदि नाम होगा तो नामी भी होगा और नामी होगा तो नाम भी अवश्य होगा ही। ये दोनो ही एक-दूसरे के सूचक है। और नाम भी दो प्रकार के बताये गये है। एक तो कर्मोदय से नाम होता है। एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक–त्रस–स्थावर, सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त, नरक–तिर्यंच, मनुष्य और देवादि नाम कर्मों के उदय से होते हैं। जब तक कर्म रहता है, तब-तक कर्मोदय नाम रहता है। जबतक कर्म नष्ट नही हो जाता तब-तक किसी भी प्रकार यह नाम मिट नही सकता। दूसरा नाम होता है गुणसम्पन्न। जीव, आत्मा, सिद्ध, बुद्ध, अमर, अजर, अविनाशी, निरजन, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी आदि-आदि ये सब नाम परमात्मा के है। किन्तु ये नाम किसी कर्म के उदय से नही है। ये तो गुणसम्पन्न नाम हैं। सिद्ध उसे कहते है जिसके सब कर्म सिद्ध हो गये हो। बुद्ध उसे कहते है जिसे सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया हो। अजर वह है जिसका बुढापा समाप्त हो गया हो। अमर वह जिसकी मृत्यु ही समाप्त हो गई हो। इसी प्रकार अविनाशी

वह जो कभी नष्ट न हो सकता हो। तो ये सब परमात्मा के नाम गुणो के कारण ही रक्खे गये है।

मै पहले बता चुका हूँ कि नाम भी तीन प्रकार के है— यथार्थ नाम, यानी वस्तु जो हो उसमें गुण भी वैसे ही हो। जैसे नाम तो हो विजयकुमार, लेकिन यदि कही ज़रा-सी पूछ भी हिलती देखले तो लगोटी सम्हालना कठिन हो जाये। इसी तरह नाम तो हो रूपचन्द, किन्तु शकल कोयले से भी काली हो, तो कहा जायेगा कि यथार्थ नाम नही है। यह तो अयथार्थ नाम हुआ। हा यथार्थ नाम वह कहलाता है जैसे, भगवान् शातिनाथ। यहा किसी ने प्रश्न किया कि शातिनाथ नाम क्यो रक्खा ? तो उसका सहज उत्तर भी प्राप्त हो गया कि —

चइत्ता भारह वास चक्कवट्टि महिड्ढिओ।
सति सतिकरे लोए पत्तोगइ मणुत्तरं।

उत्तराध्ययनसूत्र अध्य० १८ गाथा ३८वी

सज्जनो ! शान्तिनाथ भगवान् ने छ खड का चक्रवर्ती राज्य किया और बाद में दीक्षा अगीकार कर चर्तुविध सघ की स्थापना की। किन्तु अपने शान्तिनाथ नाम को तो गर्भावस्था में और जन्मोपरान्त भी महामारी की भयकर बीमारी का निवारण करके सार्थक कर दिया। आजकल के जमाने मे तो प्राय अर्थशून्य और निरर्थक नाम रख दिये जाते है जिन्हे कि अयथार्थ नाम ही कहा जा सकता है। नाम तो रखने को रख दिया शान्तिलाल, किन्तु वह मा का सपूत प्रतिदिन घर मे क्लेश करता है तो निश्चय ही वह अपने नाम को लजाता है।

भद्रपुरुषो ! यदि हमें किसी ने सच्चा मार्ग, सच्चे भाव और आत्मकल्याण का रास्ता दिखाया है तो वह यथार्थ नाम वाले तीर्थ-

कर भगवान् ने और अरिहन्तो ने ही वतलाया है। उसके बाद उसी मार्ग का प्रदर्शन उन्ही अरिहन्तो के वचनो के द्वारा हमारे धर्मगुरुओ ने किया है। इनके सिवाय सन्मार्ग दिखाने वाला सच्चा धर्म प्रवर्तक और है भी कौन ? आजकल सच्ची बात कहने वाले भी थोड़े हैं और सुनने वाले भी विरले है। एक देवी ने पति की अनुपस्थिति मे अर्थात् जब उसके पति प्रदेश गये हुए थे, आखो मे सुरमा डाला। उसके बच्चे ने यह सुन रक्खा था कि जब पति बाहर हो तो स्त्रियो को सुरमा नही डालना चाहिए। जब बच्चे ने अपनी मा की आखो में सुरमा देखा तो उसने अपनी मा से कहा कि मा, मा, एक बात कहू ?

माता ने बडे दुलार से कहा—हा, हा बेटा कहो क्या बात है।

तब बच्चे ने मा से कहा कि––जब बापू जी बाहर गये हुए है तो आपने अपनी आखो मे सुरमा क्यो डाला है ? बस इतना सुनना था कि मा बच्चे को मारने के लिए उसके पीछे दौडी। सज्जनो ! बच्चे ने सत्य बात ही कही थी। किन्तु दुनिया तो सत्य बात को सुनना भी नही चाहती और उसे सहन भी नही कर सकती। किन्तु सच जो कुछ भी हो उसे कहने मे किसी को सकोच नही करना चाहिए। क्या हम किसी प्रकार के लोभ मे या भय मे आकर सत्य का गला घोट दे ? यह सर्वथा अनुचित है। ऐसा हरगिज नही होना चाहिए। उस लोभी मनुष्य का क्या विश्वास किया जा सकता है जो लोभ के कारण सत्य का ही गला घोट दे। हमारा कर्त्तव्य है कि हम ऐसे अज्ञानी लोगो को बराबर सन्मार्ग का प्रदर्शन करें। यह कार्य दृढ निश्चय के अभाव में सम्पूर्ण नही हो सकता। दृढ निश्चय वाला ही सच्चे मार्ग का प्रदर्शन कर सकता है।

सज्जनो! इतनी जिम्मेदारी लेकर ही मैं सच्ची बात कहता चला जा रहा हूँ और कहता चला जाऊँगा। मैं खुशामदी भक्तों की भक्ति के वश होकर अपने ध्येय से पीछे नहीं हटूँगा। कई वर्षों से मेरा चातुर्मास प्रायः वहीं होता है, जहा सम्प्रदायवाद की प्रचुरता रहती है। रतलाम भी सम्प्रदायवादी क्षेत्र था, किन्तु मेरा चौमासा वहा हुआ और परिणामस्वरूप वहा सुव्यवस्थित सगठन हुआ। सामाजिक चराचर सम्पत्ति वहा की सब सम्प्रदायो की एक हो गई और वहा पर चार सम्प्रदाय थे। उनका एकीकरण हो गया, वे आपस में सुसगठित हो गये और एक ही सघ बन गया। वहा के सघपति सेठ नाथ बडे समझदार और सवठन किए हुए है। कोई व्यक्ति इस प्रकार के होते ही है। रतलाम में मुझे पूरे अनुशासन से काम लेना पडा। रतलाम मे रात्रि को कुछ लोग बैठे थे, कुछ धर्म चर्चाए चल रही थी, एक वहीं के जवाहरलाल जी सेठ भी बैठे थे जिन्होंने पूज्य श्री उदे सागर जी, पूज्य श्री श्रीलाल जी और पूज्य श्री जवाहरलाल महाराज आदि वडे आचार्यों की सेवा की थी, वे बहुत होशियार थे, शीघ्र खुलने वाले नहीं थे। वे बोले कि महाराज! चातुर्मास तो बहुत हुए है। किन्तु इस चातुर्मास मे मैंने एक नई बात देखी।

यह सुनकर मैंने सोचा कि ऐसी क्या बात है। मैं विचार ही रहा कि उन्होंने कहा कि पहले तो प्रायः साधु गृहस्थो के आगे-पीछे , किन्तु इस दफा मैंने देखा कि चातुर्मास में लोग आपकी ाज्ञा मे चलते है। यह सुनकर मैंने कहा, आप मुझे क्या हो ? वे बोले, गुरु।

ने कहा कि यदि मैं गुरु हू तो मुझे गुरु बन कर ही रहना तुम्हारी और हमारी शोभा किस बात में है ? मेरी

आज्ञा तुम्हे मानने में कि तुम्हारी आज्ञा मुझे मानने में ? जो शुभचिन्तक होते है वे सदा सच्ची ही बात कहेंगे । किन्तु ऐसी सच्ची बात कहने और सुनने वाले दोनो ही बहुत थोडे है । देखो,उस बालक ने सत्य कहा तो मा उसे मारने के लिए दौडी । इसी प्रकार ब्रह्म-दत्त चक्रवर्ती भोगो में डूबा हुआ था । उसे चित्तमुनि ने समझाया और ज्ञान दिया, किन्तु उसपर उपदेश का कोई असर नही हुआ और अन्त में मरकर वह नरक ही में गया । सत्य उपदेशदाता चित्तमुनि मोक्ष में गये । अस्तु, विशुद्ध सत्य कहने में कभी पीछे नही रहना चाहिए ।

सज्जनो ! अन्त में मेरा आपसे एक बार फिर यही कहना है कि सत्य कहना अर्थात् सत्य मार्ग का दिग्दर्शन कराना भगवान् के मार्ग की प्रभावना करना है । जो व्यक्ति वास्तविक बात को छिपाते है,दबाते है, वे न तो अपना ही कल्याण कर सकते है न किसी दूसरे का । भगवान् के मार्ग में सत्य कहने में किसी का लिहाज नही होना चाहिए । चाहे कोई साधु हो या गृहस्थ हो, इस धर्म का हो या उस धर्म का, जो भी आरभ करता है उसे दुख भोगना ही पडता है । इसलिए ससार के लोगो ! यदि सुख और शान्ति चाहते हो तो आरभ को घटाओ । जो पुण्यशाली ज्ञानी आरभ को घटाते है उन्हे परम शातिमय मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

ब्यावर
२४-८-५६

: ७ :

क्षमता

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधा संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचय हे वीर ! भद्रं दिश ॥

× × ×

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥

उपस्थित महानुभावो !

ज्ञानी पुरुषो ने ससार के प्राणियो का पथप्रदर्शन करते हुए वतलाया है कि—हे भव्यात्माओ ! जव तक तुम सीधा रास्ता अख्तियार नही करोगे, तव तक जहा पहुचना चाहते हो, वहा नही पहुच सकोगे ।

यहां क्या होता है ? जिसे जिस ग्राम या नगर में जाना होता है, वह रास्ते के जानकार व्यक्ति से पहले उस गाव का रास्ता

पूछ लेता है और उसके पश्चात् ही उस पर चलना आरभ करता है। अगर वह जानता है कि इस रास्ते पर चलने से कोई खतरा आ सकता है तो वह उसे छोड देता है और दूसरे निरापद मार्ग पर कदम बढाता है।

इस प्रकार जब अपने निश्चित लक्ष्य पर पहुचने के लिए दुनियादारी में भी सीधा और साफ रास्ता पूछना पडता है, तो फिर उस शिवपुर-नगर में जाने के लिए, जहा से फिर कभी वापिस आना ही नही, जंहा अनन्त, अक्षय और अव्याबाध सुख है, जहा आत्मा अनन्त आत्मज्योति मे सदा लीन रहता है और जो हमारा चरम और परम लक्ष्य है, उस शाश्वत स्थान पर पहुँचने के लिए भी क्यो न शुद्ध और निरापद मार्ग की आवश्यकता होगी? और जैसा मार्ग होता है, उसी के अनुरूप सहूलतें जुटाई जाती है। ऐसा न किया जाये तो मजिल तक पहुचने में बाधा पहुचती है।

अभिप्राय यह है कि जो भव्य प्राणी सिद्धि के मार्ग पर चलना चाहता है, उसे भी कोई न कोई शार्ट-कट (छोटी पगडडी) चुननी ही पडती है। किन्तु यह जीवात्मा उस लक्ष्य पर पहुचने के लिए चलता ही जा रहा है और वह भी अनन्त काल से चलता जा रहा है। यह लबे काल की यात्रा है, जिस पर यह सत चल रहा है। परन्तु तारीफ यह है कि ज्यो-ज्यो यह चलता जा रहा है, त्यो-त्यो मार्ग और लम्बा-लम्बा होता जाता है। यही नही, वह अपने अभीष्ट लक्ष्य से दूर और दूरतर होता जाता है। कारण यह कि उसने सही मार्ग नहीं पकड़ा है और गलत राह पर चल रहा है।

तो ज्ञानी पुरुष कहते है कि तुम भले थोड़ा चलो और चलने में भी उतावलापन मत करो, किन्तु मार्ग ठीक तरह निर्धारित कर लो और उसकी जानकारी हासिल कर लो। देख लो कि उस मार्ग में चोर या लुटेरे तो नही हैं। वे वह पूजी तो नही छीन लेंगे, जो मार्ग चलने के लिए आवश्यक है और जिसके अभाव में आप आगे बढ ही नही सकते। क्योकि मिथ्यात्व के मार्ग पर चलने से जीव को दुःख भी उठाने पडते है और पूजी भी गवा देनी पडती है।

ज्ञानीजनो ने केवल पथ निर्धारित करने की आवश्यकता ही नही बतलाई है, वरन् उस पथ का निर्देश भी कर दिया है, जिस पर चलने से यह जीव मोक्ष मे जाता है। मोक्ष के मार्ग का निरूपण करते हुए सम्यग्दर्शन को सबसे प्रथम स्थान दिया गया है। सम्यग्दर्शन मोक्ष का राजमार्ग है। इस पर चलने से जीव अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

सम्यग्दर्शन बाहर से आने वाली वस्तु नही। वह आत्मा का ही अमूल्य निधि है। उसपर दूसरो ने अपना आधिपत्य जमा रक्खा है। हमें सिर्फ यही करना है कि जिन प्रतिपक्षियो ने आपकी निधि पर अधिकार जमा रक्खा है, उन्हे निकाल बाहर कर दें। आपको अनुभव होगा कि कोई किरायेदार ऐसा भी होता है कि घर में आकर जम जाता है तो उसे निकाल बाहर करना भी कठिन हो जाता है। सम्यग्दर्शन के लुटेरे तो अनन्त काल से हमारे अन्दर घुसे हैं। उनसे छुटकारा पा लेना कोई साधारण बात नही है। फिर भी यह असभव नही है। ज्ञानियो ने बतलाया है कि तुम बिना किसी शका के और बिना किसी आनाकानी के भगवान् के वचनो पर अविचल श्रद्धा रक्खो। अगर शंका ही शका में पडे रहे तो ससार मे कोई भी कार्य नही कर सकोगे। शास्त्रकारो का

कथन है कि जब तक मनुष्य शका पर आरूढ रहता है, तब तक वह मोक्ष प्राप्त नही कर सकता। व्याकरण शास्त्र में 'सशय' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—'शेते इव सर्वात्मना यस्मिन् सत्तीति सशय।' अर्थात्, सशय वह मनोवृत्ति है जिसके उत्पन्न होने पर आत्मा पूरी तरह सो-सा जाता है। आपको विदित ही है कि सोते समय आत्मा की समस्त शक्तिया निश्चेष्ट हो जाती हैं। इसी प्रकार सशय की स्थिति में आत्मा की स्वाभाविक शक्तिया सो जाती है—चेष्टाहीन हो जाती है, क्रियाक्षम नही रहती। वह किसी बात का निर्णय नही कर पाता और निर्णय के अभाव में प्रथम तो प्रवृत्ति ही नही होती, कदाचित् दुविधा की स्थिति में प्रवृत्ति की भी जाये तो उसमे सबलता नही होती। कार्य की सफलता के लिए सुदृढ सकल्प आवश्यक है। जब दृढ सकल्प नही होता तो सब प्रयत्न अधूरे रहते है और परिणाम-स्वरूप कार्य की सिद्धि भी नही होती। इसी कारण शास्त्रकार कहते है कि शकाग्रस्त व्यक्ति ससार में भी कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नही कर सकता, तो मुक्ति भी कैसे प्राप्त कर सकता है? नीतिकार कहते है—

> शंकाभि. सर्वमाक्रान्तमन्नपानं च भूतले।
> प्रवृत्तिः कुत्र कर्त्तव्या, जीवितव्यं कथन्नु वा? ॥

सारा ससार शकाओ से आक्रान्त है। क्या भोजन और क्या पानी—सभी बातो में शकाए होती है। अगर शका के ही शिकार हो रहे तो कहा प्रवृत्ति करोगे? किस प्रकार जिन्दा रहोगे? शका-वान् मनुष्य के लिए कोई भी काम करना कठिन है और यदि वह अधूरे मन से काम करता भी है तो सफलता नही पाता।

मनुष्य के मन में शका उत्पन्न होना स्वाभाविक है , पर उसी में डूबे रहना उचित नही। जब शका उत्पन्न हो तो उसका निर्णय कर लेना चाहिए । शका का समाधान प्राप्त कर लेने से नूतन बल की प्राप्ति होती है, उत्साह आता है और कार्य-क्षमता आती है।

सम्यग्दर्शन शका उत्पन्न नही होने देता। वह आत्मा मे दृढ विश्वास जगाता है और आगे बढने की सामर्थ्य प्रदान करता है। अतएव शास्त्रकारो ने सम्यग्दर्शन को मुक्ति का प्रथम कारण बतलाया है, क्योकि कारण के बिना कार्य नही होता ।

मै चातुर्मास में यहा वास कर रहा हू तो आप यहा आकर एकत्र होते है। साधुओ का निमित्त न होता तो आप इतनी सख्या में यहा इकट्ठे न होते, यह मेल-मिलाप न होता। तो किसी भी कार्य के लिए कारण की आवश्यकता होती ही है।

सम्यक्त्व की प्राप्ति के दस कारण बतलाये गये है। उन दोनो कारणो में से किसी भी कारण से जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। सम्यग्दर्शन के मूल रूप में दो कारण है—अन्तरग और बहिरग। अन्तरग कारण दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम होना है। जब आत्मा अनन्तानुबधी कषाय के साथ दर्शनमोह का क्षय आदि कर डालता है तो उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति अवश्य होती है। परन्तु अन्तरग कारण के लिए भी कोई निमित्त–जरिया या बहिरग कारण होना चाहिए। बाह्य निमित्त के बिना कर्म का उदय, उपशम, क्षय या क्षयोपशम नही होता।

सम्यग्दर्शन के बाह्य कारणो में प्रथम कारण है ज्ञानी पुरुषो की वाणी का श्रवण। ज्ञानी जनो के उपदेश से समकित की प्राप्ति

हो जाती है। एक नहीं, वरन् अनेकों जीव ज्ञानियो के वचन सुन-सुन कर ससार सागर को तर गये हैं।

हा, यह बात अवश्य है कि ज्ञानी वास्तव में ही ज्ञानी होना चाहिए। उपदेशदाता सभी मार्गों से अभिज्ञ हो। जो मार्ग वह बतलावे, उसका उसे भलीभाति बोध होना चाहिए। जो स्वय मार्ग भूला हुआ होगा, वह किसी दूसरे को सही मार्ग नही बतला सकता। अतएव वक्ता को मार्गदर्शन में कुशल होना चाहिए। वक्ता पर समाज का गुरुतर उत्तरदायित्व होता है। वह समाज का पथप्रदर्शक है, नेत्र है। समाज को सही रास्ते पर ले जाने का उत्तरदायित्व उसी पर है। जैसे वैद्य के पास विभिन्न रोगो की दवाइया मौजूद रहती है और जिस रोगी को जिस दवा की जरूरत होती है, वैद्य उसे देता है, उसी प्रकार उपदेशक के पास भी भिन्न-भिन्न चीजो का सग्रह होना चाहिए। अगर उसके पास ऐसा सग्रह नही है तो वह अपने पास आने वालो को क्या दे सकेगा? दूकान-दार के पास ग्राहको के उपयोग की वस्तु नही होगी तो वह उन्हे क्या देगा? कैसे अपनी दूकान चलायेगा? उसकी दूकान ठप्प हो जायेगी। अतएव यह आवश्यक है कि दूकानदार के पास भिन्न-भिन्न नमूने मौजूद रहे। हा, इस प्रकार के नमूने मौजूद रखने के लिए दाम चाहिए—पू जी चाहिए। तभी दूकानदार अधिक नमूने रख सकता है और अधिक लाभ भी पा सकता है। इसी प्रकार वक्ता भी यदि परिश्रम करके, गुरु की सेवा करके और शास्त्रो का अध्ययन करके ज्ञान सग्रह कर लेता है तो अपने ध्येय में सफलता प्राप्त करता है, श्रोताओ को अधिक से अधिक लाभ पहुचा सकता है।

कुंआ या बावडी अपने में पानी धारण किये हुए हैं। तो सबसे पहले शान्ति उसी स्थल को प्राप्त होती है, जहा पानी भरा है। फिर उससे अनेक जीव लाभ उठाते है, दूसरे लाभ लें या न लें, परन्तु उस स्थल का सन्ताप तो शान्त हो ही जाता है। इसी प्रकार ज्ञानी जो ज्ञान प्राप्त करता है, उसे तो अपूर्व शान्ति प्राप्त हो ही जाती है और दूसरे भी यदि चाहे तो उससे लाभ उठा सकते है। हा, होना चाहिए वह सम्यग्ज्ञान। वह किसी दूषित दृष्टि से प्राप्त न किया गया हो।

सम्यग्ज्ञान किस उद्देश्य से प्राप्त करना चाहिए? इसका उत्तर दशवैकालिक सूत्र में दिया गया है। वहा सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के चार उद्देश्य बतलाये है। वे इस प्रकार है—

(१) मैं परिश्रम करके ज्ञानाभ्यास करूंगा, अध्ययन करूगा और गुरुकृपा से श्रुतलाभ करूगा तो मेरे पास सूत्रज्ञान का भडार हो जायेगा। उस ज्ञान की सहायता से मै अपने मन को, जो बिना लगाम के घोडे की तरह इधर-उधर भटकता फिरता है, अपने वश में कर सकूगा, क्योकि मन रूपी अश्व के लिए ज्ञान रूपी लगाम बहुत उपयुक्त होती है। इससे मेरा मन एकाग्र हो जायेगा। मन को समाधि की प्राप्ति होगी।

सज्जनो! ज्ञानी पुरुषो ने ज्ञान को समाधि बतलाया है। जो लोग विकृतिया फैलाते हैं, क्लेश और कदाग्रह बढाते है, समझना चाहिए कि उन्हे वास्तविक ज्ञान प्राप्त नही है। वह मिथ्याज्ञान है, ज्ञानाभास है। शास्त्र मे ज्ञान को गुरु बतलाया गया है। आत्मा का ज्ञान ही सच्चा गुरु है। वह आत्मा को भूल से बचाता है। प्रथम तो ज्ञानी इतना सावधान रहता है कि उससे भूल होती नही, कदाचित् छद्मस्थता की तरग में भूल

हो भी जाये तो वह शीघ्र ही सभल जाता है। इस प्रकार ज्ञान से चित्त स्थिर होता है और यह आत्मा, जो इधर-उधर भटकती है, डावाडोल होती है और दौड-धूप मचाती रहती है, ज्ञानी पुरुषो के वचनो पर भी श्रद्धा नही करती, ज्ञान से स्थिर हो जाती है।

भद्र पुरुषो ! आत्मा को काबू मे कर लेना कोई मामूली बात नही है। मन पर काबू करने से आत्मा पर काबू होता है और आत्मा पर काबू होने से मन पर काबू होता है। मन में स्थिरता आती है तो आत्मा भी स्थिर होती है और आत्मा की स्थिरता मन मे स्थिरता उत्पन्न करती है। इधर-उधर यो ही भटकने वाला और नाना प्रकार के सकल्प एव विकल्प करके मिथ्यात्व का सेवन करने वाला मन जब स्थिर हो जाता है तो आत्मा को अपूर्व शान्ति और निराकुलता प्राप्त होती है। फिर कोई देवी-देवता भी उसे विचलित नही कर सकते। अतएव चित्त की एकाग्रता के लिए ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए।

ज्ञानाभ्यास का उद्देश्य दूसरो को धर्म मे स्थिर करना भी है। जिसका चित्त धर्म में स्थिर हो जाता है, वह दूसरो को भी स्थिर कर सकता है। सज्जनो ! इसी कारण जो गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं,उनकी निज की आत्मा दृढ होनी चाहिए। गुरु को पर्वत की भाति अडोल और अकप होना चाहिए, क्योंकि धर्मी पुरुष पर अनेक प्रकार की आपत्तिया आती हैं। आप जानते ही होगे कि समाज में जो साहूकार-मालदार होता है, वही सब की नजरो में आता है। उसकी ओर सरकार का भी ध्यान रहता है और चोरो-डाकुओ का भी। यहा तक कि साधुओ का ध्यान भी प्राय उसकी ओर आकर्षित होता है। इससे धनवान् को घबराना

नही चाहिए, बल्कि नीति के पथ पर चलते हुए सब को यथायोग्य देते रहना चाहिए।

शास्त्रकार बतलाते है कि जहां मधुर फल होते है, वही पक्षी चोच मारते है। कडवे फलो से पक्षी भी दूर रहते है। मगर फलो का द्वार तो उन चोच मारने वाले पक्षियो के लिए भी खुला है। उनकी कृतार्थता इसी में है कि पक्षी आवें, चोच मारें और अपनी क्षुधा की तृप्ति करे। फल यह नही सोचते कि पक्षी आकर मुझे दु ख देते है तो मै उन्हे क्यो शान्ति प्रदान करू ? उसका द्वार सबके लिए खुला है, इसी प्रकार धर्मगुरु का द्वार सभी के लिए समान रूप से खुला हुआ रहता है। चाहे कोई निन्दक हो या स्तुतिकर्त्ता हो, धर्मगुरु के लिए सभी अनुकम्पा के पात्र है। डाक्टर और दवाखाने केवल रोगियो के लिए ही होते है। अगर हमने किसी कुष्ठी से परहेज किया और रोगी को दवा न दी तो हम किस काम के डाक्टर रहे !

जब किसी व्यक्ति में दुर्भावना जागृत होती है और यह भयानक व्याधि उसके पीछे लग जाती है,तो धर्मगुरु उसके लिए खास तौर से उपाय सोचते है और उसे बढिया दवा देते है। समझदार की यही भावना रहती है कि जिसकी आत्मा दुर्भावना से मलीन हो रही है, उसे सुधारने का, आत्मा को स्वच्छ करने का, कब मुझे अवसर मिले ! मेरे निमित्त से कैसे उसका उद्धार हो ! किस प्रकार उसकी दुर्भावना को मै दूर करू और सद्भावना जगाऊ।

भगवान् महावीर का आदर्श और परमपावन जीवन हमारे सामने है। उन्हे कितने घोर कष्ट दिये गये, परन्तु वे रच मात्र भी अपने पथ से विचलित न हुए। उन्होने जिस राह पर

चलना आरम्भ किया था, उससे एक कदम भी पीछे न हटे। पीछे हटना तो दूर रहा, क्षण भर के लिए भी अपनी गति को कुठित न होने दिया। उनकी रफ्तार ज्यो की त्यो जारी रही। उनके मन में दु ख देने वालो के प्रति किंचित् भी रोष का भाव नही जागा। जब सोचा, उन्होंने यही सोचा कि यह पहले का बदला ले रहे है, मुझ पर इनका जो ऋण चढ़ा है, उसे वसूल कर रहे है। मेरा भार हल्का हो रहा है। इससे मेरा कुछ बिगडने वाला नही, लाभ ही होगा।

सगम देव भगवान् का पिछले जन्मो का दुश्मन था। भगवान् महावीर को साधु-अवस्था मे देखते ही उसके वैर के सुप्त सस्कार प्रबुद्ध हो उठे। उसने सोचा बदला लेने का यह स्वर्ण-अवसर है। इस समय यह निश्शस्त्र है, निस्सहाय है, एकाकी है। दिल खोल कर बदला लेने का इससे उत्तम अवसर फिर कब मिलेगा ? मगर भगवान् सच्चे साहूकार की तरह बदला देने को तैयार थे। वह चाहते थे कि जिसका कर्ज़ हो, वह ले जाये। वे जानते थे कि कर्ज़ अदा किये विना मोक्ष नही मिल सकता। मुझे मोक्ष पाना है तो कर्ज़ चुका देना ही चाहिए।

वह साहूकार ही क्या जो पास मे होते हुए भी रकम नही चुकाता और घर में रकम दवा कर दिवाला फूक देता है ! यह सच्चे साहूकार का काम नही। जो धन होते हुए भी कर्ज़ नही चुकाता, वह दिवालिये से भी वदतर है। दिवालिया तो मजबूरी हालत मे होता है—उस हालत मे, जब उसके पास चुकाने को कुछ शेष न बचा हो। और यह उसकी ईमानदारी है कि वह कहता है—मेरे पास अगर कुछ आया तो पहले तुम और वाद मे मैं हूं।

भगवान् महावीर ने सर्व कर्जदारो को आह्वान किया कि जो-जो लेना चाहे, ले लें। वे जानते थे कि कर्ज चुकाये बिना जहा जाना है, वहा जाना न होगा और चुका कर ही जाना होगा।

तो सगम ने एक नही, अनेक परीषह दिये। उसने नाना प्रकार के रूप बदल-बदल कर कष्ट देने में कोई कसर न रक्खी। एक ओर महामानव था और दूसरी ओर महादानव था। दोनो की शक्तियों में होड लगी थी। ग्रन्थकारो ने उल्लेख किया है कि सगम देव लगातार छ महीनो तक पीछे पडा रहा। मगर वह महावीर को पराजित न कर सका। अनेकानेक भयानक यातनाए सहन करके भी वे विजयी हुए और सगम यातनाए देकर पराजित हुआ।

भगवान् ने अपने तपश्चर्या-काल मे मनुष्यो द्वारा प्रदत्त अनेक कष्ट सहन किये। उन्हे दुस्सह शारीरिक पीडाए मिली। पर उनका मन मानों फौलाद का था। वे सब व्यथाओ और पीडाओ को अतिशय शान्त भाव से पी गये।

सज्जनो ! जरा सगम देवता की मन स्थिति पर विचार तो कीजिये। वह देवलोक के अनुपम ऐशो-आराम और बत्तीस प्रकार के दिव्य नाटको का आनन्द त्याग कर दुख देने के लिए भगवान् के पीछे-पीछे फिरता रहा ! वास्तव मे पापी जीव ऐसे ही होते है। चाहे उनका सारा धन क्यो न बरबाद हो जाये, कुछ भी क्यो न बिगड जाये, किन्तु वे दूसरो की हानि किये बिना नही मानते। वे दूसरो को पीड़ा पहुँचाने के लिए अपना सर्वस्व भी न्योछावर कर देते है।

लोग दो तरह के होते है—एक तो विनौले (कपासिया) के साथी और दूसरे सन के साथी। दोनो की प्रकृति अलग-अलग होती

हैं। सन काट कर धूप में सुखाया जाता है और फिर पानी में डाल दिया जाता है। उसकी छाती पर मन दो मन का बोझ भी लाद दिया जाता है, ताकि वह अच्छी तरह भीग जाये। उसके पश्चात् उसकी खालें (त्वचा) उतारी जाती हैं। वह कम्बख्त पानी को भी गदा कर देता है, क्योंकि खोटे की सगति से खोट ही पैदा होती है। सन की सगति से स्वच्छ जल भी गदा हो गया।

हा, तो वह सन जब बाहर निकाला जाता है तो उसकी चमडी उधेडी जाती है और लकडियो से खूब कूटा जाता है, क्योंकि उस पर मैल होता है। फिर उसे धोकर सुखाया जाता है और बाद में रस्सी बनाई जाती है। रस्सी बनाने वाले चक्र पर खूब घुमा-घुमा कर बट लगाते है, मानो उसकी नस-नस को तोड रहे हो।

इतना कष्ट उठाना पडता है सन को। उसकी इतनी दुर्दशा देख कर किसी कवि ने उससे पूछा—तुम क्यो इतना कष्ट सहन कर रहे हो ?

सन ने कहा—बोलो मत। इस दुख मे भी मुझे कितना अधिक आनन्द आ रहा है, यह कहने की बात नही है।

कवि यह सुन कर चकित रह गया। उसने पुन प्रश्न किया—भाई सन ! जरा बतलाओ तो सही कि तुम्हारे आनन्द का कारण क्या है ? क्यो इस दुख में तुम सुख का अनुभव कर रहे हो ?

सन ने कहा—सुनना ही चाहते हो तो सुन लो। जिस दिन मै रस्से के रूप में परिणत हो जाऊंगा, उस दिन मै उन पशुओ को, जो आज स्वतन्त्र घूमते फिरते है, परतन्त्र कर दूगा। वे बन्धन में बन्ध जायेंगे। मै उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर सकूगा और उन्हे परतन्त्र बना दूगा। मुझे समस्त कष्ट सहन करने का लाभ

प्राप्त हो जायेगा। मै अपने ध्येय में सफलता प्राप्त कर लूगा। भविष्य का यही विचार मुझे इस कष्ट में भी आनन्द प्रदान कर रहा हूँ।

भद्र पुरुषो ! आप समझ सकते है कि सन की भावना कितनी दूषित है ! उस दुष्ट ने दूसरो को बन्धन में डालने के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहते-सहते अपनी जिंदगी भी बरबाद कर डाली।

सन की इस प्रकृति के समान प्रकृति वाले कई पुरुष होते है। वे दूसरो को दु ख देने के लिए अपने सुख का भी परित्याग कर देते है और दु ख भोगने में ही आनन्द मानते है। वे दूसरो को नष्ट करने के लिए अपना विनाश भी सहर्ष स्वीकार कर लेते है। अपनी नाक भले कट जाये, मगर पडोसी का अपशकुन हो जाना चाहिए, यह उनकी मनोभावना होती है। कितनी तुच्छ और मूर्खतापूर्ण भावना है यह !

याद रक्खो, जिसका पुण्य शेष है, उसका बाल भी बाका नही हो सकता। मनुष्य की तो बिसात ही क्या है, देव भी उसका कुछ नही बिगाड सकते।

सज्जनो ! इसके विपरीत बिनौले के सदृश श्रेष्ठ आत्माए भी होती है। वे अपना उज्ज्वल जीवन रखती हुई, दूसरे के महान् कष्ट को अपने ऊपर झेल कर भी उसे सुख पहुचाती है। वह बिनौला अपने आपको चर्खी में दे देता है। उसके पास सर्दी-गर्मी से रक्षण पाने के लिए कोट, स्वेटर या जो कुछ भी समझो, रूई ही थी। वही उसका सर्वस्व थी। प्रकृति ने उसकी रक्षा के लिए एकमात्र वही साधन प्रदान किया था। उसका वस्त्र, पोशाक या वर्दी रूई ही थी। किन्तु वाह रे बिनौले ! प्रशसनीय है

तेरा त्याग, ऋषियो और मुनियो के लिए भी यह अनुकरणीय है। तू एकेन्द्रिय होकर भी ऋषियो-मुनियो को पाठ पढाता है, सबको अपने उदाहरण से उदारता का सबक सिखाता है। कितनी तेरी उदारता है! मगर कोई शिक्षा लेने वाला हो तब काम चले।

एक ग्रथ में पढा था कि शिक्षा-शिक्षा क्या चिल्लाते हो, यह सम्पूर्ण विश्व ही शिक्षणालय है। यह भी शिक्षा लेने की एक सस्था है। इसमें जड और चेतन सभी पदार्थ शिक्षा दे रहे हैं। हृदय और मस्तिष्क वाले सभी पदार्थों से शिक्षा ले सकते हैं। औरो की तो वात छोडिये, पशुओ तक को देख कर शिक्षा मिलती है और जिन्हे मिल गई वे केवल ज्ञान पा कर मोक्ष में जा पहुचे। चाहिए पात्रता और योग्यता! सज्जनो! तुम्हे तो गुरु, मुनि, त्यागी और महाव्रती शिक्षा दे रहे हैं। परन्तु जो शिक्षा लेने योग्य होते है, वही शिक्षा ले सकते है।

चार प्रत्येक बुद्धो में एक राजा करकण्डू थे। प्रत्येक वुद्ध और स्वयं वुद्ध मे थोडा अन्तर होता है। जिन्हे अपने आप ही अन्दर से वोध की प्राप्त होती है, वे स्वय वुद्ध कहलाते है। वर्षा अधिक होने पर जमीन धीरे-धीरे एक रस होकर तर हो जाती है और जहा से थोडी-सी रेत हटाई जाये, वहो चारो ओर से पानी झरने लगता है। रतलाम में मेरा चौमासा था। वर्षा खूव हुई, किन्तु लोग कहने लगे महाराज! अभी पूरी वर्षा नही हुई है। पूरी वर्षा तव होती है जव कि पानी जमीन में से उवकने लगता है। तो जैसे जमीन में से पानी अपने आप उवकने लगता है, इसी प्रकार जव मनुष्य को स्वय वोध प्राप्त हो जाता है तो वह स्वयवुद्ध कहलाता है। किन्तु ऐसे स्थान वहुत कम है, जहा स्वयं

पानी उबकने लगता है। अधिक स्थान ऐसे ही होते है जहा खोदने से पानी निकलता है। इसी प्रकार वे आत्माए बहुत है जिनको जप-तप आदि की खुदाई के बाद ज्ञान रूपी जल की प्राप्ति होती है। वे स्वयबुद्ध स्वर्ग, नरक, लोक, अलोक, धर्म, अधर्म आदि सभी वस्तुओ का ज्ञान स्वय, परोपदेश के बिना ही प्राप्त करते है।

प्रत्येक बुद्ध इनसे भिन्न होते हैं। उन्हे किसी बाह्य पदार्थ को देखने से और उसके विचार में गहरे उतरने से ज्ञान-वैराग्य की प्राप्ति होती है। उनके लिए कोई नियत नही कि किसी साधु से, तीर्थंकर से, श्रावक से या और किसी खास चीज से ही ज्ञान प्राप्त हो। उनके लिए प्रत्येक वस्तु बोध का कारण बन सकती है।

अहा, कितनी उदारता है जैन शास्त्रो में ! वह कहते है—जिसने अपने आपको योग्य बना लिया है, तैयार कर लिया है, पात्रता प्राप्त करली है, उसके लिए प्रत्येक वस्तु बोध प्रदान कर सकती है और वह प्रत्येक बुद्ध बनकर सिद्धि प्राप्त कर सकता है। उसे पहाड को, नदी को, नाले को या किसी भी अन्य पदार्थ को देखकर बोध प्राप्त हो जाता है। यथा—अहा, चौमासे में जो नदी ठाठे मार रही थी, अकडती हुई, उफनती हुई, इठलाती हुई द्रुतिगति से वह रही थी, आज वही पानी न मिलने के कारण सूखी पडी है ! मानव जीवन की भी यही स्थिति है। यह फूला-फला विकसित हुआ जीवन भी एक दिन सूख जायेगा। इस प्रकार नदी आदि किसी भी वस्तु को देख कर जिसे वैराग्य प्राप्त हो जाता है, बोध की प्राप्ति हो जाती है, वह प्रत्येक बुद्ध कहलाता है।

भगवान् महावीर फरमाते है कि किसी भी पदार्थ से ज्ञान प्राप्त हो सकता है, किन्तु कोई भूल न कर बैठना ; क्योकि वह

ज्ञान क्षयोपशम के विना नहीं होगा। क्षयोपशम वाली आत्माओं को किसी भी निमित्त से ज्ञान हो जाता है। जो तिरने वाला होता है, लघुकर्मी होता है, उसके लिए कोई भी वस्तु बोध का कारण बन सकती है। इसके विपरीत भारी कर्म वाले व्यक्ति को साक्षात् तीर्थंकर भगवान् भी बोध नही दे सकते।

हा, तो करकण्डू राजा को पशुपालन का बहुत शौक था। वह एक दिन अपनी पशुशाला का निरीक्षण करने गया। वहा उसने गाय के एक नवजात शिशु को उछलते-कूदते देखा, मानो वह राजा का प्रेमपात्र वनने का प्रयास कर रहा हो? राजा उस भोले, सुन्दर और सुकोमल वछडे को देख कर अतिशय प्रसन्न हुआ। उसने पशुशाला के अधिकारियो को आदेश दे दिया कि इस वछडे को अपनी माता का पूरा दूध पिलाया जाये। जव राजा की कृपा हो गई तो किस चीज़ की कमी रह सकती थी? उस वछडे को भरपेट दूध मिलने लगा और नौकर-चाकर उसकी विशेष रूप मे सेवा-शुश्रूषा करने लगे। वह राजा का कृपापात्र जो ठहरा!

यथासमय वछडा भरपेट दूध पीकर हृष्ट-पुष्ट डील-डौल वाला वडा ही सुन्दर साड वन गया। वह भरपूर जवानी में आ गया। राजा उसे देख-देख कर आनन्द का अनुभव करने लगा। अधिक दूध पीने के कारण उसका नाम 'दुद्दल' साड पड गया था।

मगर काल के अप्रतिहत प्रभाव के कारण किसी भी चेतन और अचेतन वस्तु की एक-सी स्थिति नही रहती। जैसे वचपन चला गया और जवानी आ गई, उसी प्रकार जवानी भी स्थिर न रही। अभी तक वह यौवन के मद मे उन्मत्त था और जवानी की

मस्ती में झूमता फिरता था। मगर वह समय चला गया। खून में वह जोश न रह गया। धीरे-धीरे दांत गिर गये। शरीर की चमड़ी सिकुड़ने लगी और जगह-जगह झुर्रियां पड़ गईं। सींग हिलने लगे—आंखें अन्दर की ओर धस गईं। पेट सिकुड गया। हालत यहां तक गिर गई कि उसे उठने-बैठने में भी कष्ट होने लगा। जठराग्नि मन्द पडने से और दांतो के गिर जाने से चारा चरना भी दूभर हो गया।

सज्जनो ! दुद्दल साड की जो स्थिति हुई, वही प्रत्येक मनुष्य की होती है। अतएव ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जो कुछ करना है, यौवनकाल में कर लो। यौवन जीवन का स्वर्णयुग है। इस युग में मनुष्य की समस्त शक्तिया सजग रहती हैं। अत. भविष्य के मगल-साधन के लिए यही सर्वोत्तम अवसर है। जवानी बीत जायेगी और बुढापा आ धमकेगा तो कुछ नही बन पडेगा। जवानी में कुछ कर लिया तो जवानी है और नही किया तो दीवानी है ! जवानी तो पहाड की नदी का पानी है। यह पानी कब तक पहाड पर ठहरेगा ? उसे नीचे आते देर नही लगेगी। जवानी समाप्त होने एव जरावस्था आने में विलम्ब नही लगता।

हा, वह दुद्दल साड बुढापे की कमजोरी के कारण पड़ा हुआ है और अपने अतीत यौवन की स्मृति करके दुखी हो रहा है। सज्जनो ! जो मदभरी जवानी में किसी को कुछ नही समझता था, उन्माद के वशीभूत होकर सबको सताता था और पीडित करता था, आज वही दुद्दल साड जराजीर्ण अवस्था में पडा है। आज छोटे-छोटे बछडे भी उसे सीगो की टक्करें मारते है। उसका कुछ भी वश नही चलता। दु खित होकर जिन्दगी के शेष दिन पूरे कर रहा है।

संयोगवश राजा करकण्डू एक दिन बाहर से घूमघाम कर पशुशाला में जा पहुंचा। उसने अपने प्रीतपात्र दुहल सांड को वर्तमान हालत देखी। देख कर उसे बडा ही आश्चर्य हुआ। उसने विचार किया—इसकी कुछ दिनो पूर्व क्या हालत थी और आज क्या हालत हो गई है ? क्या मैं भी इसी प्रकार काल के क्रूर प्रहार का लक्ष्य नही बन जाऊगा ? निश्चय ही एक दिन मैं भी बूढा हो जाऊगा और मेरी भी यही स्थिति हो जायेगी।

राजा ने जब यह विचार किया तो कठोर वास्तविकता उसके सामने आ खडी हुई। भविष्य का अप्रिय और उद्वेगजनक चित्र आखो के आगे खिच गया। अन्त करण में वैराग्य का भाव जागृत हुआ और सारा ससार असार प्रतीत होने लगा। वह अपनी आत्मा को सबोधित करके कहने लगा—ऐ करकडू ! किस भ्रम में भूले हो ! तुम्हारी भी यही हालत होने वाली है। तुम्हे भी इस अर्ध-मृत्युमय बुढापे का सामना करना पडेगा और उसके बाद इस दुनिया से कूच कर जाना होगा। जीवन का यह मस्ताना नशा कायम रहने वाला नही है ! अतएव अभी, जो थोडा-सा समय तुझे मिला है, उसका सदुपयोग कर ले। अवसर हाथ से निकल जाने पर फिर पछताना ही शेष रह जायेगा।

इस प्रकार बैल को देख कर राजा के चित्त में वैराग्य की जागृति हो गई। वैराग्य जागने पर वह राजपाट, सुख-वैभव, भोग-विलास आदि सबको तिलाजलि देकर आत्म-साधना करने के हेतु जगल मे चल दिया। पुष्पों की सुमृदुल शय्या पर पोढने वाला आज ककरीली भूमि पर शयन कर रहा है ! मुक्त हस्त से दूसरो को दान देने वाला नरेश आज उदरनिर्वाह के लिए घर-घर भिक्षा-

चर्या कर रहा है। फिर भी कही-कही मागने पर भी रोटी का टुकडा नही मिलता। किसो घर में जाता है तो वहा की भद्रा भोजन छिपा लेती है और कहती है-अभी भोजन तैयार नही किया है। फिर भी आत्मसाधक योगी प्रसन्न है, सन्तुष्ट है और लाभ-अलाभ में समभाव धारण किये रहता है।

जिसकी भावना ठीक नही, उसके यहा से आहार लेना भी ठीक नही। कहते हैं—

आप दिया सो दूध बराबर, मांग लिया सो पानी।
झगड़ लिया सो रक्त बराबर, कहते ज्ञानी बानी॥

एक अजैन बाबाजी थे। उन्होने मुझे एक बात सुनाई थी। वह इस प्रकार है-'एक बुढिया के पास माल बहुत था, मगर खाने वाला कोई न था। मैंने (उन बाबाजी ने) जाकर बुढिया से सवाल किया, पर उसने उत्तर नही दिया। मैं उसी के घर के सामने धूनी लगाकर बैठ गया। मैंने पक्का विचार कर लिया कि इससे लेकर ही जाऊगा। बुढिया ने मुझे टालने की बहुत कोशिश की, किन्तु मैंने साफ कह दिया कि हम यहां से लिये बिना टलने वाले नहीं! मैंने उससे कहा-अरी भूतनी! तू क्या नही देगी, तेरी छाया को देना पडेगा। अगर नही देगी तो तुझे चिड़िया बनाकर उडा दूंगा और फिर आकाश में उडती ही फिरेगी।

यह धमकी सुन कर बुढ़िया की अकल ठिकाने आई। उसने नरम पड़ कर कहा-बावाजी, सचमुच कही ऐसा मत कर देना! आप जीम लो और अपनी दक्षिणा भी ले लो।

तब मैंने भर पेट भोजन किया और दक्षिणा भी ली।

तो ऐसे-ऐसे साधु भी होते हैं। मगर पूर्ण अहिंसा का पालन करने वाले साधु को इस प्रकार का व्यवहार करना योग्य नही है।

श्रीमद् उत्तराध्ययनसूत्र के पन्द्रहवें अध्याय मे भगवान् ने फरमाया है कि सच्चा साधु कौन होता है ? वास्तविक भिक्षुक किसे कहना चाहिए ? यद्यपि भिखारी और भिक्षुक दोनो शब्द एक ही धातु से निष्पन्न हुए हैं, तथापि दोनो के रूढिगत अर्थ में अन्तर है। भिखारी रो-रोकर और गिडगिडा कर लेता है और बाईजी, माईजी कह कर रोटी का टुकडा मागता है। उसके हृदय में दीनता व्याप्त होती है। वह कहता है–तुम्ही हमारे मा बाप हो ! तुम्ही से हमारा गुज़ारा होता है। इस प्रकार दैन्य प्रदर्शित करके, मनुष्यता को मिट्टी मे मिलाकर और अपनी पोजीशन को खोकर लेने वाले भिखारी कहलाते है। किन्तु भिक्षु का पद उच्च होता है। स्वय भगवान् महावीर ने पूछे जाने पर अपने आपका 'भिक्षुक' शब्द से परिचय दिया था।

साधु स्वाभिमान के साथ भिक्षा लेता है। भिक्षा लेने में वह अपने गौरव को रचमात्र भी ठेस नही लगने देता। दीनतायुक्त वाणी का प्रयोग करना साधु के लिए दोष माना गया है। अर्थात् जो साधु दीनतापूर्ण शब्द कह कर भिक्षा लाता है, वह दोष का पात्र होता है। साधु भूखा रह जाता है, पर दीन वचन नहीं बोलता। जब साधु भिक्षा के लाभ और अलाभ में समभाव रखता है, बल्कि लाभ की अपेक्षा अलाभ में अधिक आत्महित मानता है, अनायास ही तपस्या हो जाने का विचार करके सन्तुष्ट हो जाता है, तो उसे दैन्य दिखलाने की आवश्यकता ही क्या है ? यद्यपि साधु जन-समाज में जो आध्यात्मिक चेतना सजग रखता है, धर्म-

भाव विकसित करता रहता है, लोगों को अनीति के मार्ग से हटा कर नीति और धर्म के मार्ग पर लगाता है और इस प्रकार अपना समग्र जीवन जनकल्याण के लिए समर्पित कर देता है, उसे जीवन-निर्वाह के हेतु समाज से भिक्षा पाने का अधिकार है, फिर भी सच्चा साधु कभी अपना अधिकार नही जतलाता। वह न अपने अधिकार की माग करता है और न दीनता ही दिखलाता है। दीनता मे आत्मा का पतन है और शासन की अवहेलना है। भगवान् का फरमान है कि साधु को वही कार्य करना चाहिए कि जिससे जिन-शासन की उन्नति और प्रभावना हो और आत्मा का भी उत्थान हो।

पेट के लिए गिडगिडाना कायरो का काम है। साधु सिंहवृत्ति धारण करके भिक्षा लेते है। सिंहवृत्ति का अर्थ यह न समझा जाये कि वे किसी से सिंह की तरह जबर्दस्ती से छीन लेते है। नही, इसका अभिप्राय इतना ही है कि उनके मन में तनिक भी दीनता नही आने पाती। वस्तुत साधु को न दीनता ही प्रदर्शित करनी चाहिए और न ऐसे शब्दो का ही प्रयोग करना चाहिए कि—अगर तू नही देगी तो तुझे चिडिया बना कर आकाश मे उडा दूगा। साधु की भाषा मर्यादायुक्त होती है। भिक्षाचर्या के अवसर पर भी वह मर्यादित शब्दो का ही प्रयोग करता है।

गृहस्थ के घर में अनेक प्रकार की वस्तुए मौजूद है, पर वह साधु को उन्हे देना नही चाहता। तो साधु का उस समय क्या कर्त्तव्य है ?

सयणासण पाणभोयणं,
विविह खाइमं साइमं परेसिं।

अदए पडिसेहिए नियण्ठे,
जो तत्थ न पउस्सइ स भिक्खू ॥
—दशवैकालिक

शय्या, आसन, पानी, भोजन, तथा नाना प्रकार के खादिम और स्वादिम गृहस्थ के गृह मे विद्यमान है। वे साधु को दिखाई दे रहे है। फिर भी गृहस्थ उन्हे देता नही और देने से इन्कार करता है। ऐसी स्थिति में साधु को चाहिए कि वह लेशमात्र भी क्रोध या द्वेष न करे और प्रशान्त भाव से लौट आये।

साधु को दान देकर गृहस्थ अपना निज का उपकार करता है। वह अपने पाप-कर्मों का क्षय करता है और ससार से तिरने के लए मार्ग का निर्माण करता है। साधु दान लेकर गृहस्थ पर ऐहसान करता है। इस प्रकार की भावना गृहस्थ के चित्त में होनी चाहिए।

अगर गृहस्थ की भावना साधु को दान देने की न हो तो साधु को कदापि नही लेना चाहिए। अगर कोई लेता है तो वह साधुता का अपमान करता है और साधुत्व के महत्व को कम करता है।

हां, तो करकंडू राजा छप्पन भोजन करने वाले थे। उन्हे ससार के उत्तम से उत्तम भोगोपभोग सभी प्राप्त थे। किन्तु उन्होंने सब कुछ त्याग कर भिक्षुक-जीवन अगीकार किया। घर-घर घूम कर, गवेषणापूर्वक रूखा-सूखा जैसा भी मिल जाता, उसी में वे सन्तोष कर लेते थे और आत्मसाधना में लीन थे।

तो मै कह रहा था कि उन्हे बैल को देखने से ही बोध प्राप्त हो गया। इसका यह अर्थ नही कि—हे वृषभ देव! तुझ से हो

ज्ञान प्राप्त होता, है अतएव तुझे नमस्कार है। इस प्रकार कह कर नमस्कार करने से बैल वैराग्य नही दे देगा। यो वैराग्य देने की शक्ति उसमें होती तो वह स्वय दीक्षा क्यो न ले लेता ? बैल तो निमित्त मात्र था। करकडू राजा की आत्मा में जो ज्ञान मौजूद था, वह करवट बदल कर खडा हो गया। सुप्त बोध जागृत हो गया।

इसी प्रकार निगाई राजा को इन्द्रस्तभ देख कर वैराग्य आ गया था। गोगा पीर का मेला भरता है। वहा सब लोग एक बास की पूजा करते है और उसपर सब चीजें तथा मालाए चढाते है। वह बास उस समय बडा ही सुहावना लगता है। किन्तु दूसरे दिन जब राजा उधर से गुजरता है और एक दिन पहले के सजे बास को ठूठ की तरह देखता है तो उसके मन में विचार आता है—कल तो देवता मान कर लोग इसकी पूजा कर रहे थे, किन्तु आज कोई नही पूछ रहा है ! जब तक पुण्योदय है, तभी तक सब ठाठ है। पुण्य क्षीण हुआ कि कोई टके सेर भी नही पूछता। इस प्रकार विचार करते-करते राजा को वैराग्य हो गया। इसका यह अर्थ नही कि ठूठ को मत्था टेका जाये।

पान्चाल देश के राजा द्विमुख को आम देख कर ही ज्ञान हो गया था। राजा अपनी सेना के साथ कही जा रहा था कि मार्ग में एक आम्रतरु दिखाई दिया। वह आम्रफलो से लदा हुआ था और फलो के भार से नीचे झुक गया था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे विनम्र होकर राजा का स्वागत कर रहा हो। राजा ने उस हरे-भरे वृक्ष को भलीभाति देखा और उसका एक आम भी तोड लिया और फिर आगे रवाना हो गया। राजा के पीछे

उसकी विशाल सेना थी । सब सैनिकों ने राजा का अनुकरण किया । जितने भी सैनिक वृक्ष के पास से निकले, सबने पके-पके आम तोड लिये । पके न बचे तो पीछे के सैनिको ने कच्चे ही तोडने शुरू किये और जब कच्चे भी न रह गये तो पत्ते ही तोडने आरम्भ कर दिये । इस प्रकार उस वृक्ष में न फल शेष रहे, न पत्ते ही बचने पाये । आम का पेड केवल ठूठ के रूप में रह गया ।

राजा की सवारी वापिस लौटी और उसी जगह पडाव डाला गया । राजा की दृष्टि उस आमवृक्ष पर पडी तो उसे आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्दी इसके फल और पत्ते कहा विलुप्त हो गये ? आखिर राजा ने लोगो से पूछा तो लोगो ने बतलाया—आपने एक पका आम तोडा था । उससे हमने समझा कि इस आम में कोई विशेषता होनी चाहिए, तभी हुजूर ने तोडा है । अन्यथा आपको आमो की क्या कमी थी ? बस, श्रीमान् का अनुकरण करके सैनिको ने पके, फिर कच्चे आम तोडे और फिर पत्तो की बारी आ गई ।

राजा ने एक हरे-भरे वृक्ष को, जो फलो और सघन पत्तो से अपूर्व छटा धारण किये था और अत्यन्त श्रीसम्पन्न दृष्टिगोचर हो रहा था, श्रीहीन ठूठ के रूप में देखा । वही वृक्ष अब पथिको को भयकर दिखाई देता था । राजा उसे देख कर विचार-तरगो में वहने लगा । उसके अन्तरतल में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न और विलीन होने लगे । उसने अपने आपसे कहा—तेरी भी यही हालत होने वाली है । तू किस अभिमान में छका फिरता है ! आज तेरे पास सभी सुख-सामग्री है, किन्तु जिसकी बदौलत तेरा मान-सम्मान हो रहा है, यदि वही चला जाये तो तुझे कोई पूछने वाला नही रहेगा ।

निर्मल आकाश में हजारो और लाखो ही नही, असख्य तारे चमकते है। किन्तु जब तक चन्द्रमा नही, कुछ भी नही। चन्द्रमा के बिना रजनी शोभायमान नही होती। इसी प्रकार रात तारो भरी है अर्थात् मनुष्य को सब सुख-सामग्री प्राप्त है, किन्तु चन्द्रमा के समान यदि ज्ञान नही है, धन मिल गया है, कण मिल गया है, परिवार मिल गया है, किन्तु आत्मबोध नही है, तो समझो कि हजारो-लाखो तारे चाद के बिना शोभा नही देते। आत्मबोध के अभाव में सभी पदार्थ शोभाहीन हो जाते है।

तो मै कह रहा था कि यह अखिल विश्व शिक्षणालय है और इससे बढ कर विश्वविद्यालय कोई दूसरा नही हो सकता। यहा के प्रत्येक पदार्थ से शिक्षा प्राप्त होती है। मगर सही शिक्षा वही प्राप्त कर सकता है, जिसे आन्तरिक नयन प्राप्त है—आत्मबोध है।

सज्जनो ! जिन्होने विश्व के किसी भी पदार्थ से बोध प्राप्त करके अपने जीवन को ऊचा उठाया है, बहुत उच्च स्थिति पर पहुचाया है, वे बिनौले के साथी है। बिनौला अपने सर्वस्व को रूई को अर्पित कर देता है, अपने आवरण का भी उत्सर्ग करके नगा हो जाता है, मगर उसकी भावना यही रहती है कि भले ही मै नगा रह जाऊ, मगर मेरे द्वारा किसी विधवा का तन ढक जाना चाहिए और सर्दी-गर्मी से बच जाना चाहिए।

धन्य ! बिनौला धन्य है ! गरीबो के प्रति उसे कितनी सहानुभूति है। हे बिनौला ! तू मनुष्य का सच्चा मित्र है। मित्र कैसा होना चाहिए ?

मित्र ऐसा कीजिए, जैसे रूई कपास।
जिन्दे का तो तन ढके, मरे के जावे साथ ॥

हा, तो बिनौला स्वय नगा होकर भी दूसरो का उपकार करता है। जिनमे दूसरो की भलाई करने की गहरी भावना होती है, वे नगे और भूखे रह कर भी दूसरो को शान्ति पहुचाते हैं। उनका जीवन ही इतना मजा हुआ होता है कि दया उनका जीवन और प्राण बन जाती है। जैसे प्राणो के बिना जीवधारी जीवित नही रह सकता, उसी प्रकार परोपकारी पुरुष जब तक दूसरो की भलाई नही कर लेता, तब तक उसकी आत्मा को शान्ति नही मिलती।

एक अग्रेज़ मोटर में बैठ कर किसी सभा मे भाषण देने जा रहा था। रास्ते में उसने एक पशु को दलदल में फसा देखा। वह प्राणी बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा था। भरसक कोशिश कर रहा था। मगर बार-बार प्रयत्न करने पर भी सफल नही हो पाता था।

अग्रेज की दृष्टि उसपर पड गई। उसने फौरन मोटर रुकवाई। उसके अन्त करण में करुणा का तीव्र उद्रेक हुआ। वह जिस शानदार पोशाक में था, उसी को पहने उस दलदल मे घुस गया। उसे पोशाक उतारने में होने वाला विलम्ब भी असह्य हो उठा। जब उस पशु को कीचड़ से बाहर खीच लाया, तभी उसे चैन मिली। इस व्यापार में उसके तमाम वस्त्र कीचड से भर गये। मगर उसे इस बात की तनिक भी चिन्ता नही थी। उसे अत्यन्त प्रसन्नता थी, सन्तोष था और एक प्राणी के कष्ट को निवारण करने के कारण वह अपने को धन्य समझ रहा था।

पशु कीचड से बाहर निकल कर चलने-फिरने लगा तो वह फिर मोटर में बैठ कर रवाना हो गया और सभास्थल पर पहुचा।

उसके कीचड से लथपथ कपडे देख कर लोग हैरान रह गये। लोगो के पूछने पर उसने सारा वृत्तान्त सुनाया। लोगो ने कहा—यह कष्ट श्रीमान् ने स्वयं क्यो उठाया ? यह तो आपका नौकर भी कर सकता था।

अंग्रेज ने उत्तर दिया—निसन्देह यह काम मेरा नौकर कर सकता था, किन्तु इसे स्वय करने से मुझे जिस आनन्द की प्राप्ति हुई, वह कैसे होती ? इस परोपकार के काम मे मेरी पोशाक खराब हुई, पर मै इसे खराब होना नही, अच्छी होना मानता हूँ। इस पर लगा हुआ कीचड का छीटा इत्र और गुलाबजल का छीटा है। मैंने कीचड में परेशान होते उस पशु की दयनीय दशा देखी तो मेरे दिल में दुःख होने लगा। इसी दुःख को दूर करने के लिए मैंने यह सब किया।

सज्जनो ! जिन्हे हम आज अनार्य और अधर्मी कहते है, उनके दिल मे भी कितनी दया होती है ? इस प्रकार की दया ही जीवो का बेडा पार कर देती है। शास्त्र मे 'असुधा केवली' का निरूपण है, जिन्हे उपदेश सुने बिना ही केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। परन्तु इस प्रकार के केवली वही होते है, जिनका जीवन पूर्व जन्म में ऐसी क्रियाए करने से मज जाता है, निखर जाता है। वे यहा साधारण-सा निमित्त पाकर केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते है। उनका बेडा पार हो जाता है।

तो वह दयालु अंग्रेज कहता है—मैंने उस पशु पर कोई ऐहसान नही किया। मैंने तो अपना ही दुःख मिटाने के लिए यह किया है। उसका दुःख मिटे विना मेरा दुःख मिट नही सकता था, क्योंकि मैं उसके दुःख को अपना ही दुःख अनुभव कर रहा था। जब उसका दुःख दूर हुआ तो मेरा भी दुःख दूर हो गया।

इसे कहते हैं अनुकम्पा ! यही सच्ची दया और करुणा है, मगर आज तो कतिपय लोग इसे भी पाप में गिनने लगे हैं। आज ऐसे निर्दय लोग भी मिलेंगे कि उनके सामने कोई पानी में डूब रहा हो या आग में जल रहा हो, गाडी के नीचे कट रहा हो, तो भी वे देखते रहेगे। वे न स्वय बचायेंगे और न दूसरो को ही बचाने के लिए कहेंगे। अगर कोई दूसरा बचायेगा तो उसे पापी कहेगे।

एक निर्दयी सामायिक कर रहा है और दूसरे सामायिक करने वाले के बैठके के नीचे छिपकली आ गई है। वह देख कर भी बतलायेगा नही। छिपकली मर जायेगी तो बाद तो कहेगा—असज्झाम हो गई ! किन्तु अरे मूर्ख ! पहले ही बता देता तो तेरा क्या बिगड जाता। ऐसे लोगो ने यह सिद्धान्त बना लिया है कि—'असजती जीव का जीना नही वाछना !'

मर जाने के पश्चात् बताने से क्या लाभ है ? जब कोई मर ही गया तो फिर इंजेक्शन लगाने से क्या हो जाना है ?

हे मानव ! अगर तेरे हृदय में मानवता है तो उसकी सीधी माँग है कि तेरे दिल में दया-करुणा होनी चाहिए। यदि तू भला करने के बदले में भला करता है तो क्या विशेषता है ? प्रशसा का पात्र तो वह है जो बुरा करने वाले का भी भला ही करता है। ऐसे ही उदारचित्त जन अपनी मानवता का परिचय देते हैं। एक ने दूसरे की चीज चुरा ली और दूसरे ने पहले की चीज चुरा ली। दोनो मे क्या अन्तर रहा ? दोनो ही बराबर हो गये। तारीफ तो तब है कि बुरा तो बुराई करता जाये और तू भला करता जा। भलाई का भला और बुराई का बुरा फल मिलता है। इस विषय में जरा भी विपर्यास नही हो सकता—कोई अंधेर नही हो सकता। किसी ने गाली देने वाले को कहा है—

दवतु ददतु गालीं, गालिमन्तो भवन्तः ।
वयमपि तदभावाद्, गालिदानेऽसमर्थः ॥
जगति विदितमेतद्, दीयते विद्यमानं ।
न हि शशकविषाण, कोऽपि कस्मै ददाति ॥

किसी ने किसी को गाली दी। जिसे गाली दी गई, वह भला आदमी था, सभ्य था, सस्कारी था और समझदार था। उसने गाली देने वाले से कहा——ठीक है भाई, तुम्हारे पास गालियो का भडार भरा है, तो दिये जाओ, दिये जाओ ! तुम गाली वाले जो ठहरे ! खेद है कि मेरे पास गालियाँ नही है। मै दूँ तो कहा से दूँ। कैसे दूँ ? यह बात तो सारा ससार जानता है कि जिसके पास जो वस्तु होती है, वह वही वस्तु दे सकता है। कोई किसी से खरगोश के सीग मागने लगे तो वह कहा से दे सकेगा ? भद्र पुरुषो के पास गालिया नही होती, बुराई नही होती, वह उनसे कैसे पाई जा सकती है ?

सज्जन पुरुष सदैव दूसरो को सुख देने की ही कोशिश करता रहता है और दुर्जन दूसरे को दुखी बनाने का मसूबा किया करता है। दुर्जन को रोग ही ऐसा है !

चन्दन के वृक्ष के मूल में भयकर विषधर भुजग आकर आसन जमा लेते है और उसकी शाखाओ पर हनुमान जी की फौज अर्थात् वानरवृन्द घूमती रहती है, वह उसकी शाखाओ को तोड-मरोड देती है और नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। उस वृक्ष को दुखी करती है। सुगधित फूलो पर सौरभ-लुप्त भ्रमर चिपक जाते है और मकरन्द को चूसते है और दुःख देते है। चन्दन इतने दुष्ट व्यक्तियों के वीच रहता है, परन्तु उनकी दुष्टता से घबरा कर वह

अपनी सुगध का परित्याग नही करता । वह जड में पानी सीचने वाले को तो सुगध देता ही है, पर काटने वाले को तो और भी अधिक सुगध प्रदान करता है।

इसी प्रकार सत्पुरुष अपने विरोधी का ज्यादा से ज्यादा भला चाहते है । ऐसे ही अपार करुणा के सागर थे भगवान् महावीर स्वामी, जिन्हे मानवो ने और दानवो ने घोर कष्ट दिये, परन्तु वे शान्ति के साथ सव कुछ सहन करते रहे। वे यही सोचते थे कि लेने वाले ले रहे है और ज्यादा ले रहे है, तो वे अपने ऊपर बोझ बढा रहे है, किन्तु मुझे तो हलका ही कर रहे है। मै तो नफे में ही हूँ।

तो सगमदेव ने छ महीने तक नये-नये तरीको से अधिक से अधिक कष्ट दिये किन्तु उन्होने उफ तक नही की। वाह रे त्रिशला-नन्दन, महावीर! तभी तो तेरा नाम महावीर है।

सच है, जो भली आत्माएँ होती है, वे सदा दूसरो का भला ही चाहती है। कहा है —

> स्वयं पर वज्र भी टूटे तो हँसते ही रहेंगे पर—
> दुखी को देख रो उठते, दया के वे सदन ही है।
> जगत् को तारने वाले, जगत् में सत जन ही है॥
> उन्हे उपमा कहो क्या दें, अपने से वे अपन ही है।
> कुल्हाड़े से कोई काटे, कोई आ फूल बरसावे॥
> हँसी से दें दुआ यकसा, अजव सारे चलन ही है।

सज्जन पुरुषो की दुर्जनो के प्रति भी कितनी उदार भावना रहती है। अपने ऊपर चाहे वज्रपात ही क्यो न हो जाये, वडी से बड़ी भी विपत्ति क्यो न आ पड़े, वे इंच भर भी नही हटेंगे। वे

अपने मार्ग पर अडोल ही रहते है। मगर किसी दूसरे को दुखी देखते है तो ऐसे दुख का अनुभव करते है, मानो उन्ही पर वज्र आ टूटा हो। वे उसका सामना करते है। दुखियो का दुख उन्हें रुला देता है। दूसरो के हित के लिए वे सभी मुसीबतें सहन कर लेते हैं और सब का भला हो सोचते और करते है। वे प्रभु से क्या मांगते है —

महावीर स्वामी ! मै क्या चाहता हूँ,
फकत आपका आसरा चाहता हूँ।

और—

बताऊँ तुम्हें कि मै क्या चाहता हूँ,
मै सारे जगत का भला चाहता हूँ।

यह है भव्य आत्माओ की कहानी ! यह उनके हृदय से उठी हुई झनकार है। उन्हे चाहे कोई कुल्हाडे से काट दे या उनपर फूलो की वर्षा करे, वे दोनो को एक-सी दुआ देते है—तेरा भी भला और तेरा भी भला हो।

सज्जनो ! इन सब बातो को सुन लेना आसान है, पर आचरण में लाना बडा ही कठिन है। सिक्खो के धर्म ग्रथ में लिखा है कि—

"अवर उपदेशे आप न करे, आवत जावत जन्मे और मरे।"

जो स्वय कहता है किन्तु करता नहीं है, तो गला फाड-फाड कर चिल्लाने का मतलब क्या हुआ ? आना और जाना अर्थात् जन्मना और मरना तो हुआ, किन्तु कल्याण कुछ न हुआ।

धर्मबन्धुओ ! यह ससार रूपी समुद्र है। समुद्र में रत्न भी होते है, मोती भी होते हैं और मगरमच्छ भी होते है। समुद्र उन सभी को अपनाता है। सबको अपने अन्दर समाकर रखता है।

वह चाहे तो एक ही हिलारे में सब को बाहर फेंक सकता है, मगर ऐसा करनें वाले को फिर सागर कौन कहेगा ? भगवान् को 'सागरवरगभीरा' कहा गया है।

भद्र पुरुषो ? यहा के एक भाई ने सप्रदाय मोह में आकर मेरे नाम एक पत्र लिखा है। पत्र मैंने पढा है। वह अश्लीलता एव अशिष्टता का परिचायक है। वह पत्र लिख कर किसी भाई ने अपनी असभ्यता का परिचय दिया है, किन्तु मुझ पर उसका कोई असर नही है। मै तो भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि उस भूले-भटके भाई को भी सुबुद्धि प्राप्त हो, ताकि वह भविष्य में पुन ऐसी भूल न करे। मेरी किसी भी व्यक्ति के प्रति दुर्भावना नही है। ऐसे अवसरो को मै अपनी कसौटी का काल समझता हू। अगर मैं इतना धैर्य न रक्खू तो सयम का पालन करना ही कठिन हो जाये।

गगा मैया चढाये हुए फूलो को भी ले लेती है और डाली हुई हड्डियो को भी ग्रहण कर लेती है। साधु भी गगा के समान है। यदि कोई निन्दा की हड्डिया डालतें है तो उन्हे भी ले लेंगे और स्तुति के पुष्प चढाये जायेंगे तो भी ग्रहण कर लेंगे।

एक बाबा नगर में भिक्षा के लिए जाता था। किन्तु एक बुढिया, जो धनिक थी, कुछ देती नही थी। वह प्रतिदिन अलख जगा जाता था। साधु की भिक्षा के लिए कोई खास घर नियत नही होता। उसके लिए सभी घर खुले हुए है। तो घर-घर माग कर खाने वाला भिक्षुक है। एक दिन बाबा बुढिया के घर अलख जगाने गया। बुढिया ने उसके पात्र मे राख डाल दी। बाबा ने सोचा—ठीक है। आज राख बहराई है तो किसी न किसी दिन शक्कर भी बहरायेगी।

सज्जनो ! साधु तो हमेशा सीधी ही सोचते हैं और सबका भला ही चाहते हैं।

हां, तो सगम देवता भगवान् से बदला लेते-लेते और उन्हें दुःख देते-देते हार गया। भगवान् की विजय हो गई। इस लम्बे सघर्ष में क्षण भर के लिए भी भगवान् की सगम के प्रति दुर्भावना न हुई। तो मै भी भगवान् का उपासक हू। मै भगवान् के बतलाये मार्ग पर यथाशक्य चलू, तभी उनका सच्चा उपासक कहला सकता हू। कहा भी है :—

कथनी कथनी सहज है, करनी विष की लो।
कथनी कथे ज्यों करनी करे, तो विष भी अमृत हो॥

तो मै यही समझता हू कि यह मेरी परीक्षा है। वे मेरे साहस और धैर्य की परीक्षा ले रहे है। वह सोना ही क्या जिसे अग्नि में न तपाया जाये ? वह पुष्प ही कैसा जो भट्टी में न चढाया जाये !

तो सगम ने छ महीनो तक भगवान् को कष्ट दिये, मगर अन्त में देवशक्ति हार गई और मानवशक्ति विजयी हुई। वे कष्ट सहने वाले अपने मस्तक पर बल भी न लाये। वे जहर को भी शर्बत की तरह पी गये।

ग्रथकार कहते है कि जब सगमदेव निराश और हताश होकर, मानवीय सामर्थ्य से पराजित होकर, अपना-सा मुह लिये चला गया तो कहते हैं—भगवान् की आखो में आसू आ गये। प्रश्न उठता है—जब देवता घोर यातनाए दे रहा था, तब जिसकी आखों में आसू न आये, उस महापुरुष को देवता के चले जाने से क्यो आँसू आ गये ? यातना से छुटकारा पाने पश्चात् उसकी यह स्थिति क्यो हुई ? हर्ष के अवसर पर विषाद कैसा ?

सज्जनो ! वडी विलक्षण बात है। ज्ञानियो का मार्ग अटपटा होता है। जहा पापी हसते है। वहाँ धर्मी रोते है और जहा पापी रोते है वहा धर्मी हसते है। महात्माओ के रोने और हंसने की दुनिया ही निराली है—

या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।

साधारण प्राणियो के लिए जो अधकार है, सयमवान् पुरुष के लिए वही प्रकाश है। ज्ञानी की विचारणा को ज्ञानी ही पहचान-सकता है।

दुनिया के लोग दुख हटने पर हसते है, वहा भगवान् रोते हैं। आखिर यह क्यो ? भगवान् तो अनन्तबली है, वज्रऋषभनाराच सहनन के धनी है, चालीस हजार मन भरी गाडी भी यदि उगली के ऊपर से निकल जाये, तब भी उनका कुछ न विगडे। ऐसी असाधारण क्षमता वाले भगवान् कष्ट के समय तो घबराये नही, परन्तु अब क्यो आसू बहाने लगे ?

भगवान् कहते है—बेचारा यह देवता स्वर्ग के तमाम सुखो को छोड कर बत्तीस प्रकार के नाटक आदि छोड कर छ महीने तक मेरे पीछे पडा रहा। फिर भी मै उसका कल्याण न कर सका ! उलटा बेचारा मेरे कारण कर्मों से भारी होकर जा रहा है। बस, मुझे दुख है तो इसी बात का है !

हे महावीर ! ऐ देवाधिदेव ! भगवान्, तेरी कितनी उदार भावना है ! अपना अपकार करने वालो के प्रति भी तू कितना [illegible] है ! इस दया की कही सीमा नही है।

जब हमारे भगवान् की ऐसी भावना रही तो मैं भी उनका छोटा सेवक हू । मुझ में भी कुछ ऐसी झलक आनी चाहिए ।

तो जिस भाई ने मुझे पत्र लिखा, उससे किसी भी प्रकार का बदला लेने की भावना मेरे मन में नही है । अगर उसमें मनुष्यता है तो मेरे आशीर्वाद से उसे नसीहत मिल जानी चाहिए । आप लोगो को भी पूर्ण शान्ति रखनी चाहिए और इस घटना को विस्मृत कर देना चाहिए । जब उसे सद्‌बुद्धि आयेगी तो उसको पश्चात्ताप होगा । मेरी हार्दिक कामना है कि उसे सुबुद्धि प्राप्त हो । मैं बडा वज्रहृदय हू कि उसकी कर्मबंधरूप करतूत पर मुझे रोना न आया, मगर अफसोस तो अवश्य है कि बेचारे ने व्यर्थ ही अशुभ कर्मों का बन्ध कर लिया । क्षमा महान् तप है और उसके प्रभाव से प्राणी कृतार्थ हो जाता है । कहा है—

क्रोड वर्ष तक तप तपे, एक सहे जो गाल ।
क्षमा बरोबर तप नहीं, जो मेरे मन की झाल ।

करोड़ वर्ष तक तपस्या करने वाला कर्मों की जितनी निर्जरा करता है, क्षमाभाव से एक गाली को सहन कर लेने वाला भी उतनी निर्जरा कर लेता है । वास्तव में क्षमा के बराबर कोई दूसरा तप नही है । क्षमा से मन का सताप मिट जाता है और आत्मा में अपूर्व शीतलता प्रकट होती है ।

सज्जन पुरुष अपने विरोधी से भी कहते हैं—चिरजीव रहो । तुम्हारी आयु लम्बी हो । मैं जिन्दा रहू तब तक तुम भी जिन्दा रहो, क्योकि जीवन में मुझसे भूले होगी तो मित्र उन्हे नही बतलायेगा,

क्योंकि वह खुशामदी होगा और मुझ पर रहम करेगा ; मगर तू जिन्दा रहेगा तो फौरन बतला देगा।

इस तरह सज्जन पुरुष सीधा विचार करते है। उन्ही का कल्याण होता है। तुम भी ऐसा ही सोचो। दया और क्षमा सीखो। दुखियो के दु ख मिटाते चलो। प्रभुगुण गाते चलो। ऐसा करने से ससार-सागर से तिर जाओगे।

ब्यावर
२५-८-५६

: ८ :

भाग्य और पुरुषार्थ

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा, पूज्या उपाध्यायका ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।।

उपस्थित महानुभावो ! बहिनो ! यह एक सर्वमान्य सत्य है और प्रत्येक व्यक्ति को सुविदित है और प्रत्येक का अनुभव इस तथ्य का साक्षी है कि इस भूतल पर जितने भी प्राणी है, वे सब अपने जीवन को आनन्दमय देखना चाहते है, सुखी बनना चाहते हैं। कोई भी प्राणी ऐसा नही जो अपना हित न चाहता हो और अपने जीवन का विकास न चाहता हो ।

सज्जनो ! सभी प्राणियो की इस सबध मे एक-सी मान्यता है। यह मान्यता स्वाभाविक भी है, क्योकि आनन्द जीव का स्वभाव है और सभी प्राणी अज्ञात या ज्ञात रूप मे अपने स्वभाव की ओर ही आकृष्ट रहते है, यद्यपि उनका वह सहज आकर्षण वाह्य उपाधियो के कारण विकृत बन जाता है ।

मगर मैं आपको कहा करता हू कि चाह होना और बात है और चाहे हुए पदार्थों को जुटाना और बात है। कोई व्यक्ति भूख से पीडित हो रहा है, व्यथित हो रहा है और चाहता है कि मेरी भूख निवृत्त हो, क्षुधा से मेरा दामन छूटे, भूख का कष्ट दूर

हो अर्थात् भोजन मिल जाये। इस बात को समझने के लिए किसी से सलाह लेने की आवश्यकता नही, पोथियो के पन्ने पलटने की जरूरत नही और किसी पण्डित से पूछने की भी जरूरत नही। वह चिन्तना एव प्रेरणा अन्दर से ही जागृत होती है और उद्बोधन करती है कि भूख दूर होनी ही चाहिए। उसकी इन्द्रियो और मन की एकमात्र यही पुकार होती है कि इस भूख से हम दुखी हो रहे है। शरीर शिथिल हो रहा है, हृदय आहत हो रहा है, इन्द्रियाँ शिथिल पड रही है और प्राण डगमगा रहे है। मन में जो प्रसन्नता थी, उत्क्रान्ति थी और स्फूर्ति थी, वह मुरझाती जा रही है और सभी आत्मा को पुकार-पुकार कर यही कह रहे है कि अन्न के बिना हम सब मृतप्राय हो रहे है। अन्न के मिलने पर ही हमारी सृष्टि फूली-फली रह सकती है !

जब किसी दिन कोई उपवास करता है तो पूछने पर वह मन्द स्वर से ही कहता है कि आज उपवास किया है। मगर इधर के कई भाई और बहिन 'उपवास' को 'वास' कहते है। यह उपवास का 'वास' कैसे कर लिया ? ईंट, चूना, मसाला आदि होने पर ही वास बनता है। मगर भाषा सबधी ज्ञान न होने के कारण उच्चारण में गडबड-घोटाला हो जाता है। शुद्ध सस्कृत शब्द 'उपवास' है। उप अर्थात् समीप या नजदीक वास करना अर्थात् निवास करना उपवास कहलाता है। जिस क्रिया से, अनुष्ठान से अथवा जिस कर्म शोषक तप-क्रिया के करने से आत्मा आत्मभाव के समीप निवास करता है और अनात्मभाव से दूर होता है, वह 'उपवास' कहलाता है। उपवास में सिर्फ उपहार का ही त्याग नही किया जाता किन्तु कषायो का और इन्द्रियविषयो का भी त्याग करना आवश्यक होता है। कहा भी है—

कषायविषयाहारत्यागो यत्र विधीयते ।
उपवास. स विज्ञेय., शेषं लड्घनक विदुः ॥

अर्थात्–सच्चा उपवास वही है जिसमें कषायो का, विषयो का और आहार का त्याग किया जाता है। कषायो और विषयो का त्याग न करके यदि सिर्फ आहार का त्याग किया जाये तो वह लघन करना कहलायेगा, उपवास नही। क्योकि कषाय और विषय का त्याग किये बिना आत्मा आत्मभाव के निकट पहुच नही सकता।

हाँ, मै कहने जा रहा था कि एक दिन के लिए भोजन का त्याग कर देने से ही शरीर कुम्हला जाता है, चक्कर आने लगते है, इन्द्रिया शिथिल पड़ जाती है, प्राण छटपटाने लगते है और मन की भी द्रुतगति मन्द पड जाती है।

ज्ञानी पुरुष कहते है–जब ऐसी परिस्थिति होती है तो भूखे मनुष्य को किसी से भी पूछने या सलाह लेने की आवश्यकता नही होती कि उसे क्या करना चाहिए ? उस समय स्वभावत उसकी तीव्र इच्छा खाद्य पदार्थों की ओर ही जाती है, जिससे वह भूख के कष्ट से उबर सके और इस दु ख से छुटकारा पा सके।

यो तो शरीरधारियो के लिए ज्वर की, सिर दर्द की, उदररोग की, निमोनिया की, अतिसार की, राजयक्ष्मा की और न जाने कितने प्रकार की वेदनाए है, किन्तु शास्त्रकारो ने भूख का कष्ट महान् कष्ट बतलाया है —

खुहासमा नत्थि वेयणा ।

अर्थात् क्षुधा के समान कोई वेदना नही है। बुखार आता है तो मनुष्य पडा रहता है, किन्तु भूख न पडा रहने देती है, न खड़ा

रहने देती है। भूख मे मनुष्य खाद्य-अखाद्य कुछ नही देखता। मनुष्य जब भूख से पीडित होता है तो जानवरो को मारकर उनका कच्चा मास भी खा जाता है। भूखा मनुष्य कितने ही अनर्थ कर डालता है –

बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्।

कौन-सा पाप है जिसे भूखा नही कर पाता अर्थात् वह सभी पाप कर सकता है।

हा, तो भूख लगने पर मनुष्य को सहज ही यह भावना होती है कि इस क्षुधा से छूटकारा मिले ! किन्तु इस प्रकार की भावना या कल्पना मात्र से भूख दूर होने वाली नही। भूख मिटाने के लिए अनेक साधन जुटाने होगे। उसे आटा, पानी, अग्नि, पात्र, शाक, मसाले आदि पदार्थों की आवश्यकता की पूर्ति करनी होगी और तभी उसकी क्षुधा निवृत्त हो सकेगी। अधिक नही तो कम से कम भी चार साधन तो उसे जुटाने ही पडेगे–रसोई बनाने वाला, आटा, पानी और अग्नि। पात्र न हो तो भी चल सकता है। मगर चार में से एक की भी कमी होने पर रसोई नही बन सकती और यदि आप कहे कि रोटी, शाक, खीर और मिठाई भी चाहिए, तो इस चाह का इलाज तो केवल सतोष ही है और कोई भी चाह की बीमारी को दूर नही कर सकता।

आशय यह है कि रसोई बनाने के लिए कम से कम चार साधन अनिवार्य है। तो जैसे इनमे से किसी एक के अभाव में रसोई बन ही नही सकती, इसी तरह अगर जन्म-जन्मान्तर की बीमारी को मिटाना चाहते हो और निराबाध सुख प्राप्त करना चाहते हो तो उसके लिए भी चार चीजो की आवश्यकता है।

सज्जनो ! दुनियावी साधनो के जुटने पर अगर भूख मिट गई तो कितने वर्षों और कितने महीनो तक के लिए मिटेगी ? अजी, एक दिन के लिए भी तो नही ! सुबह भूख मिटाई और दोपहर को फिर चूहे पेट में कूदने लगे ! अब दोपहर की भूख मिटाने के लिए भी चार साधन चाहिए ! इस प्रकार यह मामूली-सी भूख भी जब चार साधनो के बिना नही मिटती तो फिर जन्म-मरण की बीमारी, जो अनादि काल से हमारे पीछे चली आ रही है, चार साधनो के बिना कैसे मिट सकती है ?

और जड साधन कितने ही क्यो न जुटा लिये जायें, कितने ही क्यो न इकट्ठे कर लिये जायें, पर उनको उपयोग में कौन लायेगा ? उस आटे को, पानी को और अग्नि को कौन यथोचित ढग से काम मे लेगा ? किसी रबड के आदमी को रसोई बनाने के लिए बैठा भी दोगे तो वह नही बना सकेगा। क्योकि रसोई बनाने की होशियारी चेतन में—मनुष्य में होती है और वह प्राणधारक होता है।

तो मोक्ष के लिए भी मनुष्य को चार साधन जुटाने पडते है। प्रथम तो मोक्ष की करनी करने वाला होना चाहिये। उसके बिना मोक्ष की प्राप्ति होना सभव नही। आखिर मोक्ष की आवश्यकता है किसको ? मोक्ष का अर्थ है—दु.ख से छूटना। दु ख चेतन को ही होते है। जैसे भूख मनुष्य को लगती है और उसीको साधन जुटाने पडते ह और जिसे भूख नही, उसे साधन जुटाने की भी आवश्यकता नही। इस प्रकार सबसे पहले मोक्ष में जाने वाले का अस्तित्व होना चाहिए। अर्थात् आत्मा का अस्तित्व

स्वीकार करना होगा। आत्मा के अभाव मे दुःख का भी सद्भाव नही और फिर मोक्ष का प्रश्न उपस्थित नही होता।

रोटी तो तुम दूसरे से भी बनवा सकते हो, ढाबे में अथवा हलवाई के यहा जाकर पूडिया भी खा सकते हो, किन्तु यह मोक्ष-साधना की जो रसोई है, दूसरे से नही बनवाई जा सकती। दूसरे उपकारी गुरु आदि तो मोक्ष साधनारूप क्रियाओ की शाक-भाजी बनाने की विधि बता देंगे और मार्ग-दर्शन कर देंगे। किन्तु यह क्रिया तो तुझे ही करनी पडेगी।

कितने ही लोग ऐसे दरिद्री, आलसी, प्रमादी और निरुद्यमी है जो केवल भाग्य के भरोसे, कर्म के भरोसे या ईश्वर के भरोसे बैठे रहते है और कहते है—अरे भाई, अपने किये क्या होता है! आखिर होगा वही 'जो राम रचि राखा।' अर्थात् जैसे ईश्वर की इच्छा होगी, वही होगा। भाई! क्या ईश्वर ने तुझे कोई परवाना लिख कर दे दिया है कि तू हाथ पर हाथ रख कर निठल्ला बैठा रह और जो ईश्वर को, भाग्य को या दैव को मजूर होगा, वही होगा। तेरे किये कुछ भी नही होगा! किन्तु जैसा जिसका कहने का स्वभाव पड जाता है, उसका छूटना कठिन है।

एक बावाजी स्वभाव से बडे ही सुकोमल थे। गाव के एक सिरे पर ही उनकी झोपडी थी, जहा से गाव का रास्ता था। यह तो आप जानते ही है कि लडकी जब ससुराल जाती है तो अपने पितृ-परिवार के वियोग के कारण रोने लगती है। उसके माता-पिता आदि परिजन भी रुदन करने लगते है। यह मोह की विडम्बना है जो प्राणी मात्र को सतप्त किये रहती है। वास्तव में मोह बडा प्रबल है।

गाव की लडकियो की विदाई की रस्म, गाव के बाहर ठीक बाबाजी की झोपडी के पास ही पूरी की जाती थी। जब बाबाजी दूसरो का रोना सुनते तो भावुकता के आवेश में आकर स्वय भी रोने लगते थे। यह उनका स्वभाव-पड गया था।

एक दिन गाव के मुखिया की लडकी ससुराल जा रही थी। जब सब लोग गाव के बाहर आ गये तो मुखिया ने कहा—देखो, जिसकी लडकी ससुराल जाती हो, उसका रोना तो ठीक भी लगता है, मगर इन बाबाजी का रोना ठीक नही लगता और अपशकुन-सा लगता है।

आखिर लडकी के पिता ने पाच रुपये बाबाजी को देकर कहा—यह लो, मगर रोओ मत।

'अच्छा, नही रोऊगा' कह कर बाबाजी झोपडी में चले गये। किन्तु ज्यो ही लडकी बिदायगी के समय जोर से रोई कि बाबाजी से नही रहा गया। वह झोपडी से बाहर निकले और बोले—यह लो अपने रुपये! मुझसे बिना रोये नही रहा जाता।

अरे तूने घर-बार छोड दिया है, फिर क्यो रोता है? परन्तु आदत से लाचार!

तो मैं कह रहा था कि जिनकी निठल्ले बैठे रहने की आदत पड जाती है और जो पुरुषार्थहीन एव निरुद्यमी होते हैं, वे काम नही करते और मानो दर्शनशास्त्र की बडी बाते बघारा करते हैं कि ईश्वर के पुरुषार्थ और विधान का कौन उल्लघन कर सकता है? विधाता के लेख में कौन मेख लगा सकता है? ऐसे लोगो को एकान्त ईश्वरवादी कहना चाहिए।

कई लोग भाग्य को ही एकान्त रूप से आगे कर देते है। वे, कहते है—

भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम्।

अर्थात्–सब जगह भाग्य ही फलदायी होता है। न विद्या से और न पुरुषार्थ करने से ही फल की प्राप्ति हो सकती है।

हजार पुरुषार्थ करो, कितना ही उद्यम करो, होगा वही जो भाग्य मे लिखा है। क्योकि :—

लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितु क· समर्थ.।

भाग्य मे लिखे को मिटाने की शक्ति किसी में नही है। ऐसा कहने वाले एकान्त भाग्यवादी है।

इनसे विपरीत कोई-कोई एकान्त पुरुषार्थवादी होते है। वे कहते है–भाग्य मनुष्य के पुरुषार्थ के सिवाय क्या है ? कुछ भी नही। ससार में जो भी सफलता मिली है, पुरुषार्थ से ही मिलती है। भाग्य, दैव या कर्म जैसी कोई चीज़ ही नही है।

इसी प्रकार कोई कालवादी होते है, कोई नियतिवादी है और यदृच्छावाद के समर्थक है। यह सभी एकान्तवादी अपने अभिप्रेत एक कारण को स्वीकार करके दूसरे कारणो का निषेध करते है। किन्तु विचारपूर्वक देखा जाये तो पता लगेगा कि वास्तव में सभी एकान्तवादी भ्रम में है। किसी भी कार्य की उत्पत्ति एक कारण से नही होती, वल्कि सामग्री से होती है जो अनेक कारणो के समवाय से वनती है।

गाडी दो पहियो से चलती है। अगर एक ही पहिये से कोई गाड़ी चलाना चाहे तो वह नही चल सकती। एक पख से पक्षी

उडना चाहे तो नही उड सकता। इसी प्रकार कर्म या पुरुषार्थ या अन्य किसी भी एक कारण से कार्य की सिद्धि होना असम्भव है। कर्म और पुरुषार्थ दोनो को साथ लेकर चलने से कार्य की सिद्धि होती है। उर्दू मे इसे तकदीर और तदबीर कहते हैं। पूर्व-सचित कर्मों का जो खजाना है, वह तकदीर है और उद्योगशील होना, परिश्रम करना तदबीर है। यह तदबीर और तकदीर रूपी दो पहिये है इस जीवन रूपी गाडी के। इन दोनो के ही सहारे यह शकट चल रहा है। मगर किसी ने तदबीर का पहिया पकड रखा है तो किसी ने तकदीर का। अब गाडी बेचारी बीच में पडी है। वह चले तो कैसे चले ? दोनो पहिये गाडी में लगेंगे तो वह चलेगी और आप उसे जितनी दूर चाहेगे, ले जा सकेंगे।

जब तक तकदीर और तदबीर एक दूसरे से पृथक् है, एक दूसरे से विमुख हो रही है और एक दूसरे से बिछुडी हुई है, तब तक कार्यसिद्धि नही होगी और नही ही होगी। दोनो के मिलने पर शीघ्र काम बन जायेगा। एक हाथ से रोटी बनाना चाहो तो कैसे बन सकती है ? इसी प्रकार कर्म और पुरुषार्थ से ही सिद्धि होती है।

आपको जानना चाहिए कि कर्म या तकदीर क्या है और पुरुषार्थ या तदबीर क्या है ? आप वर्तमान काल में जो भी शुभ या अशुभ क्रिया कर रहे हैं, वही क्रिया भविष्य में आपका कर्म बन जाती है। अर्थात् जब तक क्रिया की जा रही है, तब तक वह पुरुषार्थ है। वही क्रिया करने के पश्चात् भाग्य, कर्म या तकदीर बन जाती है। इस प्रकार तकदीर कोई आसमान से उतर कर आने वाली चीज नही है। वह तो मनुष्य के पुरुषार्थ से ही उत्पन्न

होती है; क्योंकि जहा-जहा क्रिया है, वहा-वहा कर्म है और जहा कर्म है वहा क्रिया की हलचल है। अर्थात् जहा जहा क्रिया है, हलन-चलन है, मन-वचन-काय को स्फुरणा है, वहा कर्मों का वध अवश्यभावी है, इसमें कोई सन्देह नही किया जा सकता। किन्तु जहा कर्मों की सत्ता है, वहा क्रिया हो भी सकती है और नही भी हो सकती।

सज्जनो! यह उडान ऊची है। क्रिया तेरहवें गुणस्थान तक ही होती है। चौदहवे गुणस्थान में योगो का सर्वथा अभाव होता है–पूर्ण अयोगी स्थिति प्राप्त हो जाती है, अत. वहा मानसिक, वाचिक या कायिक क्रिया भी नही होती। तेरहवे गुणस्थान तक, क्रिया होने से वध भी होता है। केवलज्ञानी की—ब्रह्मज्ञानी की क्रिया भी वध का कारण है, मगर आज कई ऐसे है जो अपने आपको ब्रह्मज्ञानी और निर्लेप मानते है और कहते है कि आत्मा कुछ करता ही नही है। वह अकर्त्ता है, अभोक्ता है, अलिप्त है। कर्म करना शरीर का और मन का धर्म है। आत्मा शुद्ध और निर्लेप है। आत्मा में पाप या पुण्य का कोई लेप नही है। ऐसे लोग मानो आत्मा को बिल्कुल धो-धाकर पवित्र करके ही वैठ गये है। उन्होंने अपना सिद्धान्त बना लिया है कि क्रिया करने की कोई आवश्यकता नही।

जो लोग आत्मा को अकर्त्ता एव शरीर, इन्द्रिय और मन को ही कर्त्ता कहते है, उनको समझना चाहिये कि शरीर रूप में तो मृतक शरीर भी पडा रहता है, उसमें हलन-चलन, गमन आदि क्रियाएँ क्यो नही होती? इससे यही जान पडता है कि क्रिया करने वाला, [illegible] का सचालन करने वाला और शरीर को वेग देने वाला

शरीर में से निकल गया है। वह सचालक और वेगदाता आत्मा है और वही कर्त्ता है।

सज्जनो ! इन्द्रिय, मन और शरीर जड है, पुद्गल है और करण है। करण का व्यापार कर्त्ता द्वारा प्रेरित होने पर ही होता है। यह भी कहा गया है कि कर्तृव्य भाव वही होगा जिसके पास में करण होगा। श्रीमद्भगवतीसूत्र में चार करण बतलाये है, जिनके द्वारा यह आत्मा—एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के सभी ससारी जीव—कुछ क्रिया कर सकते है।

भाइयो ! यह जीवन का चक्र किसके द्वारा चलता है ? इस चक्र को चलाने के चार साधन है—(१) मन करण, (२) वचन करण, (३) काय करण और (४) कर्म करण।

शास्त्र में मन भी करण माना गया है। बहुत-से प्राणी ऐसे है, जिन्हे मन नही मिला है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असज्ञी पचेद्रिय—ये अनन्त जीव है जो मन से रहित है। जब उन्हे मन ही प्राप्त नही है तो वे मन के द्वारा कर्म भी नही कर रहे है। आप भगवान् के वचनामृत का पान करते है, क्योकि आपको मन करण मिला है। वही तुम्हारे जीवन को प्रेरणा देता है, वेग देता है और आप सोचते है—आज हमें अवकाश है तो शास्त्र के श्रवण का ही लाभ प्राप्त करले। तो यह सब सोचना-विचारना और विचारो की सृष्टि मन के अधीन है। अतएव मन करण है। वह जड है, किन्तु उसको धारण करने वाला और उसका आलम्बन लेकर सोचने वाला आत्मा चेतन है।

मन करण के पश्चात् वचन करण का नम्बर आता है। जितना भी सभाषण, वार्त्तालाप आदि कार्य होता है, वह सब जिह्वा

मे ही होता है। वह काय से अथवा मन से नही हो सकता। किसी मनुष्य को वचनशक्ति प्राप्त हुई है, मन भी मिला है और वह सब शास्त्रो का धुरन्धर वेत्ता है, किन्तु किसी कारण से उसकी वाचा बेकाम हो जाये, वह गूगा हो जाये तो यद्यपि वह बडा विचारक है, उसमे सब प्रकार की योग्यता है और वह सब पहलुओ को भली-भाति समझता है, फिर भी वह अपने भावो को प्रकट नही कर सकता। गूगे ने मिठाई खाई। वह उसके स्वाद को अनुभव करता है, पर उसे व्यक्त नही कर सकता। तात्पर्य यह है कि बोलने का कार्य वचन करण से ही होता है।

भद्र पुरुषो! जिन्होने पूर्व जन्म में बहुत पुण्य किये है, उन्हे बोलने की शक्ति मिली है। इस ससार मे अनन्त ऐसे अभागे प्राणी है, जिन्हे जबान नही मिली। ऐसे जीवो में से बहुतेरो को जबान पहले मिली थी, परन्तु वे अपने पाप-कार्यों द्वारा अपने पुण्य को गवा बैठे। उन्होने पुण्य से प्राप्त अपनी वचनशक्ति का सदुपयोग नही किया, बल्कि दुरुपयोग किया। उन्होने धर्म की निन्दा की, देवो का अवर्णवाद किया, धर्म गुरुओ की निन्दा की। देव, गुरु, धर्म का गुणगान नही किया। वे मिली पूजी को बढाने के बदले घटा बैठे। जो पुत्र पूजी का सदुपयोग करता है, नया-नया व्यापार कर के विशेप द्रव्य का उपार्जन करता है, पिता उससे सन्तुष्ट हो कर दो-चार हजार रुपये और दे देता है। किन्तु जो कुपुत्र पिता से प्राप्त पूजी को सट्टे में, जुए मे, वेश्यागमन मे अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य दुर्व्यसन मे गवा देता है, उसे पिता फिर नवीन पूजी नही देता। इसी प्रकार पुण्य रूपी पिता इस आत्मा पर दयालु हुआ तो उसने आत्मा को जीभ (वचनकरण) प्रदान की। पहली बार पूजी देना समझ लीजिए। अगर आत्मा इस पूजी

को अधिक बढाता है तो आगे के लिए उसे और पूंजी मिल जायेगी। अगर उसने प्राप्त पूंजी ही गवा दी तो दुबारा उसे पूंजी नही मिल सकती। उसे फिर मागने पर भी नही मिलेगी।

तुम्हे पता होगा कि जो लडका उडाऊ हो जाता है और समझाने-बुझाने पर भी नही मानता है और जब पिता के पास उसे सही राह पर लाने का कोई उपाय नही रहता, तब लाचार होकर वह अखबारो में सूचना प्रकाशित करा देता है कि—आज से मेरे दस्तखतो के बिना, कोई मेरे लडके को रुपया-पैसा देगा तो मै उसका जिम्मेदार नही हू। तात्पर्य यह है कि जो प्राप्त साधनो का सदुपयोग करता है, उसके साधन निरन्तर बढते जाते है और जो साधनो का दुरुपयोग करता है, वह प्राप्त साधनो से भी हाथ धो बैठता है। अतएव जिन्हे वचन साधन प्राप्त है, उन्हे इसका सदुपयोग करना चाहिए।

वचन का सदुपयोग करने मे किसी का क्या विगडता है ? गुण-वानो के गुणो की प्रशसा करने से जिह्वा घिसती नही, पैसा खर्च होता नही, किसी प्रकार का कष्ट होता नही। फिर क्यो परमात्मा की स्तुति नही करते ? गुरुओ की गुणगाथा क्यो नही गाते ? मधुर वाणी का प्रयोग क्यो नही करते ? अपनी जीभ से आग क्यो उगलते हो ? काटे क्यो बिखेरते हो ? ज़हर क्यो निकालते हो ? अगर अमृत बरसाओगे तो तुम्हारा क्या लुट जायगा ? विगाड कुछ नही होगा, सुधार अवश्य होगा। कवि ने कहा है—

रे जिह्वे ? कटुके स्नेहे, मधुर किं न भाषसे।
मधुरं वद कल्याणि ! लोकोऽयं मधुरप्रिय. ॥

अरी जीभ ! भलीमानुस ! तू मीठी वाणी क्यो नही बोलती है ? तू मीठा बोल, क्योकि सारा ससार मिठास का इच्छुक है—

कटुकता किसी को प्यारी नही लगती। कटुकता से मनुष्य को अत्यन्त सताप होता है। कहा है—

न तथा रिपुर्न शस्त्रं न विश न हि दारुणो महाव्याधि ।
उद्वेजयन्ति पुरुष, यथा हि कटुकाक्षरा वाणी ॥

मनुष्य को कटुक अक्षरो वाली वाणी जितना खेद-सताप पहुचाती है, उतना न शत्रु पहुचा सकता है, न शस्त्र पहुचा सकता है, न विष से उतनी वेदना होती है और न भयकर बीमारी ही उतनी व्यथा उत्पन्न कर सकती है।

इस प्रकार जब कटुक वचन दूसरो को ऐसी घोर पीडा पहुचाते है, तो उनका प्रयोग करना वचन करण का दुरुपयोग करना है।

वचन करण के अनन्तर तीसरा काय करण है। काय के द्वारा होने वाली क्रिया काय से ही होती है। मन द्वारा रोटी का विचार करने से रोटी नही बनती। उससे तो विचार ही हो सकता है। वचन से रोटी बनाने के लिए कहा जा सकता है, पर रोटी बनाई नही जा सकती। रोटी बनाने और पकाने की क्रिया तो काय के द्वारा ही हो सकती है। इसी प्रकार धर्मचिन्तन मन से होता है, समझाने का काम वचन से होता है, परन्तु उसे अमल में लाने की क्रिया काय से होती है। अतएव काय भी करण है और वह वचन एव मन का आधार है।

चौथा कर्म करण है। कर्म एक प्रकार के पुद्गल है, जो समस्त लोकाकाश में व्याप्त है, परन्तु अतिशय सूक्ष्म होने के कारण छद्मस्थो को दृष्टिगोचर नही होते। योग और कषाय के निमित्त से जीव इन पुद्गलो को अपने साथ बद्ध करता है। बद्ध होने पर वे पुद्गल कर्म कहलाते है।

यद्यपि कर्म वर्गणाए सूक्ष्म हैं और दिखाई नहीं देती, तथापि उनका कार्य हमें दिखाई देता है। जो व्यक्ति बहुत दुखी होता है, उसके सबंध में लोग प्राय कहते हैं—वह कर्मों का फल भोग रहा है। इस प्रकार कर्म भले न दीखें, पर उनका फल दिखाई देना प्रकारान्तर से उनका ही दिखाई देना है।

तर्कशास्त्र का यह नियम है कि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। कारण होने पर ही कार्य होता है। अतएव जब कार्य दृष्टिगोचर होता हो तो कारण के अस्तित्व की कल्पना कर लेना उचित ही है। कर्मों का अस्तित्व भी उनके कार्य द्वारा स्पष्ट और निर्विवाद ही सिद्ध होता है।

हे कर्म करने वालो! दुख देने वालो! निर्बल को सताने वालो! ठीक है कि पापकर्म अल्पज्ञो को दिखाई नहीं देते, मगर जब कर्म अपना असर दिखलायेंगे तो सब कुछ दिखाई पडने लगेगा। कोई आदमी जहर छिपकर खा सकता है उसे कोई देख न सके, मगर जब उसका असर होगा और बेहोशी आयेगी, तब तो व छिपाये नहीं छिपेगी। वह प्रकट हो ही जायेगा। अरे! वह कोढ फूट-फूट कर बाहर आयेगा और दुनिया उसे देखेगी।

अरे हठाग्रही! दुराग्रही! ओ दुनिया के लोगो! तुम क्यो पाप किये जा रहे हो? ये पाप किसी के सगे नहीं है। जब भोगने पडेंगे तो याद आयेगी!

क्या माता और क्या पिता सब पल्ला झाड कर दूर हो जायेंगे। तेरे किये कर्म तुझ को ही भोगने पडेंगे।

अयोध्या में आज क्या मामला है? गली-गली और द्वार-द्वार पर मनोहर वन्दनवार क्यो बाधे जा रहे है? यह अपूर्व

सजावट किस उपलक्ष्य में हो रही है ? श्रुतिसुखद वाद्यो की ध्वनि क्यो हो रही है ? सगीताचार्य आज अपना समस्त कौशल जनता पर क्यो निछावर कर रहे है ? पूछने पर पता चला, आज रामचन्द्र का राज्याभिषेक होने वाला है। वे अवध के अधीश्वर बनने जा रहे हैं।

रामचन्द्र के पिता दशरथ आज प्रसन्न है। राज्य की कैद से उन्हे छुटकारा जो मिलने वाला है ! माताए भी प्रसन्न है, उनका लाडला राम राजा बनेगा ! नागरिक फूले नही समाते, क्योकि उनकी चिरकालीन अभिलाषा की पूर्ति हो रही है। इस प्रकार अवध के सब नर-नारी और राजपरिवार के लोग प्रसन्न है और खुशी मना रहे है।

परन्तु कर्मचन्द्रजी को यह पसद नही। वह कह रहे थ—अरे राम ! तू चाहता है कि मै सिंहासन पर आसीन होऊ, शासन-सूत्र का सचालन करू। सब राज्याधिकारो और कर्मचारी तेरे आदेशो का पालन करें, किन्तु तू है किस ख्याल में ? मै कदापि तुझे राजसिंहान पर नही बैठने दू गा। मै तुझे जगल में भटकाऊगा !

भद्र पुरुषो ! वह राम, त्रिलोकपूज्य, जो परमात्मपद को प्राप्त हुए और जिन्हे 'नमो सिद्धाण' कह कर वन्दन किया जाता है, कर्म की शक्ति के सामने कुछ न कर सके। कर्म ने उन्हे राज्य के बदले अरण्यवास दिया ! कर्म क्या-क्या करते है—

कर्मों का ढग देखो, खूटी ने हार निगला।
विक्रम के हाथ पावो, काटे है करी ख्वारी।

कर्मों से डरते रहना, इनकी है चाल न्यारी।
क्या क्या करें ये पल में, होती नहीं विचारी।

ओ कर्म बांधने वालो! कर्मों से डरो। कर्ज लेना आसान है किन्तु चुकाना कठिन है। लेते समय तो हजारों, लाखों का कर्ज लिया जा सकता है किन्तु जब चुकाने का समय आयेगा तो छठी का दूध याद आजायेगा। कर्ज चुकाने पर या तो दिवालिये घोषित किये जाओगे या कैदखाने की हवा खानी पड़ेगी। तुम समझते होओगे कि धोखा देकर मियाद खत्म कर देंगे, यहाँ की मियाद खत्म हो सकती है, परन्तु वहां की नहीं हो सकती। मालूम है, ९९ जन्म पहले बांधे कर्म गजसुकुमार को, जो तीन खंड के नाथ श्रीकृष्णजी के भाई थे, भोगने पड़े थे। उन्हें भी मस्तक पर मिट्टी की पाल बंधवानी पड़ी थी और घोर यातना भुगतनी पड़ी थी। कहा भी है—

कर्म प्रताप तुरंग नचावत, कर्म से क्षत्रपति नर होई,
कर्म सपूत कपूत कहावत, कर्म से और वडो नहिं कोई।
कर्म किये जब रावण ने, तब सोने की लंक पलक में खोई,
आप बड़ाई कहा करे मूर्ख! कर्म करे सो करे नहिं कोई॥

बड़ी-बड़ी अक्ल वाले, शक्ल वाले, बुद्धि वाले, सिद्धि वाले, ऋद्धि वाले जो थे, मगर कर्मों के आगे सभी के शस्त्र ढीले पड़ गये। सभी को उनके सामने नतमस्तक होना पड़ा।

इसलिए बार-बार चेतावनी देता हूं कि कर्मों से डरते रहो। हंस-हंस कर कर्म मत बांधो। इन्हें भोगना मुश्किल हो जायेगा। गर्भ धारण करना कठिन नहीं, परन्तु उसके फलस्वरूप होने वाली प्रसव-पीड़ा कठिन होती है। इसी प्रकार हंस-हंस कर बांधे कर्मों को रो-रो कर भोगना भी कठिन होता है।

शास्त्रो मे प्रश्न किया गया है कि जो जीव यहा से काल करके परलोक में जा रहा है, वह कितने कर्म बांध रहा है ? भगवान् ने उत्तर दिया—वह जीव आयु कर्म छोड सात कर्म बाध रहा है और आठ कर्म भोग रहा है।

वडा सूक्ष्म मामला है सज्जनो ! यह श्रद्धा से ही सबध रखने वाला विषय है। जब यह जीव मर कर परलोक के मार्ग मे या विग्रह गति मे होता है, तब उसके स्थूल शरीर, मन और वचन नही होते। तैजस और कार्मण शरीर ही होते है और अध्यवसायो की त्रिपुटी चलती है। मार्गवहन के एक, दो और उत्कृष्ट तीन समय मे भी यह जीव सात कर्म वाधता है और आठों कर्म भोगता है।

जिनके पास कर्म वाधने के विशेष अधिकरण नही, केवल सूक्ष्म कायकरण और कर्मकरण है, वे भी कर्मवन्ध से नही वच पाते। करण अपना काम किये विना नही रहते। जहा अग्नि है वही वह जलने का काम करती है। स्थानान्तर हो जाने पर भी उसका स्वभाव नही जाता। कुल्हाडा कही भी हो, काटने का काम करता है। इसी प्रकार कर्म यहा है तो यहा काम करते है, वहा है तो वहा करते है। अपना स्वभाव नही छोडते।

सज्जनो ! मै कह रहा था कि इन कर्मों का मामला वडा विचित्र है। यह मन, वचन और स्थूल शरीर के अभाव में भी जीव को सात कर्मो से वाधते रहते है। सिर्फ आयु कर्म ही वहा नही बधता, क्योकि आयु का वध जीवन मे एक वार ही होता है। जीव आयुवध पहले ही कर चुकता है, क्योकि आयु वधे विना ई जीव मरता नही और न परलोक मे जाता है। वह जो आयु

बाध चुका है, परलोक में उसे भोगना ही शेष है। मगर आयु के अतिरिक्त शेष सात कर्मों का वह निरन्तर बंध करता रहता है। बाधे हुए आयु कर्म को जीव रास्ते में भी भोगता है।

इस प्रकार जब अल्प करण वाला जीव भी कर्मों का बन्ध करता है तो समस्त करण जिसे प्राप्त है, वह कितने कर्म न बाधता होगा ? और फिर बाधे कर्म भोगने में बडी कठिनाई होती है। जिनकी दुनिया मे बडी आन और शान थी और जो ५६ करोड यादवो के अधिपति थे, उन कृष्णजी को जब कर्म के थपेडे लगे तो कुसुम्बी वन में पानी-पानी रटते-रटते प्राण त्यागने पडे और दो घूट पानी भी न पा सके। कृष्णजी का जन्म हुआ तो कोई गाने वाला नही मिला ! और मरण हुआ तो कोई रोने वाला न मिला ! हा, बीच में उनके पुण्य का उदय रहा। जब हम जैन शास्त्रो के पृष्ठ खोलते है तो मालूम होता है कि उन्होने कितना जबर्दस्त पुण्य उपार्जन किया था, जिसकी बदौलत उन्हे वासुदेव की पदवी प्राप्त हुई। यह पदवी कोई साधारण नही होती। वासुदेव मे इतना बल होता है कि वे दस लाख योद्धाओ को भी पराजित कर सकते है। तो जो तीन खड के नाथ थे और जिन्हे दस लाख योद्धाओ का बल प्राप्त था, उन्हे अन्तिम समय पानी भी न मिलना यह कर्मों की ही करामात है ! ऐसे-ऐसे पुरुषो को भी कर्म का फल भोगना पडता है तो हम जैसे साधारण जनो की तो बात ही क्या है !

आप मनुष्य को धोखा दे सकते है, उससे छिपा कर कोई काम कर सकते है, परन्तु कर्मों को धोखा नही दे सकते। कर्म सातवें पाताल में भी आपको छोड़ने वाले नही। मनुष्य जब

अभिमान में आकर सुधबुध अर्थात् शुद्ध बुद्धि खो बैठता है, तब उसे बोलने का भी भान नही रहता। जब क्रोध के आवेश में पागल हो जाता है, तब भी वह भूल जाता है कि मैं कौन हू और क्या कर रहा हू।

एक सेठ ने पहली पत्नी की मृत्यु हो जाने के पश्चात् दूसरी शादी कर ली। घर में एक लडका था, जो पहली पत्नी का था। वह लडका अपनी दूसरी माता के प्रति उपेक्षाभाव रखता था और उसे 'माता' कह कर भी नही पुकारता था, क्योंकि वह उसकी सौत का पुत्र था। अलवत्ता वह उसकी आज्ञा का पालन करता था।

कई दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये। लडके की उपेक्षावृद्धि ज्यो की त्यो बनी रही। तब एक दिन उसकी विमाता ने अपने पति से शिकायत की—यह तुम्हारा लडका मुझे कभी माता नही कहता।

सेठजी के लिए वह पत्नी ही सर्वस्व थी। वह उसकी किसी इच्छा को टाल नही सकते थे और उसे वहुत चाहते थे। अतएव अपने लडके की शिकायत सुनते ही वे आवेश में आ गये। उनका तापक्रम १०८ डिग्री तक जा पहुचा। इस प्रकार जब सेठानी ने पलीता लगा दिया तो सेठ क्रोध से कापने लगा। उसने स्त्री से कहा—'इसकी तो बात ही क्या, इसके बाप को भी कहना पडेगा।'

सेठ ने कहने को तो कह दी यह वात, मगर इसका अर्थ उस समय वह समझ न सका। मनुष्य जब आवेश में आ जाता है तो बेहोश हो जाता है। उसे यह विवेक नही रहता कि मुझे क्या

कहना चाहिए और क्या नही कहना चाहिए ? जब आवेश का ज्वार उतरता है और विवेक पुनर्जागृत होता है, तब अपने अनुचित शब्दो के लिए उसे पश्चात्ताप करना पडता है और लज्जित होना पडता है।

सेठ की यही हालत हुई। जब उसे अपने शब्दो का ध्यान आया तो शर्मिन्दा हुआ। सोचने लगा—अरे, मैने यह क्या कह दिया! लडके का बाप तो स्वय मै हू और क्या मुझे ही अपनी पत्नी को माता कहना पडेगा! किन्तु—

अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

अरे मूर्ख! पहले सोच लेता तो पीछे क्यो पछताना पडता ? अब क्या होता है पछताने से! राई के भाव तो रात को ही चले गये।

आशय यह है कि मनुष्य को विचार करना चाहिए कि जहा तक सभव हो, अधिक से अधिक कर्म बाधन से बचे।

आदीश्वर भगवान् प्रथम तीर्थंकर थे, किन्तु कर्म के प्रताप से उन्हे भी एक वर्ष तक आहार-पानी नही मिला। वे धर्म अवतार थे, भगवान् थे, सर्वोत्तम पुण्य के पात्र थे, फिर भी कर्मों ने उनका लिहाज़ नही रक्खा। अतएव दुनिया के लोगो! बचो, डरो, क्यो कर्म बाध कर दुख को आमत्रण देते हो ? ज्यो-ज्यो कर्म बाधोगे, त्यो-त्यो आत्मा भारी होती जायेगी और नीचे डूबती चली जायेगी। ऋषभदेव भगवान् को एक वर्ष तक अन्न-पानी नही मिला और भगवान् महावीर स्वामी को इन्ही कर्मों के कारण साढ़े बारह वर्ष तक कष्टपूर्ण तपस्या करनी पडी और भाति-भाति के उपसर्ग सहने पड़े।

तो मै कह रहा था कि मन, वचन और काय के द्वारा जो क्रिया होती है, वह कर्म पर आश्रित है। जब कर्म करण मिट जायेगा तो शेष तीनो करण मिट जायेगे। बिल्डिग दीवारो के सहारे खडी होती है, अतएव जब दीवारे गिर जाती है तो बिल्डिग भी खडी नही रह सकती। वह भी गिर जाती है। इसी प्रकार मन, वचन और काय करण छत रूप है और कर्म करण पाया रूप है। यह नही रहा तो वे भी मिट जायेगे।

अब यह स्पष्ट हो गया कि कर्तृत्वभाव आत्मा मे ही है। कोई और कर्त्ता-धर्त्ता नही है। आत्मा स्वय ही अपनी सृष्टि का कर्त्ता है।

जीव क्रिया करता है, अतएव वही कर्मों से बद्ध होता है। क्योकि जहा-जहा क्रिया है, वहा-वहा कर्मो का बध भी अवश्य है। क्रिया तेरहवे गुणस्थान तक ही होती है, अतएव बन्ध भी वही तक ही होता है। चौदहवे गुणस्थान मे आत्मा क्रियाहीन हो जाता है, अतएव वहा कर्मो के बन्ध से भी रहित हो जाता है। परन्तु ऐसा नियम नही कि जहा कर्मो की सत्ता है, वहा कर्मबन्ध भी अवश्य हो। छत के लिए खभो का होना आवश्यक है, पर खभो के लिए छत अनिवार्य नही है। खभे छत के बिना भी रह सकते है, परन्तु छत खभो के बिना नही रह सकती। हा, एक बात अवश्य है और वह यह कि छत के बिना खभे भी अधिक दिन नही ठहर सकते। इसी प्रकार कर्मबध के अभाव मे कर्मों की सत्ता भी चिरस्थायी नही हो सकती।

मेरी व्याख्यान समझने के लिए आत्मिक बोध आवश्यक है। वह पर्याप्त न हुआ तो गड़बड़ मे पड जाओगे और डगमगाने लगोगे।

आशय यह है कि चौदहवें गुणस्थान मे कर्म तो है, किन्तु कर्म का बन्ध नही है, क्योकि वहा क्रिया का अभाव है। जहा क्रिया होती है, वही कर्मबन्ध होता है। परन्तु जहा कर्म की सत्ता है, वहा क्रिया हो भी सकती है और नही भी हो सकती। अयोगी केवली नामक चौदहवे गुणस्थान मे चार अघातिया कर्म शेष रहते है, किन्तु क्रिया नही है और क्रिया नही है तो नवीन कर्मबन्ध भी नही है। वहा मन, वचन और काय रूप करण नही है। क्रिया मन, वचन और काय के व्यापार से होती है, परन्तु वहा इनके व्यापार का सर्वथा अभाव हो जाता है।

भद्र पुरुषो ! समय निकल जाता है, बात रह जाती है। यह सुनहरी जीवन बार-बार मिलने वाला नही है। अत इसे पाकर किसी का भला कर सको तो करो। दूसरो के भले मे ही अपना भला है। परोपकार आत्मोपकार का ही एक रूप है। फिर भी कदाचित् परोपकार करते न बन पडे तो कम से कम किसी का बुरा तो न करो। किसी का अहित न सोचो। अहितकर एव अप्रिय वचनो का प्रयोग न करो। अपने मन, वचन और काय को दूसरो के अहित में न लगाओ। दूसरो का अहित करने चलोगे तो पहले अपना ही अहित कर बैठोगे।

आज दुनिया में एक मानसिक द्वन्द्व चल रहा है। कोई समझता और कहता है कि तदबीर बडी है और इसके विरोध मे दूसरे दावा करते है कि—तदबीर नही, तकदीर बडी है। मै इस वैचारिक द्वन्द्व को साफ कर देना चाहता हू। तकदीर और तदबीर वस्तुत परस्पर विरोधी अथवा सर्वथा पृथक् दो सत्ताए ही नही है। आप वर्त्तमान काल में जो क्रिया कर रहे है, वह तदबीर है

और जो क्रिया कर चुके, वह तकदीर बन गई है। आखिर फूल से ही फल बनता है। फूल न होगा तो फल कहा से आयेगा ? अतएव दोनो एक-दूसरे के पूरक है। फूल के अभाव में फल नही होता , परन्तु यह भी याद रखना चाहिए कि फल के बिना फूल भी नही हो सकता। इसी प्रकार तकदीर के बिना तदबीर और तदबीर के बिना तकदीर नही होती।

भद्रपुरुषो ? यह ससार तकदीर और तदबीर—दोनो पर टिका है। दोनो मे से एक के भी अभाव में काम नही चलता। तकदीर से तुम्हे पदार्थ मिलते है, भोग्य और उपभोग्य पदार्थों का सयोग प्राप्त होता है और सब प्रकार की अनुकूल परिस्थिति मिलती है, परन्तु भोगने अर्थात् काम मे लाने के लिए तो तदबीर (क्रिया) करनी ही पडेगी।

इस प्रकार तकदीर और तदबीर का स्वरूप समझ कर किसी भी एकान्त की भ्रमणा मे नही पडना चाहिए और अपनी क्रियाओ मे अप्रशस्तता न आने देकर प्रशस्तता लानी चाहिए , क्योकि आज की शुभ क्रिया ही भविष्य में आपका सौभाग्य बनेगी और अशुभ क्रिया ही दुर्भाग्य के रूप में आयेगी। इस प्रकार आप अपने दैव के खिलौने नही है, परन्तु दैव आपका खिलौना है। अपने भाग्य का निर्माण करना आपके हाथ में है। आज आप चाहे तो अपने लिए भविष्य का सौभाग्य निर्मित कर सकते है और चाहे तो दुर्भाग्य की भी सृष्टि कर सकते है। आपका स्वर्ग और नरक पूरी तरह आपकी ही मुट्ठी मे है। आप अपने भाग्य के पूर्ण अधी-

आप चाहते हैं कि हमें सुख प्राप्त हो, आनन्द का उपभोग करें और दुनिया की समस्त विपदाए और व्यथाए आपसे बहुत दूर रहें। यह ठीक है। अन्य प्राणी भी ऐसा ही चाहते है । क्योकि आत्मा का स्वाभाविक गुण सुख है और उसकी ओर सहज आकर्षण होना अनिवार्य है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या अभिलाषा करने मात्र से किसी की अभिलाषा पूरी हो सकती है ? ऐसा कही देखा नही जाता। अगर इच्छा मात्र से इच्छित वस्तुए प्राप्त होने लगती तो ससार के समस्त प्राणी सुखी ही सुखी दृष्टिगोचर होते और फिर भगवान् इच्छा का परित्याग करने की बात क्यो कहते ? अतएव स्पष्ट है कि इच्छा करने मात्र से किसी कार्य की सिद्धि नही होती। कार्यसिद्धि के लिए उपाय करना पडता है।

आप जानते ही हैं कि चार साधनो के बिना भूख भी नही मिटाई जा सकती तो मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है ? मुक्ति प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम मुक्ति प्राप्त करने वाले आत्मा का अस्तित्व अगीकार करना चाहिए। यह प्रथम साधन है। फिर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र भी होने चाहिए। इस प्रकार मोक्षप्राप्ति के चार साधनो में से एक भी साधन कम होगा तो मोक्ष की प्राप्ति नही होगी।

इस प्रकार मोक्ष-मोक्ष की रट लगाने वाले तो बहुत है, परन्तु उसके स्वरूप और साधन को समझने वाले कम है। यह समझ और समझ के अनुसार अमल मनुष्य जीवन में ही हो सकता है। अतएव जिन्हे मनुष्य जीवन मिल गया है, उन्हे नये कर्म नही बाधना चाहिए। जीवन मे पहले के कर्मों का तो भुगतान ही नही हो रहा है और मनुष्य नये-नये कर्म बाधता जा रहा है। ऐसा विचार मनुष्य को

अवश्य करना चाहिए, क्योंकि विचार के बिना सब क्रियाए बेकार साबित होती है। कहा भी है —

नाम जपता सौ सुख हरे, चुप हरे दुःख हजार।
गुरु-चरण लख दुख हरे, सब दुख हरे विचार॥

सब दुखो को विनष्ट करने वाला विचार है, विवेक है और धर्म भी विवेक में ही है।

शास्त्रो ने तुम्हारे हलन-चलन, खान-पान और रहन-सहन आदि किसी भी काम पर पाबदी नही लगाई है, केवल यही कहा जाता है कि जो भी क्रिया की जाये, वह विवेकयुक्त हो—

जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए।
जय भुजतो भासतो, पावकम्म न बंधइ॥

—दशवैकालिक सूत्र ४ अ०

ओ मनुष्य! तुझे खाना होगा, चलना होगा, खडा रहना होगा और बोलना भी होगा—जीवन की सब क्रियाए करनी होगी, करनी ही पडेगी किन्तु यदि तू प्रत्येक क्रिया विवेक-सहित करेगा, यत्नपूर्वक करेगा, तो तुझे कर्म बधन नही होगा।

उपर्युक्त गाथा का भाव यह है कि जो अयत्न पूर्वक क्रियाए करने से कर्म वध होना था, वही यत्नपूर्वक करने से नही होगा।

यह मनुष्य जीवन सर्वोपरि है। इसे प्राप्त करने के लिए देवता भी तरसते है। यही जीवन तुझे आज सद्भाग्य से मिल गया है। पर स्मरण रख, निन्दा करके, चुगली करके तथा अन्य प्रकार के पाप करके आत्मा को मलीन और भारी बनाने के लिए नही है। मनुष्यजीवन पाकर अपने पापो की आलोचना करनी चाहिए, पापो का परिशोधन करना चाहिए और आत्मा को निर्मल बनाने का निरन्तर प्रयास

करना चाहिए। मकान को प्रतिदिन स्वच्छ किया जाता है, अन्यथा उसमें कूडा-कचरा जमा हो जाता है। फिर अपने घर का कचरा तो साफ किया नही, ऊपर से दूसरे के घर का कचरा भी लाकर विखेर लिया तो गदगी और अधिक बढेगी। परनिन्दा करना दूसरे के घर का कचरा अपने घर में डालना है। अतएव इस गदगी से बच कर गुणी जनो के गुणो का गान करो। जिह्वा की सफलता इसी में है।

तुम्हारे पास जो भी शक्ति है, उसके अनुसार ज्ञान, दर्शन और चरित्र की साधना करते चलो, जिससे तुम्हारा कल्याण हो और आत्मा का उत्थान हो। यह साधना मानव-जीवन में ही हो सकती है। अगर तुम दूसरे का माल लेकर साहूकार बनना चाहोगे तो यह ढोल की पोल चलने वाली नही है।

किसी ग्राम में एक ब्राह्मण रहता था। वह न लिखा-पढा था और न चुस्त-चालाक था। सीधा-सादा गऊ-स्वभाव का था। किन्तु उसकी पत्नी विदुषी थी। मगर घर में पूर्वजो द्वारा उपार्जित कुछ माल भी नही था, जिससे उनका पारिवारिक जीवन सुख-शान्ति के साथ व्यतीत हो सकता। अतएव ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा—कुछ कमाकर लाओ। न कमाओगे तो निर्वाह होना कठिन है।

ब्राह्मण वोला—मै तो कुछ जानता नही। तुम्ही कोई उपाय सुझाओ, जिससे अच्छी तरह गुजर हो सके।

पण्डितानी ने कहा—मैं उपाय वतलाती हू। कल से तुम कागज़ पेंसिल और एक आसन लेकर वाजार के चौक में वैठ जाओ।

आते-जाते से कहते रहो कि किसी को कुछ प्रश्न करना हो तो करे। प्रश्नकर्ता को दूसरे दिन उचित उत्तर मिलेगा।

अपनी पत्नी के कथनानुसार ब्राह्मण लम्बा-चौडा साइनबोर्ड लगा कर, बाजार मे मौके की जगह देख कर जम गया। लोग आते-जाते थे और पूछते कि—क्या बात है ? तब वह कहता, मैं पण्डित हू और सब के प्रश्नो का उत्तर देता हू।

यद्यपि उसमें कोई योग्यता नही थी, तथापि उसे अपनी पण्डितानी पर पूरा भरोसा था और उसी के बल पर वह बीच बाजार मे बैठ कर गूजता था। कई लोगो ने उसे अपने-अपने प्रश्न लिखवा दिये और दूसरे दिन लिखित रूप मे उन्हे सन्तोषप्रद और सही उत्तर मिल गये। इससे पडित की प्रतिष्ठा दिन दूनी और रात चौगुनी बढती गई। यहा तक कि राजा के कानो तक भी बात पहुची। राजा ने भी पण्डित को बुलवाया। वह राजदरबार में गया। राजा ने पूछा—आप हमारे प्रश्न का उत्तर देंगे ?

ब्राह्मण—अवश्य दूगा पर दूसरे दिन।

राजा—अच्छा, 'गर्वा कहा कराय' इस समस्या की पूर्त्ति करके लाओ।

ब्राह्मण—राजन् ! कल आपकी समस्या पूर्ण करके पेश कर दी जायेगी।

ब्राह्मण घर लौट आया। उसने अपनी स्त्री के सामने समस्या रख दी। स्त्री विदुषी थी ही, उसने फौरन उसकी पूर्त्ति कर दी—

वालपने माता मरे, जवानी मे धन जाये।
वृद्धपने पुत्र मरे, गर्वा कहा कराय ?॥

दूसरे दिन ब्राह्मण ने दरबार मे जाकर समस्यापूर्त्ति सामने रख दी। समस्यापूर्त्ति सुन कर राजा को सन्तोष हुआ। उसने मन्त्री से कहा—यह पण्डित बडा विद्वान् है। जिस ढग से मै चाहता था, उसी ढग से इसने समस्यापूर्त्ति की है। इसने लिखा है, जब बाल्यावस्था में माता मर जाये, जवानी मे धन चला जाये और बुढापे में बेटे की मृत्यु हो जाये, तो मनुष्य किस चीज़ पर गर्व करे ? उसके पास अभिमान करने की बात ही कौन-सी है ? अच्छा मन्त्री, इस पण्डित को सन्तोषजनक पारितोषिक दे दीजिये।

मन्त्री बोला—अभी थोडी और परीक्षा कीजिये। बाद में पारितोषिक दीजियेगा।

राजा ने यह सुनकर दूसरी समस्या और रख दी—'किस मुख घालू खीर।' इस समस्या को लेकर वह अपने घर गया। उसने पण्डितानी से कहा—इस बार तो बडी विकट-सी समस्या है। उसने कहा—चिन्ता न कीजिये। मै सब आसान कर दूगी। यह तो मामूली बात है और उसने तीन चरण पूरे कर दिये, जो इस प्रकार थे—

माता रावण जनमियो, दस मुख एक सरीर।
मात मन में चिन्तवे, किस मुख घालूं खीर॥

ब्राह्मणी बडी होशियार थी। उसने 'चट रोटी पट दाल' और 'चट मगनी पट विवाह' वाली कहावत चरितार्थ कर दिखाई। पण्डितजी दूसरे दिन फिर दरबार मे पहुचे। राजा ने सम्मान के साथ उसे अपने समीप बिठलाया और कहा—'आशा है आप मेरी दी हुई समस्या की पूर्त्ति कर लाये होगे।'

ब्राह्मण ने विधानात्मक ढंग से संकेत करते हुए कहा—जी हाँ, समस्यापूर्त्ति तैयार है।

जब ब्राह्मण ने समस्यापूर्त्ति सुनाई तो राजा का दिल बाग-बाग हो गया। उसने मंत्री से कहा—पण्डितजी कितने विद्वान् हैं! मेरे प्रश्न के उत्तर में कोई कसर नहीं रही। मैंने प्रश्न किया था—'किस मुख में खीर डाली जाये ?' इन्होंने उत्तर दिया है कि रावण के दस मुख थे। अतएव उसकी माता सोच-विचार में पड़ गई कि किस मुख में खीर डालूं। बहुत अच्छा उत्तर है। पण्डितजी को इनाम दे दिया जाये।

मंत्री ने उत्तर दिया—हुजूर जल्दी क्या है! तेल देखिये, तेल की धार देखिये। इतनी जल्दी धन मत लुटाइये। एक सेठ अपने अंधे लड़के को येन केन प्रकारेण कुछ ले-देकर विवाहने गया। भाग्योदय से रात्रि में फेरे हो गये। विवाह के बाद बारात रवाना हुई और वधू डोली में बैठ कर सासरे के लिए चलने लगी तो सेठ ने उछाल करने के लिए थैली का मुँह खोला। वह भर-भर मुट्ठिया रुपया फेंकने लगा। तब लड़की की मा ने कहा—आप जिसके लिए इतना खर्च कर रहे हो, वह ऐसी रकम नहीं है! वह फिर बोली—

साहजी ! धन खरचो लेखे लेखे,
मारी छोरी एक आँख से देखे।

तब सेठ ने उत्तर दिया—

सेठानी ! भलो विचारी बात।
म्हारो छोरो दिन देखे ना रात॥

तो मंत्री ने कहा—महाराज, जल्दी न कीजिये। एक बार परीक्षा कर लीजिये और बाद में उचित जचे तो इनाम दीजिये।

राजा ने मन्त्री की बात मान कर फिर एक समस्या रक्खी। वह थी—'बिरला देख्या कोय।'

पण्डित ने सहर्ष समस्या लेकर घर मे प्रवेश किया और अपनी पडितानी से कहा—इस बार तो बडी ही विकट समस्या पूर्त्ति के लिए दी है राजा ने।

किन्तु सज्जनो! ब्राह्मणी साक्षात् सरस्वती कन्या के समान थी। क्यो न होती? उसने किन्ही अशो में ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम किया था और विद्याभ्यास के लिए श्रम भी किया था। किन्तु आज तो जिनके ज्ञानावरणीय कर्म का उदय है और जो बछिया के फुफ्फे निरक्षर भट्टाचार्य है, जिन्हे कुछ भी ज्ञान नही है, वे भी सरस्वती के पूत होने का दावा करते है। किन्तु कर्म-सिद्धान्त के पीछे स्त्री-पुरुष का कोई भेद नही है। यह तो मैदान की गेंद है। जो चाहे उसे उठा सकता है।

हा, तो ब्राह्मणी ने समस्या की पूर्त्ति करके ब्राह्मण को दे दी। ब्राह्मण ने दरबार में जाकर वह पूर्त्ति उपस्थित कर दी। राजा ने मन्त्री को देकर कहा—पढो, क्या लिखा है? मन्त्री ने पढ कर सुनाया —

सात समुन्दर में फिरी, सब जग लीना जोय।
साधु सती और सूरमा, बिरला देख्या कोय ॥

समस्यापूर्त्ति पढते ही मन्त्री ने कहा—महाराज! आज सारी कलई खुल गई। मैंने कहा था कि जल्दी मत कीजिये, परीक्षा लेते जाइये। पानी जितना गहरा होगा, सामने आजायेगा। अब मैं दावे के साथ कह सकता हू कि यह सब पण्डिताई इन ब्राह्मण

महाशय की नही है। यह विद्वत्ता और कला किसी श्रीमतीजी की है।

सज्जनो ! अधिकाश राजा प्राय बुद्धू होते है। राज्यकार्यों का सचालन मन्त्रियो की बुद्धिमत्ता से होता है । इस राजा का भी मत्री बुद्धिमान् था, पर राजा स्वय बुद्धू था। उसने समस्यापूर्त्ति सुनी तो कह दिया—वाह ! क्या ही खूब अक्लमद ने लिखा है ! अच्छा, अब इन्हे इनाम दे दो, अधिक प्रतीक्षा मत कराओ। किन्तु जब मत्री ने समस्यापूर्त्ति के शब्दो की ओर बारीकी से ध्यान देने को कहा और कहा कि यह रचना इनकी है या इनकी पण्डितानी की है ? 'सात समुन्दर मे फिरी' यह शब्द लिखने वाला पुरुष हो सकता है या स्त्री ?

राजा ने ध्यान दिया तो वह भी मत्री की बात समझ गया कि यह रचना पुरुष की नही, स्त्री की होनी चाहिये। यह रचना अगर वास्तव में किसी स्त्री की है तो यह ब्राह्मण अपने पाण्डित्य का दावा कैसे कर सकता है ? आखिर ब्राह्मण से जब तथ्य पूछा गया तो उसने स्पष्ट कह दिया—'महाराज ! मै बिल्कुल अज्ञानी हूँ। यह सब होशियारी और पण्डिताई, जो आप देख रहे है, मेरी पत्नी की है ! मै गरीब ब्राह्मण हू और आजीविकानिर्वाह के लिए मैने यह यत्न किया है।

सज्जनो ! झूठ बहुत दिनो तक चलने वाला नही है ! आखिर जम्बुक शेर की खाल मे कब तक छिपा रह सकता है ?

'फिरी' शब्द से खुल गया, पण्डितजी का भेद।
वामा पाई इनाम है, पंडित पाया खेद ॥

केवल 'फिरी' शब्द से सारी बाजी फिर गई। मत्री ने ब्राह्मण की विद्वत्ता की परीक्षा कर ली। उसका पर्दा फाश हो गया। विद्व

होकर सचाई पर आना पडा । ब्राह्मण को लज्जित होना पडा और उसकी पण्डितानी को आदरपूर्वक दरबार में बुलाया गया और उसकी प्रशसा की गई। राजा ने कहा—अहो देवी, हम तेरी पण्डिताई देख कर बहुत प्रसन्न है और तुम्हे इनाम देते है।

राजा ने उनका दुख दूर कर दिया और ऐसी स्थिति का निर्माण कर दिया, जिससे वे सुखमय जीवनयापन कर सकें। फिर उन्हे किसी चीज की कमी न रह गई।

तो मै कहना चाहता हू कि काम तो कोई करे और मुक्ति में तुम जाना चाहो तो यह कैसे हो सकता है ? ज्ञान, दर्शन और चरित्र की आराधना किसी ने की हो और मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहे आप, यह न कभी हुआ न होगा। ऐसा होने लगे तो कृत-नाश और अकृतागम नामक दोष होगे। अर्थात् जिसने रत्नत्रय की आराधना की, वह तो अपने किये कर्म के फल से वचित रह जायेगा और जिसने कार्य नही किया, वह विना किये ही फल का भागी हो जायेगा। एक आचार्य ने बडा अच्छा कहा है—

परेण दत्त यदि भुज्यते तत:
स्वयं कृतं कर्म निरर्थक स्यात्।

अर्थात् अगर दूसरे के दिये फूल को जीव भोगने लगे तो उसके निज के कर्म निरर्थक हो जाये।

वास्तविकता यह है कि कर्म का फल उसके कर्त्ता को ही प्राप्त होता है, दूसरे को नही। अतएव अपना कल्याण चाहते हो तो स्वय कल्याणकारी प्रवृत्ति करो। दूसरो के भरोसे न रहो। तुम्हारा हित-अहित तुम्हारे ही हाथ मे है, दूसरे किसी के हाथ मे नही है। जैसे दूसरो के भोजन करने से तुम्हारी तृप्ति नही हो सकती, उसी

प्रकार दूसरो की क्रिया से मुक्ति भी नही हो सकती। ऐसा समझ कर और श्रद्धान करके जो भव्य जीव मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करेंगे, वही ससार-सागर को पार करेंगे। याद रखिये, अभिलाषा मात्र से कार्य की सिद्धि नही होगी। मुक्ति की अभिलाषा के साथ-साथ तदनुकूल उद्योग करना अनिवार्य है। उद्योगी पुरुष ही सिद्धि प्राप्त करते है।

ब्यावर
२६-८-५६

: ९ :

सम्यक्त्व ही दिल है

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता', सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा' पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका,
पञ्चैते परमेष्ठिन प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।।

'उपस्थित महानुभावो !

मनुष्य का शरीर कितना ही लम्बा-चौडा क्यो न हो, कितना ही हृष्टपुष्ट, शक्तिशाली और दैत्याकार क्यो न हो, शरीर मे यदि दिल नही है तो सब व्यर्थ है ! हृदय-विहीन स्थूल काया मिट्टी का पुतला मात्र होगी जो किसी प्रदर्शिनी में रखने योग्य हो सकता है, परन्तु कार्यक्षम नही हो सकता। हम प्रत्यक्ष देख सकते है कि जिसके मस्तक, भुजाएँ, सीना, जाघें, पीठ, पैर आदि अग भीमकाय है और जिसके उस महान् शरीर में बडा सामर्थ्य, बल और शक्ति सागर की तरह हिलोरे ले रही है, उस रावण के से शरीर मे भी यदि दिल न हुआ, तो उसका कोई मूल्य नही है ! अरे, उस शरीर की क्या कीमत है और क्या वुकत है ?

स्मरण रखना चाहिए कि समस्त इन्द्रिया, अग-प्रत्यग है और जितने अवयव है, वे सब के सब तब तक ही काम करते है, जब तक शरीर के साथ दिल का घनिष्ठ सबध है। इस शरीर का सारा कठपुतली वाला नाच-कूद केवल दिल के बल पर ही हो रहा है। शरीर की समस्त चेष्टाए और क्रियाए दिल के

सद्भाव मे ही हो रही है और यह दिल ही है उन तमाम क्रियाओ का सूत्रधार । दिल की गति मद हो जाती है, उसकी हरकत मे कमी आ जाती है तो शरीर के समस्त अग-प्रत्यगो की शक्ति भी कम हो जाती है और यदि दुर्भाग्य से दिल की गति विल्कुल वद हो जाती है, तो समस्त शारीरिक क्रियाए भी समाप्त हो जाती है । हाथी की सूड की भाति लटकती हुई लम्बी-लम्बी भुजाए, लम्बा-चौडा ललाट, फूला हुआ सीना और दूसरे अग-उपाग सब के सब निष्क्रिय हो जाते है ।

मस्तिष्क मे चिन्तन करने की क्रिया थी, विचारने की शक्ति थी, वह बड़ी-वडी विकट समस्याओ को आसानी से सुलझा लेता था, सदियो से उलझी हुई गुत्थियो को सुलझा देना चुटकियो का खेल था, पर आज वही मस्तिष्क हृदयस्पन्दन के अभाव में वेकार हो गया है । जिन भुजाओ से वह वडे-वडे प्रतिपक्षियो को परास्त कर देता था, समरभूमि में जिसकी अनोखी धाक थी, जिन आखो से दूर के और वारीक से वारीक पदार्थों को देख लेता था, जिसकी ओर कोपदृष्टि से देख लेता तो उसके होशहवास गायब हो जाते थे, आज हृदय के अभाव में सब क्रियाहीन पडे है । इसी प्रकार शरीर के अन्यान्य अगोपाग भी दिल की गतिशून्यता के कारण क्रियाशून्य हो जाते है । जो कान मद ध्वनि को भी सुन लिया करते थे, आज उनमे वह शक्ति नही रही । वही रसना आज मौजूद है जो नाना प्रकार के रसो का आस्वादन करने के लिए लार टपकाया करती थी और सहज ही रसो का आस्वादन कर लिया करती थी और वतलाती थी कि यह मीठा है, यह खट्टा है, यह तीखा है आदि, किन्तु आज उसमे रसास्वादन करने की

शक्ति नही रह गई और जो स्पर्शनेन्द्रिय आठो ही स्पर्शो का बखूबी पता लगा लेती थी और जानती थी कि यह हल्का और यह भारी है, पर आज दिल के अभाव मे उसकी भी शक्ति समाप्त हो गई है।

तात्पर्य यह है कि तमाम इन्द्रिया, शरीर के सब अग और प्रत्यग तब तक ही जीवनोपयोगी कार्य करते है, जब तक दिल की धडकन शरीर में मौजूद है। जब तक शरीर के भीतर की घडी टक्-टक् और धक्-धक् करती रहती है, तभी तक आपको अनवरुद्ध गति से सारा टाइमटेबिल मिलता रहता है। घडी में यद्यपि सभी पुर्जे—फनर, सुई, शीशा आदि—मौजूद है, परन्तु यदि उसकी टक्-टक् बद हो जाती है, तो घडी बेकार हो जाती है। उसे रखने का उद्देश्य पूरा नही होता। इसी प्रकार जब तक शरीर में धक्-धक् की गतिशीलता है, तब तक शरीर सबधी तमाम क्रियाए होती रहती है। मगर हृदय की गति अवरुद्ध हो जाने पर समस्त शारीरिक क्रियाए भी अवरुद्ध हो जाती है।

उसके पश्चात् मानवदेह मिट्टी के पुतले के रूप में परिणत हो जाता है और फिर चार आदमी उस मुर्दे को श्मशान में ले जा कर जला या गाड देते है। देखो जिसके लिए सब को नाज़ था और जिसके लिए अपने प्राण भी—सर्वस्व भी—निछावर करने को तैयार रहते थे, उसी शरीर को आज भस्म कर देने के लिए सब प्रेमी चिता बना रहे है! इतना महान् परिवर्तन क्यो हो गया? यह दर्दनाक प्रसग क्यो उपस्थित हुआ? कारण यही कि उसमे दिल की धड़कन न रही। दिल चल रहा है तो दुनिया चल रही है और दिल की चाल बद है तो दुनिया में प्रलय है!

किन्तु जो उदित होता है, वह अस्त भी होता है और जो बनता है, वह बिगडता भी है। जिसका जन्म है, उसका मरण भी अवश्यभावी है। निश्चित रूप से प्रकृति का यह अटल नियम चलता ही रहता है। तो इतने बडे डीलडौल वाला शरीर भी छोटी-सी चीज़ पर निर्भर है, क्योकि दिल ज्यादा जगह नही रोकता है। बडी-बडी मशीने होती है दैत्याकार ! मगर एक छोटे से पुर्जे मे खराबी आ जाने पर सारी मशीन ठप हो जाती है। एक बार मैंने अखबार मे पढा था—मोटे शीर्षक मे छपा था—चूहे ने रेल रोक दी ! इस आकर्षक शीर्षक को जब चिल्ला-चिल्ला कर पत्र-विक्रेता लोगो को सुनाते, तो उनके दिल भी अखबार खरीदने को हो जाते थे और इस प्रकार बात बनाने की कीमत वसूल हो गई और अखबार की हजारो प्रतिया बिक गईं। किन्तु जब समाचार पढा तो लिखा था कि एक चूहा पुर्जे मे फस गया, अतएव इजिन की गति अवरुद्ध हो गई और इस प्रकार रेल रुक गई। लोगो ने पढ कर जरूर शाबाशी दी होगी कि—वाह रे रुस्तम पहलवान ! तूने सारी दुनिया को अपनी पहलवानी का कमाल दिखा दिया !

सज्जनो ! दुनिया मे आश्चर्य में डाल देने, उल्लू बना देने, लडा देने, हसा या रुला देने आदि की शक्ति इन्सान के दिमाग मे है। वह चाहे तो बनी को बिगाड दे और चाहे तो बिगडी को सुधार दे। मोल बात करने की कला का है। बात करने की कला नही है तो बादाम पडे रह जाते है और मूगडे—चने—बिक जाते है। इसी प्रकार जब तक कोई बोलता नही है, तब तक उसकी शरीराकृति और वेष-भूषा का रोब सब पर गालिब रहता है, किन्तु ज्यो ही जीभ से बोल निकले कि सारी कलई खुल जाती है।

सज्जनो ! वह बोलना किस काम का जिससे दूसरो को और स्वय को भी लाभ न हो ? ऐसे बोलने की अपेक्षा तो मौन रखना ही अच्छा है कि जिससे अपनी हसी हो और दूसरे को हानि पहुचे।

इजिन हज़ारो छोटे-छोटे पुर्जों के समूह से बना होता है। उनमे से किसी एक छोटे-से पुर्जे में रुकावट या गडबड हो जाने से सारी मशीन में रुकावट आ जाती है। इसी प्रकार हमारे शरीर मे कितनी ही नसो का जाल फैला हुआ है। सब नसें प्रस्पर में सबद्ध है। मगर उन सब पुर्जों मे जो महान् पुर्जा है, वह दिल है जो सभी पुर्जों को हरकत देता है। उसकी गति रुक जाती है तो सम्पूर्ण शरीर निष्प्राण और निश्चेष्ट हो जाता है। लम्बा-चौडा बायलर कोयले के अभाव मे ठडा पड जाता है।

तो ज्ञानी पुरुष कहते है कि मनुष्य जो दौडता है, भागता है, अपनी शारीरिक या मानसिक शक्ति द्वारा, बात की बात में, कठिन से कठिन कार्य कर डालता है, उस सब का अगर कोई आधार है तो वह दिल है। दिल की गति रुक जाने पर मनुष्य स्कीमें सोचता-सोचता ही बाज़ार में, घर में या मुसाफिरखाने में लुढक जाता है।

भद्र पुरुषो ! ठीक यही सूत्र धर्म के विषय मे भी लागू होता है। चाहे किसी धर्म के ठेकेदार, भक्त या अनुयायी अपने धर्म को उच्च कोटि का सर्वोपरि मनवाने का दुस्साहस क्यो न करते हो, उसका विधि-विधान एव अनुष्ठान कितना ही कठोर से कठोर क्यो न हो और उन कठोर क्रियाओ को करने वाले कितनी ही विशाल सख्या मे क्यो न मौजूद हो और उसका तत्वज्ञान चाहे कितनी ही सुदृढ भूमिका पर क्यो न टिका हो, किन्तु जब तक

उसमें सम्यग्दर्शन रूपी दिल की धडकन नही है, टिक्-टिक् नहो है, तब तक कुछ भी नही है ! धर्म के जो नियम और उप-नियम आदि है, उन्हे शरीर के अग-उपागो और अवयवो के स्थान पर समझना चाहिए। और वे भी महत्त्व के है, क्योकि अपने-अपने स्थान पर सभी की उपयोगिता है। सभी अपनी-अपनी जगह काम करते है। फिर भी इसमे सन्देह नही कि सर्वोपरि महत्त्व जैसे शरीर में दिल का है, उसी प्रकार धर्म में सम्यग्दर्शन का है।

धर्म में प्रभुस्मरण, दान, पुण्य, जप, तप, अनुष्ठान आदि-आदि धर्म-शरीर के अग-उपाग है और सभी का अपना-अपना अनूठा उपयोग है। इनमे से कोई भी अग निष्प्रयोजन नही है, मगर उनकी उपयोगिता का मूल्य तभो है, जब उनमें सम्यग्दर्शन रूपी दिल है। धर्म रूपी पुरुष का सम्यग्दर्शन हृदय है। यदि यह दिल फेल हो जाता है और आत्मा की सम्यग्दर्शन रूपी गति रुक जाती है तो समझ लीजिए कि धर्म का वह सारा अनुष्ठान गतिहीन हो जाता है और उस धर्म का वही मूल्य रह जाता है जो हृदयविहीन शरीर का।

शास्त्रीय दृष्टि से, बौद्धिक दृष्टि से और क्रियाशीलता की दृष्टि से वही शरीर, शरीर माना जाता है, जिसमे हृदय हो। हृदय के अभाव मे वह मिट्टी का ढेर है। स्थूल लौकिक दृष्टि से उसे भले शरीर कह लिया जाये, किन्तु शरीर सबधी अर्थक्रिया के अभाव में निश्चयदृष्टि से—लोकोत्तर दृष्टिकोण से—वह शरीर नही है। लौकिक दृष्टि वाले दुनियादार उसको शरीर कहें तो भले कहे, किन्तु शरीर तब तक ही शरीर था जब तक वह क्रियाशील था। ——जसमें शरीर सबधी क्रिया न रही तब वास्तविक दृष्टि से वह

शरीर ही नही रहा। वह मिट्टी का ढेला है, बल्कि मिट्टी से भी निकृष्ट और निकम्मा है। मिट्टी से हाथ और बरतन तो माज लिये जाते है और शुचि की जाती है, परन्तु मुर्दा शरीर के स्पर्श से तो शुचि पदार्थ भी अशुचि हो जाते है, ऐसा माना जाता है। उसे इतना अपवित्र मानते है कि उसके पास फटकने मात्र ही से आपको स्नान करना पड़ता है। जरा विचार तो कीजिये कि थोडी देर पहले इस शरीर की क्या रचना थी और अब क्या हो गई है ? आखिर उसमें क्या परिवर्तन आ गया है ? हृदय का स्पन्दन ही तो बद हो गया है न ? उसी ने शरीर को किस स्थिति से किस स्थिति पर पहुचा दिया !

यह शरीर रूपी बिल्डिग दिल रूपी स्तभ के आधार पर है तो वह सैंकडो, हज़ारो या लाखो वर्षों तक ही नही, वरन् तैंतीस सागरोपम तक उसी हृदय-स्तभ पर टिकी रहती है। जिस शरीर का रूप स्वर्गीय-दिव्य शरीर का प्रतिरूप जान पडता था, जिस देह की कान्ति को लोग आँखे फाड-फाड कर देखा करते थे और देखने के लिए उत्कठित बने रहते थे और नेत्र जिस की ओर बलात् आकर्षित होते थे, उसी शरीर को अब कोई देखना भी पसद नही करता और देख-देख कर कहते है—इसे जल्दी जलाओ। कही-कही तो मुर्दे को रात में भी घर मे नही रहने देते, रात्रि को ही जला आते है। आखिर दुनिया स्वार्थी है न ! वह सोचती है कही दिन को ले जायेंगे तो व्यापार-धन्धा करने में बाधा पडेगी !

समझो, दुनिया के लोगो ! समझो। एक छोटी-सी किन्तु अनमोल चीज़ निकल जाने से सारी सृष्टि ही बदल गई।

तो मैं कहने जा रहा था कि यह शरीर लम्बे काल तक भी विकसित और हरा-भरा रह सकता है, किन्तु तभी तक, जब तक कि उसमें टक्-टक् और धक्-धक् की हरकत है, हृदय का स्पन्दन है। उसके अभाव में आत्मीय जन ही शरीर को नही रहने देते। या तो अग्नि की भेंट कर देते है या पृथ्वी की गोद में सुला देते है। अभिप्राय यह है कि शरीर में जो स्थान हृदय का है, धर्म में वही स्थान सम्यग्दर्शन का है।

सम्यग्दृष्टि के सामने सारी सृष्टि सत्य स्वरूप में प्रतिभासित होने लगती है। चाहे किसी भी प्रकार का सिद्धान्त हो, निशीथ हो या भगवती हो, वेद हो या पुराण हो, कुरान हो अथवा बाइबिल हो, किसी भी सम्प्रदाय का या धर्म का ग्रन्थ हो, सम्यग्दृष्टि के लिए वह सत्य रूप में ही परिणत हो जाता है। यहा यह बात नही कि हमारी छाछ भी मीठी और दूसरे का दूध भी मीठा नही।

जिस धर्म में से श्रद्धा रूपी हृदय निकल गया, वही धर्म धर्म न रह कर धर्म की लाश रह गई समझो। जैसे मुर्दा शरीर मिट्टी का ढेर है, उसी प्रकार सम्यक्त्व हीन धर्म धर्म की लाश है। यदि उस मुर्दे से काम हो तो श्रद्धाहीन धर्म से भी कल्याण हो। इसी कारण सम्यग्दर्शन को महान् या उच्च स्थान दिया गया है। सम्यग्दर्शन ही समस्त क्रियाओ में जान डालने वाला है, उनका सचालन करने वाला है। जिसमें सम्यग्दर्शन है, उसी का तप सम्यक्तप है। उसी की क्रिया में बल है, शक्ति है, प्राण है, जान है, आन है, शान है और आत्मा का उत्थान है और उन्ही क्रियाओ से अन्तत निर्वाण है।

जिन क्रियाओ मे से सम्यग्दर्शन रूपी दिल निकल जाता है, सभी क्रियाए निष्प्राण हो जाती है। सम्यक्त्व के अभाव मे अनन्त

तक की हुई क्रियाएं भी निष्फल हैं, उनसे आत्मा का कल्याण नही हो सकता।

भगवान् महावीर ने कहा है कि तू संसार की तरफ न देखकर अपनी तरफ देख। दुनिया तो इधर-उधर चारों ओर घूम रही है, कोई किसी के साथ और कोई किसी के साथ। किन्तु तुझे तो अपने रास्ते पर चलना है। यह कोई सिद्धान्त या समझदारी की बात नही कि यह वहा जा रहा है तो मै भी जाऊ। तू भी चलेगा और वह भी चलेगा, किन्तु रास्ते तो दोनो के भिन्न-भिन्न है। फिर उसके रास्ते पर चलने से क्या काम चलेगा? जिनको नीची गति मे जाना है, उनके लिए मिथ्यात्व का रास्ता है और तुझे ऊची गति में जाना है तो तू समकित के रास्ते पर चल। कोई कुए मे पडना चाहेगा तो क्या तू भी कुए मे ही पडेगा? अरे हो सके तो उसको भी बचा, नही तो स्वय तो मत पड।

सम्यग्दर्शन रूपी प्राण फूकने वाले सद्गुरु होते है। वे सच्चे पथप्रदर्शक है। किन्तु पथप्रदर्शक होने का अधिकार उन्ही को है जो स्वय सत्पथ पर चलते हो। शास्त्रकारो ने बतलाया है कि गुरु स्वय धर्म के आराधक हो, निस्पृह हो, आत्मकल्याण के इच्छुक हो, धर्म के उपदेशक हो, धर्म की प्रभावना करने वाले हो, जिन-वचनो पर श्रद्धा रखने वाले हो, और जो ऐसे उपदेशक मिल जायें तो वे नर से नारायण, भक्त से भगवान्, उपासक से उपास्य बना देते है। ड्राइवर चाहे तो सवारियो को निर्दिष्ट स्थान पर भी पहुचा सकता है और चाहे तो सब को रास्ते में ही खत्म भी कर सकता है।

तो वक्ता भी ड्राइवर के समान होता है। वह कल्याणपथ के यात्रियो को यथा स्थान—उनके अभीष्ट लक्ष्य तक पहुचा सकता

है, मगर शर्त यही है कि उसका जीवन मजा हुआ होना चाहिए। उसके जीवन में ऐसी कोई चीज़ नही होनी चाहिए कि दुनिया उसकी तरफ उगली उठा सके।

व्याख्यानदाता की विशेषताओ में से एक विशेपता यह भी होनी चाहिए कि उसका जीवन आदर्श हो। शीशा साफ होता है तो उसमे चेहरा अच्छी तरह प्रदर्शित होता है। अगर शीशा गदा और स्याही से भरा हुआ है तो उसमें चेहरा साफ नही दिखाई देता। इसके अतिरिक्त वक्ता कुलीन होना चाहिए। उसके वचन और व्यवहार में खानदानीपन हो। वह कुलहीन नही होना चाहिए। यहा मुझे कुलीनता के प्रश्न का स्पष्टीकरण करना पडेगा, क्योकि सभी अपने को कुलवान् समझते है और कोई अपने को कुलहीन नही समझता।

सभी वहिने अपने को पद्मिनी समझती है, उससे कम कोई नही समझती। एक बार भगी और चमार की स्त्री में लडाई हो गई। होते-होते मामला वढ गया। लडाई का वढना ही क्या है? छाछ और लडाई वढते देर नही लगती। एक लोटा पानी डाला कि छाछ वढ गई और एक गाली दी कि लडाई वढ गई। पर लडाई के वढने मे मजा नही है।

वहिनें जव लडती है तो मर्दों की तरह हाथापाई तो क्वचित् ही करती है, परन्तु 'तेरा पति मर जाये, तू राड हो जाये, तू निपूती रह जाये, आदि-आदि कटुक वचनो के वाण वहुत चलाती है। मगर उन्हे पता नही कि इस प्रकार की गालिया देने से सौ जन्मो तक रडापे का और निपूतेपन का दुःख भोगना पडता है। लडती है दो स्त्रिया, मगर मारती है एक दूसरे के पति को और पुत्र को!

बेचारे पति और पुत्र ने उनका क्या बिगाडा है ? और फिर किसी के कहने से कोई मरता-जीता नही है, जो मरेगा अपनी आयु पूरी होने से मरेगा ! मगर याद रखना, जो क्रोध में कहती है कि तेरा पूत मर जाये और इस प्रकार सन्तप्त हृदय से सन्तप्त वाणी निकालती है, मुह से आग बरसाती है और तीव्र सक्लेश से अपनी भावना को कलुषित करती है, दूसरो का घोर अहित सोचती है, उन्हे सौ जन्मो तक सन्तान की प्राप्ति नही होती । आज आप देखते ही है कि उनके घरो में डाक्टर बुलाये जाते है, नाना प्रकार की दवाओ का सेवन किया जाता है, फिर भी सन्तान उत्पन्न नही होती ! यह सब पूर्वजन्म के किसी ऐसे ही कर्म का कुफल समझना चाहिए ।

वहिनो ! इस प्रकार की मर्मभेदी गालिया देने वाली दूसरों के पुत्रो को देख-देख कर दुखी होगी, अपने को कोसेगी और धिक्कारेगी कि इसके तो चार-चार पुत्र है और मेरे एक भी नही है ! अरी पगली ! तेरे हो तो कैसे हो ! तूने तो दूसरे के निर्दोष और निरपराध पुत्र को भी मारना चाहा था ?

ये वहिनें तपस्या तो खूब करती है, किन्तु जब समरभूमि मे उतरती है तो ऐसे परमाणुवम छोडती है कि सैकडो कोसो तक उसकी विषैली हवा फैलती है ! वहिनो ! कदापि भूल-चूक मे भी ऐसे कठोर शब्दो का प्रयोग न करना, क्योकि अपना वचन ही अपना मित्र और शत्रु है ।

वचन वचन तो सब कहे, वचन के हाथ न पाव
एक वचन कारी करे, एक जो घाले घाव ॥

वचन तो सभी बोलते हैं, परन्तु एक वचन घाव को भर देता है और एक वचन भरे हुए घाव को भी खोल देता है। शब्द राम ने भी कहे थे और रावण ने भी कहे थे। रावण ने विभीषण से कहा था—

लगे राम तोहि जो प्यारा ।
क्यो नहि सरण उसी का धारा ॥

जब विभीषण ने रावण के सामने राम की प्रशसा की और कहा कि सीता को लाकर तुमने बडी भूल की है ! तुम रक्षक हो कर भक्षक हो गये ? राजा भी अगर बहिन-बेटियो की आबरू लूटने लगे तो फिर रक्षा ही कौन करेगा ? मगर जो होना था सो हो गया। अब सीता को वापिस लौटा दो। वह महासती है और उसे प्रण से डिगाने वाला ससार में कोई नही है। सीता सती प्राणो का उत्सर्ग कर देगी, परन्तु प्रण का परित्याग न करेगी।

मगर वहा विभीषण की सुनने वाला कौन था ? जो विषयो का लोलुप बन गया था और जिसकी बुद्धि धर्मभ्रष्ट हो चुकी थी, अपने शुभचिन्तक भाई से कहने लगा—अरे चाण्डाल ! गद्दार ! विश्वासघातक ! तू मेरा भाई नही, शत्रु है !

सज्जनो ! जैनरामायण आपने सुनी होगी। उसमें उल्लेख आता है कि रावण के मरने की घोषणा पहले ही हो चुकी थी, फिर भी विभीषण ने उसे बचाने के बडे-बडे उपाय किये, युक्तिया सोची मगर रावण ने कह दिया—तू कुलहीन है, कुलकलक है, जो मेरे सामने दुश्मन की तारीफ कर रहा है।

सज्जनो ! राम ने कौन सा ऐसा कार्य किया था, जिससे वह उन्हें अपना शत्रु समझता था ! राम ने उसे कोई कष्ट नहीं

पहुचाया था । उसकी कोई प्रिय वस्तु नही हरण कर ली थी। अपराध तो स्वयं रावण का था। उसी ने सीता का हरण करके राम को कष्ट दिया था। मगर वह दूसरो पर दोषारोपण कर रहा है ! राम को अपना शत्रु बतलाता है ! मानो राम ने न मालूम उसका क्या नुकसान कर दिया है। ससार मे ऐसी ही विप-रीत प्रवृत्तियां होती रहती है । अपराधी अपने को निरपराध घोषित करता है और निरपराध को अपराधी बतलाता है।

फिर भी विभीषण ने कहा—बन्धु, मेरा परामर्श तो यही है कि आप सीता को वापिस कर दीजिये। राम बडे दयालु है, उदार है, शान्तिप्रिय है। वे बात आगे नहीं बढायेंगे। और यदि मेरी बात नहीं मानते हो तो सीता को जलती हुई मशाल समझो ! वह सबको जला कर भस्म कर देगी। वंश मे कोई नामलेवा भी शेष नही रहेगा।

सज्जनो ! आज राम के वश के तो हजारो मिल जायेंगे, परन्तु रावण के वश का खोजने पर भी कोई नही मिलेगा। हाँ, यह सच है कि रावण जैसे कुमतिशील ससार में प्रचुर मात्रा मे मौजूद है। उनकी कही भी कमी नही है।

अभिप्राय यह है कि विभीषण ने रावण के हित के लिए अनेक बातें कही, परन्तु रावण ने तो यही कहा कि—तू मुख से मेरा हित प्रकट करता है, परन्तु भीतर से राम से मिल गया है। तू बन्धुद्रोही है। जब विभीषण नम्रता के साथ फिर उसे समझाने लगा तो उसने कहा —

बस-बस जबान अपनी को बंद कीजिए।
इस मामले में दखल तो हर्गिज न दीजिए ॥

रावण ललकार कर कहता है—कुलकलक ! अब तक बोला सो बोला, किन्तु अब जो बोला तो जीभ कटवा दूंगा।

सज्जनो ! विभीषण को रावण कुलद्रोही बतला रहा है। सच है पीलिया के रोगी को प्रत्येक वस्तु पीली ही पीली नज़र आती है ! यह कोई सुनी हुई बात नही, बल्कि अनुभव की हुई बात है। मुझे स्वय को पीलिया हो गया था और सब चीज़ें पीली ही पीली दिखाई देती थी। इतना ही नही, पीलिया वाले को मल, मूत्र और पसीना भी पीला ही निकलता है। तो विभीषण ने तो रावण की भलाई की ही बात कही थी। वह सत्योपासक था और नीति के पथ पर चलने वाला था। जब वह रावण की ओर से सर्वथा निराश हो गया तो सोचने लगा—गजब हो गया ! मैंने इसके लिए क्या-क्या योजनाए बनाई थी, किन्तु इसने सबको मिट्टी में मिला दिया। ऐसे आदमी के पास रहने से धर्म की रक्षा नहीं हो सकती, बल्कि प्राणो की भी रक्षा नही होगी। अतएव मुझे इससे पृथक् हो जाना चाहिए। कहा है —

जहाँ आदर भाव विवेक नहीं,
उस ठौर को त्याग सदा बसना।
जिससे अपना दिल नहि मिले,
उससे फिर बात कहा कसना ॥
बाल से रार बड़ो से विरोध,
कुलच्छिनी नार से न हंसना ॥
परसराम कहे तू सुन हो चतुर नर,
इतनी बातो से दूर सदा बसना ॥

जहा अगूरो को लताए काट-काट कर उनके स्थान पर आक और धतूरे लगाये जाते हो और मयूर और हसो को मार-मार कर काक बसाये जाते हो, ऐसी जगह रहने में भलाई नही है। जहा प्यार नही, आदर नही, सब धान बाईस पसेरी तुलते हो और जहा अपने विचार मेल न खाते हो, वहा मौन रहना ही श्रेयस्कर है ! ऐसी जगह को और वहा रहने वालो को दूर से ही सलाम है ! एक ग्रथ में लिखा है–'हे मूर्खाधिराज देवता ! तुझको सौ बार, सहस्र बार और लक्ष बार नमस्कार है !' प्रश्न होता है कि नमस्कार मूर्ख को क्यो किया ? नमस्कार तो ब्रह्मचारी को, साधु को किया जाता है। किन्तु भाई, मैं तो मूर्ख को ही प्रणाम करूँगा। साधु और पण्डित को नमस्कार करूँ या न भी करूँ। इन्हे नमस्कार न किया तो कोई हानि नही। उन्हे तो शास्त्र के प्रमाण से भी मना सकता हू। मगर मूर्ख के लिए कोई शास्त्र, ग्रथ या उपदेश काम नही देता। अतएव उसे मनाने का साधन तो नमस्कार ही है।

आशय यह है कि जिससे अपनी तबियत न मिले उससे बात करने से बचते ही रहना चाहिए। दूसरे, बालक के साथ झगडा नही करना चाहिए और तीसरे, बडो के साथ विरोध नही करना चाहिये।

ऐ अभागिनी मछली ! जिस पानी में तू रहती है, जिसे पीती है, जिसमें जीती है और जिस पर तेरा जीवन निर्भर है, जिससे एक पल के लिए अलग हो जाये तो तुझे चील या कौवा उठा कर ले जाये, इस प्रकार जिसके आधार पर तेरे प्राण टिके है, उसी समुद्र से तू वैर करती है ? उसी से बिगाडती है और

बुरा मनाती है ? याद रख, उसका सामर्थ्य अपरिमित है, वह अपनी मर्यादा का कभी परित्याग नही करेगा, परन्तु तू अपना ही विगाड कर लेगी । अगर समुद्र ने एक ही धक्का दे दिया तो बाहर किनारे पर जा पडेगी और समाप्त हो जायेगी । परन्तु सागर मे गम्भीरता है। उसमे दुर्जनता नही है कि तुझे किसी प्रकार हानि पहुचावे । वह चाहता तो तुझे कभी का ठिकाने लगा देता । ओ मच्छी ! तेरे लिए यही हितकर है कि तू जिसके सहारे जीवित है, उसकी खैर मना और उसकी शुभ-चिन्तक हो कर रह ।

इसी प्रकार हे मनुष्य ! तू जिस समाज में रहता है और जिस देश मे रहता है, उसका होकर रह, उसका शुभ-चिन्तक बनकर रह, उसका भला चाह और भला कर और उसके उत्थान में अपना उत्थान मान, यह बात तू पक्की समझ ले कि तू उस समाज और देश का एक अग है और इस कारण यदि देश या समाज को कोई क्षति पहुचती है तो वह तेरी ही क्षति है । देश या समाज को हानि पहुचा कर तू कदापि लाभान्वित नही हो सकता !

इसी प्रकार सघ की उन्नति मे व्यक्ति की उन्नति है। सघ सबल होता है तो उसके अगभूत व्यक्ति भी बलवान् होते है और यदि सघ निर्बल और अशक्त होता है तो उसके अगभूत व्यक्ति भी निर्बल और शक्तिहीन समझे जाते है । किसी ने कहा है.—

सघे शक्ति कलौ युगे ।

यो तो प्रत्येक काल मे सघ मे हो शक्ति का निवास होता है, मगर कलिकाल मे तो खास तौर से संघ ही बल का केन्द्र होता है । ऐसा न होता तो तीर्थंकर भगवान् सघ की स्थापना ही

क्यो करते ? वास्तव मे सघ के बिना धर्म टिक नही सकता। मगर धर्म की स्थिति उसी सघ के सहारे हो सकती है, जो पूरी तरह सगठित हो और जिसमें सुदृढ एकता हो। वस्तुत वही सघ कहलाता है। सगठन और एकता के अभाव में सघ नाम मात्र का ही होता है और वह धर्म को ठीक तरह कायम नही रख सकता। इसी दृष्टिकोण से हमारा श्रमणसघ बना है। मगर कितने ही सघद्रोही यही योजनाये बनाते प्रतीत होते है कि किस प्रकार यह सघ भग हो जाये और बना-बनाया सगठन छिन्न-भिन्न हो जाये ! बिल्ली यही चाहती है कि कब छीका टूटे और कब मै दूध-मलाई उडाऊँ ! मगर अरे सघश्रेय के द्रोही ! पहले तो यह सगठन रूपी छीका टूटने वाला ही नही है। कदाचित् टूटा तो तेरे सिर पर ऐसा पडेगा कि तेरे सिर की खोपडी ही फूट जायेगी और उसमे कीड़े बिलबिलाने लगेगे।

सज्जनो ! किसी के चाहने मात्र से छीका नही टूटने वाला है। उसकी साकलें मजबूत लोहे की बनी है। जब साकले कमजोर हो जायेगी तो वह आप ही आप पड जायेगा। भले आदमी ! तू क्यो तोडना चाहता है ? भगवान् ने कहा है—जो चतुर्विध सघ की रस्सी को काटता है—सघ के सगठन में बाधा डालता है, सघ मे फूट पैदा करता है, वह महामोहनीय कर्म बाधता है। उसे सत्तर कोडा कोड़ी सागरोपम तक धर्मबोध मिलना कठिन हो जायेगा।

आज बहुत-से लोग है जो इधर तो गुरु भक्ति का दावा करते हैं और उधर गुरु की आज्ञा का निरादर भी करते है। वे अपने इन कारनामो से गुरु की शान नही बढा रहे है। उलटे उनकी शान घटा रहे है। वे गुरु भी, अगर सच्चे गुरु है तो, अपने

साथियो का अपमान देख कर कभी प्रसन्न न होगे। और यदि वे अपने अभिमान मे हैं तो चीज ही दूसरी है। मगर याद रखिये, गुरु को खुश करने का यह तरीका नही है। अगर तू किसी के गुरु का अपमान करेगा तो तेरे गुरु का कोई भी अपमान कर सकता है। अतएव दूसरे के पिता की इज्जत घटाना अपने पिता की इज्जत घटाने का आह्वान करना है। अतएव इज्जत दो और इज्जत लो। अपमान दो और अपमान लो !

गुरु का अपमान करना अपने लिए ही कब्र खोदना है और अपने आपको उसमे डालना है। अगर तू किसी के पिता का छटाक भर मान करेगा तो वह तेरे पिता का पाव भर मान करेगा। इस से विपरीत रास्ता पकडोगे तो स्वय ही को दु ख उठाना पडेगा। अतएव मै वतला रहा था कि जहा अपना मिज़ाज न मिले और वातचीत करने से हानि होती हो, वहा मत फटको। उस स्थान से दूर रहो। पहाड को फोडना चाहोगे तो तुम्हारा ही सिर फूटेगा। यदि तू शेर के दात गिनने चलेगा तो तेरे ही दात गिन लिये जायेंगे। अग्नि को पैरो से रौंदने का दुस्साहस करेगा तो तेरे ही पैर दग्ध हो जायेंगे। अग्नि पर पैर रख कर जल मरने वाला तो एक ही जन्म मे मरेगा, मगर सघ का विनाश जन्म-जन्मान्तर मे रुलायेगा।

और पूर्वोक्त पद्य में कहा गया है कि जो स्त्री कुलक्षणा है, चचला है, उससे वचकर रहना चाहिए। सगति का प्रभाव पडे विना नही रहता। भले कोई मद्य न पीता हो किन्तु यदि वह पीने वालो के साथ वैठेगा तो उसे भी लोग पियक्कड ही समझ लेगे। चिलम पीने वालो के समीप वैठने वाले के भी कपडे जल जाते है। कहावत है :—

'चिलन चडी न रही सोहागिन और न रही रंडी ।'

जब चिलम भरी जाती है और पीने वाले धक्-धक् करते हुए उसे पीते है, तो उसमें से चिनगारिया उछलती है । वे कपडे में दाग लगा देती है और कपडे में बैठने वाले बेदाग हो कर भी बिना दाग के नही रह सकते ।

पर ये काले-काले दाग तो धुल भी सकते है, मगर निन्दा के दाग धुलने कठिन है । अतएव पुण्य के योग से तुम्हे जो जिह्वा मिली है, उससे पाप का उपार्जन मत करो । किसी की निन्दा न करो । तुम्हारी जीभ हितकर, मधुर और पथ्य वचन बोलने के लिए है । बोलो तो ऐसा बोलो जिससे दूसरो को शान्ति मिले, सुख प्राप्त हो । ऐसा करने से ही तुम्हे भी सुख मिलेगा और तुम्हारा पुण्य पाप के रूप में परिणत नही होगा ।

तो मै कह रहा था कि वचन रावण ने भी कहे थे और राम ने भी कहे थे । मगर रावण के वचनो से उसका सगा भाई विभीषण उससे अलग हो गया और केवल भाई ही जुदा नही हुआ, मगर उसका जीवन और सर्वस्व भी उससे किनारा काट गया । परिणाम यह हुआ कि रावण को बुरी मौत मरना पडा और नरक में जाना पडा । आज तक भी लोग उसका पुतला बना कर जलाते है । छोटे-छोटे बालक भी उसे मारने जाते हैं, जिन्हे लगोटी बाधना तक नही आता और जिनकी नाक में से रेंट फुर्र-फुर्र करता है । ऐसे बच्चे भी तीर-कमान ले कर चलते है रावण को मारने ।

पापकर्म करने वाले तो जिन्दा भी मरे के समान है । जिसके अन्त करण मे किसी भी वस्तु का अतिलोभ व्याप्त हो जाता है, वह किसी काम का नही रहता । लोभ सब सद्गुणो का नाश करने वाला है—

लोहो सव्वविणासणो ।

और दुर्गुणो की आवश्यकता नही । अगर सब दुर्गुणों का बाप लोभ विद्यमान है तो वही बस है । वह अकेला ही मनुष्य का सर्वनाश करने में समर्थ है ।

और जिसको पराई निन्दा और चुगली करने की आदत पड गई है, उसे अन्य पातक करने की आवश्यकता नही । उसके लिए यह एक ही पातक पर्याप्त है। इसी से उसका जीवन नष्ट हो जायेगा और वह जीते जी दुनिया की घृणा का पात्र बन जायेगा ।

जिसका मन पवित्र है, स्वच्छ है और निर्मल है, जिसके हृदय रूपी पद्महृद् से करुणा की शीतल मन्दाकिनि प्रवाहित हो रही है, जिसका मन प्रगाढ धर्मश्रद्धा से युक्त है, समझ लो कि गगाजी, जमनाजी, केदारनाथ, पुष्कर आदि-आदि तीर्थों की यात्रा करने या वहा जाकर जलस्नान करने की उसे कोई आवश्यकता नही है ; क्योंकि उसका अन्त करण पवित्र है—

मन चगा तो कठौती में गगा ।

मन दया, क्षमा के विमल सलिल से परिपूर्ण हो तो जन्म-जन्मान्तर के पाप धुल जायेंगे । अगर मन अपावन है और उसमें पाप की गदगी समाई हुई है तो हजार बार तीर्थस्नान करने पर भी काम बनने वाला नही है । अतएव सर्वप्रथम मन को शुद्ध करने का प्रयत्न करो । शुद्धहृदय व्यक्ति को किसी भी अन्य तीर्थ में भटकने की आवश्यकता नही है । तीर्थों में वही भटकता है जिसमें अपनी आत्मा पर विश्वास नही है ।

भद्र पुरुषो ! शास्त्रकारों का कथन है कि जो शुद्ध मन के सरोवर में स्नान करते है, उन्हे दूसरे सरोवर में स्नान करने की

आवश्यकता नही रहती। उसमें स्वत पवित्रता का वास हो जाता है और अनेक सद्गुण आ जाते है। जैसे सभी नदिया समुद्र में अपने आप आ मिलती है और वृक्ष पर लताए स्वय लिपट जाती है, उसी प्रकार पावनमना मनुष्य स्वत धर्म का केन्द्र बन जाता है।

जिसके पास सच्चा ज्ञान है, उसको अन्य धन की आवश्यकता ही क्या है ? ज्ञान-धन ऐसा धन है कि उसे चोर नही चुरा सकता, भागीदार हिस्सा नही बटा सकता और लुटेरा लूट नही सकता। अधर्मी, अन्यायी मनुष्य यह लोक और परलोक दोनो ही बिगाड लेता है।

कोई-कोई व्यक्ति तो ऐसे होते है कि अशुभ नाम कर्मोदय से उनका अपयश फैला रहता है, बदनामी होती है, प्रात काल कोई उनका नाम लेना भी पसद नही करता और कोई कदाचित् नाम ले लेता है तो लोग कहते है—अरे राम, राम! सबेरे ही सबेरे किस मनहूस का नाम ले लिया ? ऐसा क्यो होता है ? कारण यही कि उसने अशुभ नामकर्म का बध किया है।

किसी जगह एक बडा सेठ रहता था। खूब मालदार था। राजा भी उससे कर्ज़ लिया करता था। उसके परिवार मे लगभग १५-२० बाल-बच्चे थे। इतना बडा परिवार और इतना बहुत धन होने पर भी उसका हाल यह था कि वह बाजार में शाक-भाजी लेने जाता तो सबेरे-सबेरे कूजडा भी कह देता—सेठजी, अभी बोनी नही हुई है! जब वह आगे बढ जाता तो कूजडा कहता—न जाने कहा से आज सुबह-सुबह यह मगलमूर्त्ति आ धमका! आज बिक्री होना ही कठिन है।

सज्जनो! यह अशुभ नामकर्म का फल है। जिस मनुष्य को लोग घृणा से देखते है और जिसकी निन्दा करते है और वह

लोहो सव्वविणासणो ।

और दुर्गुणो की आवश्यकता नही । अगर सब दुर्गुणो का बाप लोभ विद्यमान है तो वही बस है । वह अकेला ही मनुष्य का सर्वनाश करने में समर्थ है ।

और जिसको पराई निन्दा और चुगली करने की आदत पड़ गई है, उसे अन्य पातक करने की आवश्यकता नही । उसके लिए यह एक ही पातक पर्याप्त है । इसी से उसका जीवन नष्ट हो जायेगा और वह जीते जी दुनिया की घृणा का पात्र बन जायेगा ।

जिसका मन पवित्र है, स्वच्छ है और निर्मल है, जिसके हृदय रूपी पद्महृद् से करुणा की शीतल मन्दाकिनि प्रवाहित हो रही है, जिसका मन प्रगाढ धर्मश्रद्धा से युक्त है, समझ लो कि गगाजी, जमनाजी, केदारनाथ, पुष्कर आदि-आदि तीर्थों की यात्रा करने या वहा जाकर जलस्नान करने की उसे कोई आवश्यकता नही है , क्योकि उसका अन्त करण पवित्र है—

मन चंगा तो कठौती में गगा ।

मन दया, क्षमा के विमल सलिल से परिपूर्ण हो तो जन्म-जन्मान्तर के पाप धुल जायेंगे । अगर मन अपावन है और उसमें पाप की गदगी समाई हुई है तो हजार बार तीर्थस्नान करने पर भी काम बनने वाला नही है । अतएव सर्वप्रथम मन को शुद्ध करने का प्रयत्न करो । शुद्धहृदय व्यक्ति को किसी भी अन्य तीर्थ में भटकने की आवश्यकता नही है । तीर्थों में वही भटकता है जिसमें अपनी आत्मा पर विश्वास नही है ।

भद्र पुरुषो ! शास्त्रकारो का कथन है कि जो शुद्ध मन के सरो[illegible] स्नान करते है, उन्हे दूसरे सरोवर में स्नान करने की

आवश्यकता नहीं रहती। उसमें स्वत पवित्रता का वास हो जाता है और अनेक सद्गुण आ जाते हैं। जैसे सभी नदिया समुद्र में अपने आप आ मिलती हैं और वृक्ष पर लताए स्वय लिपट जाती है, उसी प्रकार पावनमना मनुष्य स्वत धर्म का केन्द्र बन जाता है।

जिसके पास सच्चा ज्ञान है, उसको अन्य धन की आवश्यकता ही क्या है? ज्ञान-धन ऐसा धन है कि उसे चोर नही चुरा सकता, भागीदार हिस्सा नही बटा सकता और लुटेरा लूट नही सकता। अधर्मी, अन्यायी मनुष्य यह लोक और परलोक दोनो ही बिगाड लेता है।

कोई-कोई व्यक्ति तो ऐसे होते है कि अशुभ नाम कर्मोदय से उनका अपयश फैला रहता है, बदनामी होती है, प्रात काल कोई उनका नाम लेना भी पसद नही करता और कोई कदाचित् नाम ले लेता है तो लोग कहते है—अरे राम, राम! सबेरे ही सबेरे किस मनहूस का नाम ले लिया? ऐसा क्यो होता है? कारण यही कि उसने अशुभ नामकर्म का वध किया है।

किसी जगह एक बडा सेठ रहता था। खूब मालदार था। राजा भी उससे कर्ज लिया करता था। उसके परिवार मे लगभग १५-२० बाल-बच्चे थे। इतना बडा परिवार और इतना वहुत धन होने पर भी उसका हाल यह था कि वह बाजार में शाक-भाजी लेने जाता तो सबेरे-सबेरे कूजडा भी कह देता—सेठजी, अभी बोनी नही हुई है! जब वह आगे वढ जाता तो कूजडा कहता—न जाने कहा से आज सुबह-सुबह यह मगलमूर्त्ति आ धमका! आज बिक्री होना ही कठिन है।

सज्जनो! यह अशुभ नामकर्म का फल है। जिस मनुष्य को लोग घृणा से देखते है और जिसकी निन्दा करते है और वह

समझता है कि मै जीवित हूँ ! मगर नही, वह तो कभी का मर चुका है । उसके यशरूप वास्तविक प्राण तो कभी के निकल चुके है । वह केवल हाड-मास और चमडे से जी रहा है । यश-सम्पन्न होना ही जीना है और अपयश से जीना ही मरना है । जिसे सच्चा जीवन जीना है, उसे यशपूर्वक ही जीना चाहिए । अपयश से जीना, जीना नही है । यशस्वी मनुष्य कदाचित् अपना अपयश सुन लेते है तो घुल-घुल कर अदर ही अदर मरते रहते है । वे दूसरो के सामने मुह भी नही दिखलाना चाहते ! किन्तु जो बेशर्म और बेहया होते है, वे शान के साथ बाजार में घूमते-फिरते है । वे नही समझते कि उनके प्राण तो कभी के खतम हो चुके है । सज्जनो ! समय की बात है । देखो, रावण का सर्वस्व समाप्त हो गया, क्योकि उसने अपने हितैषी भाई के वचन नही माने ।

हा, तो उस भगिन और चमारिन में लडाई हुई । भगी की लडकी चमारिन से कहने लगी—तू मुझे क्या समझती है ! यदि मैंने तेरा ऐसा-वैसा नही कर दिया तो मुझे भगी की बेटी मत समझना, किसी चमार की बेटी समझना ।

इस प्रकार भगिन भी अपने को चमारिन से ऊचा समझती है ! जब कि चमार चमडी का काम करता है, मगर भगी तो विष्ठा उठाता है ?

सज्जनो ! मुझे इतनी लम्बी चौडी यह भूमिका किसलिए बाधनी पडी ? इसलिए कि वक्ता कुलवान् होना चाहिए । पर कुलवान् किसे कहते है ? जो ऊचे बगले वाला, परिवार वाला, लखपति या करोड-पति घर का हो, वह कुलवान् समझा जाये ? नही । कुलवान् तो झोपडी वाला भी हो सकता है और बगले वाला भी हो सकता है । ऊची आन शान वाले और मान वाले भी कुलवान् हो सकते है, जिनके

कुल में कभी कोई कुकृत्य नहीं हुआ है, जिन्होंने हक का ही खाया है और हक से ही कमाया है। ऐसे ऊचे मकान वाले कुलवान् हो सकते है। मगर कोई मोटर से, धन से या विशाल बंगले से ही कुलवान् नही हो जाता। ऊचा ओहदा पा लेने मात्र से भी कोई कुलीनता नही प्राप्त कर लेता। कुलीनता न स्वर्ण के सिंहासन में हैं, न कुर्सियो में है और न धन की थैलियो मे ही समाई हुई है। सच्ची कुलीनता सदाचरण पर निर्भर है। सिद्धान्त यह है कि जिसके कुल मे कोई कलक नही, दाग नही लगा हो, कोई निन्दनीय कार्य न किया गया हो, जिस कुल वालो ने भूखे, प्यासे रह कर भी कुल में दाग न लगाया हो, वह वास्तव में कुलीन कहा जा सकता है। इसके विपरीत, जिसने ऊचा मकान और विपुल धन पाकर भी वेश्यागमन किया, मदिरा-पान किया और दूसरे निन्दनीय कृत्य किये, वह कुलहीन है। अतएव टूटी-फूटी झोपडी में रहने वाला भी अगर बुरे कृत्य त्याग कर शुद्ध मार्ग पर आ जाता है और नीति-धर्म के साथ अपना जीवनयापन करता है, तो वह कुलवान् है। मगर आज तो कुलवान् की परिभाषा ही कुछ और हो गई है। आज ऊचे-ऊचे बगले वाले अपने को कुलवान् और दूसरे को कुलहीन समझते है। यह मनुष्य का भ्रम है।

मेवाड की बात है। हमें भिडर नगर से कुथवास नामक ग्राम में जाना था, किन्तु रास्ता भूल गये और दूसरी तरफ निकल पडे। वहा हमें सामने आता एक आदमी दिखाई दिया। वह जाति का भील था। उसने अपनी वोली में, हमसे कहा—बावजी! आपने कठे जाणो है? हमने कहा—भाई, कुथवास जाना है। तब उसने बतलाया—वहा का रास्ता तो बहुत पीछे रह गया और यह कह

कर वह हमारे साथ हो गया। बडे ही प्रेम से वह हमें रास्ता दिखलाने के लिए साथ चला। रास्ते में उसने हमे अपनी मेवाडी बोली में बतलाया—बावजी ! मैंने चौथमलजी बावजी रो वकाया हुणयो (व्याख्यान सुना) अने उणानी पासे थी दारू-मासरो त्याग-करयो। नोकार मत्र हीख्यो (नमस्कारमत्र सीखा)।

यह सुनकर मेरी आत्मा बोल उठी—वाह रे दिवाकर ! मेरी आवाज राजमहलो में भी गू जी और भीलो की झोपडियो में भी गू जो ! सज्जनो ! यह है जिंदगी !

जो गुरु के चरणो में आ गया और जिसने पच परमेष्ठी का शरण ले लिया, उसे भी यदि तुम नीच कहते हो और ऊचे घर में रहने वाले को, जो अडे खाता है, वेश्या के घर जाता है और अनेक प्रकार के नीच कृत्य करता है, बलवान् कहते हो ! नही, नही, वह तो अधम ही है। इस प्रकार की कुलीन और अकुलीन की मन कल्पित भ्रान्त परिभाषाओ से सदाचार का मूल्य नष्ट होता है। सदाचार के लिए कोई ऊचा स्थान नही रह जाता। वस्तुत उच्चता और नीचता की अभ्रान्त कसौटी सदाचार और दुराचार है। इसके सिवाय और कोई सही कसौटी नही हो सकती। चाहे कोई ब्राह्मणी के उदर से जन्मा हो अथवा चाण्डाली के उदर से, मगर उसने अपने जीवन को सस्कारयुक्त बनाया है, उच्च आचार-विचार को अगीकार किया है, तो वह उच्च है, अन्यथा नीच है। इस प्रकार उच्चता और नीचता किसी जाति में सीमित नही है, प्रतिष्ठा पर निर्भर होती है, वह तो उच्चकोटि के चरित्र में ही निहित है।

सज्जनो ! यह शास्त्रकारो की घोषणा है। यह जाति-पाति ऊचे उठे हुए की आवाज है कि ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल

तक, प्रत्येक जाति में उच्च भी होते है और नीच भी होते हैं। जिसका आचरण ऊचा वही ऊचा और जिसका आचरण नीचा वही नीचा है ।

वास्तव में चाण्डाल कौन है ? जो क्रोधी है, द्वेषी है, जिसमें सत्य नही, इन्द्रियदमन नही, अनुकम्पा नही, वह चाण्डाल है ।

वास्तव में ब्राह्मण कौन है ? जो दूसरे प्राणियो को अपने ही समान समझता है, सत्यपरायण है, इन्द्रियो का दमन करता है, यथाशक्ति एक देश या सर्वदेश ब्रह्मचर्य का पालन करता है और इस प्रकार श्रेष्ठ आचरण करता है, वह ब्राह्मण है ।

भद्र पुरुषो ! सभी जातियो में अच्छे और बुरे होते है । ऊचे कुल मे पैदा होने वाले भी जो अच्छे-अच्छे काम नही कर सकते, वे नीच समझे जाने वाले कुल में उत्पन्न होकर भी कर लेते है ।

मै आपको पजाब प्रान्त की एक रियासत फरीदकोट की बात बतलाता हू । मुझे वहा के दो भाइयो ने वह बात सुनाई थी, उन्होने कहा—महाराज ! गुणो के बिना जाति का कोई मूल्य नही उठता है । और फिर वे बोले—

फरीदकोट में एक बार दुर्भाग्य से दुष्काल पड गया । अन्न की उपज नही हुई और घास भी बहुत कम हुआ । मनुष्यो और पशुओ को जिंदगी बसर करना मुश्किल हो गया । अति गर्मी पडने लगी और रेत भी बहुत गर्म होने लगी । यह हाल देख कर वहा के मुखिया-मुखिया लोग इकट्ठे होकर राजा के पास गये । वहाँ का राजा सिक्ख था और उसका नाम पहाडसिंह था । राजा ने पूछा—आज आप लोगो का आना किसलिए हुआ ?

उनमें से एक ने कहा—'महाराज, आप हमारे राजा है, नृपाल है, हमारी रक्षा करने वाले हैं और हम सब तरह से लाचार होकर आपकी शरण में आये है । दुर्भिक्ष पड़ने के कारण बाल-बच्चे और स्त्रीजन तडप-तडप कर मर रहे है ।

राजा ने प्रजा का दु ख समझकर अपने गोदामो में से बहुत-सा अनाज दे दिया । मगर ओस से तालाब नही भरता । वह तो वर्षा होने पर ही भरता है । आखिर तो प्रकृति की अनुकुलता हुए बिना काम नही चलता ।

सज्जनो ! पूर्व काल के राजाओ को अपनी प्रजा से बडा प्रेम होता था । वे प्रजा के प्रति अत्यन्त सहानुभूतिशील होते थे और प्रजा के सुख-दु ख को अपना सुख-दु ख मानते थे । राजाओ की इस उदारता के कारण ही भारतवर्ष में बहुत लम्बे समय तक राज-तन्त्र सकुशल चलता रहा । राजा और प्रजा के बीच कोई उल्लेखनीय सघर्ष हुआ, इसका प्रमाण नही मिलता । मगर काल का प्रभाव पडा । राजा स्वार्थपरायण, विलासी और लापरवाह हो गये । प्रजा के प्रति वह प्रीति भाव उनके चित्त में नही रहा । प्रजा के सुख-दु ख की चिन्ता उन्हे न रही । परिणामस्वरूप प्रजा में सार्वजनिक असन्तोष फैला और बडते-बढते उसने वर्गसगर्ष का रूप धारण कर लिया । अन्त में राजतन्त्र को समाप्त होना पडा और आज न केवल भारत में ही, वरन् ससार के प्राय सभी देशो मे से वह उठ गया है । शासन की अनेक नूतन प्रणालिया जन्मी है । इनका भविष्य क्या होगा, कौन कह सकता है ? पर राजतत्र तो गया सो गया ही !

हा, तो फरीदकोट की जनता का कष्ट जब दूर न हुआ तो मुखिया लोग फिर राजा के पास पहुचे । उन्होने अत्यन्त भावमय

शब्दो में राजा से अभ्यर्थना की—आप हमारे देवता है, हमारे पूज्य है, प्रजापालक है, हम आपका कीर्तन करते है और आपके प्रति सम्पूर्ण विश्वास रखते है । हम आपकी आज्ञा का बराबर पालन करते आये है । आप पर अनन्य श्रद्धा रखते आ रहे है । आज हमे इस देव के द्वारा वरदान मिलना चाहिए ।

राजा यह सुनकर गभीर हो गया । उसने कहा—क्या समस्या लेकर आये हो ?

सबने कहा—आप ऐसी कृपा करो कि वर्षा हो जाये । आप देव हैं, आपमें शक्ति है और आप ही सब की इच्छा पूरी कर सकते है ।

राजा ने कहा—अच्छा, कोई बात नही । आप निश्चिन्त हो कर घर जाइये । मै वही काम करू गा कि वर्षा हो जाये और आपका सन्ताप मिट जाये ।

राजा सोच-विचार में पड गया कि वर्षा कैसे की जाये ? आखिर सोचते-सोचते उसने एक योजना बनाई । एक दिन नियत करके उसने नगर में घोषणा करवा दी कि—आज नगर के बाहर 'गोहारोली' खेली जायेगी । गोहा कहते है गोबर को और रोली कहते है शोर मचाने को । अर्थात् प्रजा के ऊपर मै गोबर फेंकू गा और प्रजा मेरे ऊपर गोबर फेकेगी ।

नगर-निवासी सब स्त्री-पुरुष नगर के बाहर एकत्रित हो गये तो राजा भी ठीक समय पर राजसी पोशाक सजाकर मैदान मे जा पहुचा । जब गोहारोली खेलने का ठीक समय हो गया तो महाराज पहाडसिह ने सबके सामने एक शर्त रक्खी । कहा—जो जती-सती हो, वही मेरे ऊपर गोबर फेंके । अर्थात् जिस पुरुष ने पराई

बहु-बेटी को सदैव माता-बहिन के समान समझा हो और जिस स्त्री ने परपुरुष को पिता, पुत्र और भाई के समान माना हो, वही मेरे साथ गोहारोली खेले। राजा पर गोबर फेंकना कोई साधारण बात नही है। अगर जती-सती फेंकेगा तो वर्षा होगी और जो यो ही किसी ने फेंक दिया तो उसके शरीर मे कोढ़ हो जायेगा।

सज्जनो! जब यह शर्त्त पेश की गई तो सन्नाटा छा गया। सब अपनी-अपनी करतूतो को अपने-अपने मन में तो जानते ही थे। अन्दर मे कोई लूला, कोई लगड़ा और कोई अधा था। सब को अपनी-अपनी गलतियाँ मालूम थी। बडे-बडे सेठ-साहूकार खड़े थे और बडी-बडी सेठानिया गोबर फेंकने को उद्यत थी, मगर यह शर्त्त सुनी तो सब के हौंसले पस्त हो गये।

यह हाल देख कर राजा ने कहा—क्यो, क्या हुआ? बात क्या है? तुम तो सभी गोबर फेंकने को तैयार थे न? अब कोई भी क्यो नही फेंकता?

उस भीड मे एक मेहतरानी भी थी, जो जरा दूरी पर एक ओर खडी की। पहले-पहले तो सामने आने का साहस उसे नही हुआ था, मगर राजा के शब्दो में उसे चुनौती का आभास हुआ और हिम्मत करके वह सामने आ धमकी। उसने राजा से कहा—आज मेरा और आपका मुकाबिला है। मैं आपके ऊपर गोबर फेंकूगी और इस दुष्काल को काला मुह करके निकाल दूगी।

राजा भगिन की बात सुनकर प्रसन्न हुआ। राजा ने उस के ऊपर गोवर फेंका और भगिन ने राजा पर फेंका।

सज्जनो! वहा ऊच-नीच का भेदभाव नही था। यद्यपि गोवर में कोई पानी नही था कि बरस पड़ता किन्तु वह तो एक

कसौटो थी। उस कसौटी पर भगिन सौ टच का सोना साबित हुई। वह सती थी और पतिव्रता थी। उस सती को अपने सत्य पर पूर्ण विश्वास था।

मेरी बहिनो! ऊचे घरानो की देवियो! आज उस भगिन से तुम्हे शिक्षा लेनी चाहिए और राजा-रानियो को भी पाठ सीखना चाहिए।

विस्मय की बात है कि ज्यो ही भगिन ने राजा पर गोबर फेंका कि उसी समय आकाश में एक छोटी-सी बदली उठी। थोडी-सी देर में घनघोर घटा छा गई। नभमण्डल सघन मेघो से मडित हो गया और बिजली कडकडाने लगी। वर्षा हो गई। वर्षा होने से दुष्काल दूर हो गया और राज्य में शान्ति का प्रचार हो गया।

यह सब कैसे हुआ? स्थूल जगत् को ही सम्पूर्ण सत्य समझने वालो की समझ में यह बात आये अथवा नही आये, मगर जो लोग जानते हैं कि इस स्थूल जगत् के अतिरिक्त एक सूक्ष्म होने के ही कारण उसमे अपरिमित शक्ति है, उन्हे इसमें असभव जैसी बात नजर नही आयेगी। वस्तुत शीलरक्षक देवता इस प्रकार से शील की महिमा का विस्तार करते हैं। किसी ने कहा भी है —

> शीलवानो के चरणकमलो में देवी देवता।
> स्वर्ग से आते यहा, मस्तक झुकाने के लिए।
> शील को पालो जरा मुक्ति में जाने के लिए।
> कर्म के बधन कटा आनद पाने के लिए॥

सज्जनो! ज्यो ही उस सती मेहतरानी ने राजा पर गोबर फेंका, उसी समय समझो देवता ने अनुग्रह करके, सती के सतीत्व

की प्रशसा और महिमा के लिए वर्षा कर दी । यही जीवन की उत्क्रान्ति है।

श्रीमद्भगवतीसूत्र में उल्लेख है कि देवता की शक्ति अचिन्त-नीय होती है । वह जो चाहे सो कर सकता है। वह वर्षा कर सकता है, धूल बरसा सकता है और बनी-बनाई घटा को भी विघटित कर सकता है और दूसरी जगह ले जाकर बरसा सकता है ।

सब सेठ-सेठानिया और रईस लोग देखते रह गये और भगिन बाजी मार ले गई। अब मै पूछता हू कि आप उस भगिन को कुलीन कहेगे या कुलहीन ?

तो मै कहा रहा था कि वक्ता कुलवान् होना चाहिए । कुल-वान् वक्ता का सबपर प्रभाव पडता है । अतएव व्याख्यानदाता मे यह विशेषता होनी चाहिए ।

सज्जनो ! जैसे हृदय के विना शरीर का मूल्य नही, उसी प्रकार सम्यक्त्व के विना जप-तप आदि का मूल्य नही। अतएव सम्यक्त्व धारण करो और ससार-सागर पार करो। एवमस्तु ।

ब्यावर
२६-८-५६

: १० :

यथा कर्म तथा फलम्

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः सश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचय हे वीर ! भद्रं दिश ।।

× × ×

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा पूज्या उपाध्यायका ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।।

उपस्थित महानुभावो !

चौबीसवे तीर्थंकर विश्वहितकर भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी परमपावनी, सुधास्राविणी, कल्याणी वाणी से जगत् के प्राणियो को उद्बोधन देते हुए फरमाया है—ऐ भव्य जीवो ! उच्च गति में जाना, नीच गति में जाना और समस्त गतियो का अन्त करके अजर—अमर ज्योतिर्मय पद को प्राप्त करना तुम्हारे ही अख्तियार की बात है । तुम्हारा मगल और अमगल तुम्हारी ही मुट्ठी मे है । तुम जैसे कर्म करोगे, वैसी ही गति में चले जाओगे । ज्ञानियो ने यह मार्गप्रदर्शन भी कर दिया है कि यदि तुम नीच गति में जाने योग्य खोटे कर्म करोगे तो नीच गति मे जाओगे ।

सज्जनो ! कर्मबन्ध दो प्रकार का होता है—निकाचित और निधत्त । और यह बध तब होता है, जब दो चीजें होती है—एक बाधने वाली और दूसरी बधने वाली चीज । जब कर्मबध का प्रश्न है तो बाधने वाला आत्मा है और वह बधने वाले कर्म है । मगर बधने वाले कर्म ही आत्मा को बाध-जकड लेते है । लकडियो के गट्ठे को रस्सी जकड लेती है । अपराधी को रस्सी या हथकडियाँ जकड लेती है । पशु को भी बाँध दिया जाता है । तो जो स्वतत्रता का अपहरण करता है, वही बन्धन है । स्वतत्रता को छीनने वाले साधनो को ही बन्धन माना गया है । पक्षी पिंजरे मे बद है । वह बाहर निकलना चाहता है—स्वाधीनता चाहता है, किन्तु बधन मे डाल दिया गया है, अतएव परतत्र हो गया है । और शेर भी, जो लोहे के सीखचो में वद कर दिया जाता है, आज़ाद होने के लिए बहुत छटपटाता है, किन्तु उसका जोर नही चलता । उसे विवशतावश परतत्रता भोगनी पडती है ।

इस प्रकार जो लौकिक बन्धन है, वे भी स्वतत्रता को छीन लेते है और जीवो को पराधीन कर देते है, तो कर्म रूप भाव बधन तो कितने जबर्दस्त होगे, यह सहज ही समझा जा सकता है । द्रव्यबधन तो ऊपर से ही शरीर को जकडते है, किन्तु भावबन्धन आत्मा मे प्रवेश करके आत्मा को ही वाध देते है । कर्म रूप भावबन्धन भी निकाचित और निधत्त के भेद से दो प्रकार के है ।

निधत्त बधन जप, तप आदि क्रियाओ द्वारा टूट जाते है । उदाहरणार्थ—एक रस्सी ऐसी होती है कि जिससे पशु वाध दिया जाता है किन्तु पशु जब इधर-उधर मुडता है तो वह टूट जाती है । और एक पिंजरा इतना कमज़ोर होता है कि जरा-सा जोर लगाने

से ही टूट जाता है और पशु या पक्षी निकल कर भाग जाता है। मगर कोई-कोई रस्सी या पिंजरा रूप बन्धन ऐसा भी होता है कि उसे जब निकालो तभी निकलता है और जितने समय के बाद निकालो तभी निकलता है। शेर को ऐसे मजबूत पिंजरे में बद किया जाता है कि वह उसमे नाचता, कूदता और फिरता तो रहता है, किन्तु निकाले बिना निकल नही सकता।

सज्जनो ! जब सिह सरीखा बलिष्ठ प्राणी भी परतंत्र होकर बन्धन मे आ जाता है, तो ससार के अन्य सामान्य प्राणियो का तो कहना ही क्या है !

कहने का आशय यह है कि जब बडे-बडे तीर्थंकर, वासुदेव वगैरह भी भावबन्धन में बध जाने से अछूते न रह सके और उन्हे भी एक नियत अवधि तक बधन में रहना पडा तो ससार के पामर प्राणियो का क्या कहना है ! मगर निधत्त कर्म को उद्योग या परिश्रम करने से तोडा जा सकता है। वह बधन नियत समय से पहले भी टूट जाता है और उससे स्वतत्रता मिल जाती है, किन्तु निकाचित कर्म के सबध मे यह बात नही है। निकाचित कर्म का बन्ध यदि हो जाता है, तो उसका फल भोगे बिना छुटकारा नही मिल सकता। ऐसे ही कर्मों के विषय में शास्त्र में कहा गया है—

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।

अर्थात्—निकाचित रूप में बांधे हुए कर्मों को भोगना ही पडता है, बिना भोगे वे नही छूटते।

कर्म का भोग भी दो प्रकार से होता है—प्रदेश रूप से और विपाक रूप से। जहाँ विपाक रूप से भोगना होता है, वहाँ प्रदेश

रूप से अवश्य भोगना पडता है। मगर यह नियम नही कि जहा प्रदेश रूप से उदय हो वहाँ विपाक रूप से भी उदय हो।

जब योगो मे बहुत ही मलीनता और कलुषता होती है तथा निकृष्टता आ जाती है और जब कषाय में तीव्रता होती है, तब निकाचित बन्ध होता है। सज्जनो! जितना-जितना भावो में स्नेह का पुट होता है, उतना ही उतना कर्मों का बध ज्यादा होता है। इसके विपरीत भावो मे जितनी-जितनी रूक्षता होती है, उदासीनता होती है, कर्म भी उतने ही उतने हल्के बधते है।

श्रीमद्‌उत्तराध्ययन सूत्र के पच्चीसवें अध्ययन में एक कथा आई है। जयघोष और विजयघोष नामक दो ब्राह्मण पुत्र थे। उनमें से विजयघोष को यज्ञ आदि ब्राह्मण-क्रियाओ मे अधिक निष्ठा थी। माता-पिता से भी उसे यज्ञ आदि क्रियाओ की ही शिक्षा मिली थी और वही सस्कार उसके अन्त करण में जमे हुए थे। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य जैसी सगति में रहता है और जिस वातावरण मे सास लेता है, वैसा ही उसपर प्रभाव पड जाता है। अच्छी सगति का अच्छा और बुरी सगति का बुरा असर पडे बिना नही रहता।

विजयघोष का बडा भाई जयघोष इन क्रियाओ को दोष का कारण समझ कर और विरक्त होकर साधु बन गया था। देश-देशान्तर में विचरण करते-करते एक बार जयघोष मुनि अपनी जन्मभूमि में आ पहुचे। जब वह वहा पहुचे तो विजयघोष एक बडे यज्ञ की तैयारी कर रहा था। यज्ञ के निमित्त बडे-बडे धुरन्धर वेदपाठी विद्वान् पण्डित आमन्त्रित किये गये थे। यज्ञ की वेदिका के समीप हवन की समग्र सामग्री सजी हुई थी। पण्डितगण यथास्थान

बैठ कर वेदमत्रो का उच्चारण कर रहे थे। उन पण्डितो के लिए विविध प्रकार के भोजन और व्यजनादि बनाये गये थे।

उसी समय जयघोष मुनि घूमते-घूमते यज्ञशाला में आये। आज उनकी एक मास की तपस्या का पारण दिवस था। आखिर तो शरीर को भाडा देना ही पडता है। जो शरीर के प्रति सर्वथा ममत्वहीन है, परमयोगी है, विरक्त है, उनका शरीर भी भोजन के बिना काम नही देता। जिस शरीर से आत्मिक साधना करनी है, उसे बनाये रखने के लिए आहार करना ही पडता है। शास्त्र मे बतलाया गया है कि उत्कृष्ट तपस्या एक वर्ष की हो सकती है। इससे अधिक का वर्णन नही मिलता।

हा, तो जब जयघोष मुनिराज यज्ञशाला में पहुचे तो सबने समझा कि ये भोजन के लिए आये है। अतएव याजक ने कहा—भिक्षु ! यह भोजन तो उनके लिए है, जो वेदपाठी है और दूसरो को ससार से पार करने वाले है।

सज्जनो ! खेद है कि आज दुनिया दूसरी ही हो रही है। जो छोकरा-छोकरी उत्पन्न करते है, मैथुन सेवन करते है, घर-गृहस्थी में रहते है, उनको भी लोग 'तिन्नाण तारयाण' कह कर पूजते है ! अगर इस प्रकार गृहस्थ को ही गुरु माना जाये तो फिर तप-त्याग वालो की दुनिया कहा टिकेगी।

बज्रबेड़ा सारका बीच लोहे का भार,
गृहस्थी का गृहस्थी गुरु,
इम डूबा ससार।

लोहे और पत्थर की बनी नाव मे लोहा और पत्थर ही भर दिया जाये तो वह किस प्रकार तिर सकती है और किस प्रकार

तार सकती है। तिरने और तारने की शक्ति तो उस काठ की नाव मे ही है जो स्वय भी तिरती है और अपना आश्रय लेने वालो को भी तार देती है। त्यागी-वैरागी आत्मा स्वय भी तिरती है और दूसरो को तार देती है।

तो जब मुनि ने सुना कि यह भोजन वेदपाठी ब्राह्मणो के लिए है, किन्तु उनके लिए नही है, तो वह विचार करने लगे—अहो ! ये लोग कितने मिथ्यात्व में फसे है ! ये लोग अपने जैसे भोगियो को ही गुरु मान बैठे है। इस भ्रमणा के कारण इनका कल्याण होने वाला नही है। उन्होने अवसर देखकर उपदेश दिया और कहा—तुम नही जानते कि ग्रहो का, वेदो का और यज्ञ का मुख क्या है ? वास्तविक यज्ञ क्या है ? तुम्हे यह भी नही मालूम है कि ससार से तारने वाला कौन है ?

इस प्रकार उन्होने शब्दो में ही शब्दों का मामला भुगता दिया। फिर कहा—अगर तुम जानते हो तो कहो कि इन प्रश्नो का उत्तर क्या है।

सज्जनो ! जयघोष मुनि त्यागी थे। अतएव उन ब्राह्मणो पर शीघ्र ही उनका प्रभाव पड गया। वे समझ बैठे थे कि हम सब कुछ जानते है, हमारे पाण्डित्य का मुकाबिला कोई नही कर सकता, हम सर्वज्ञ से कम नही है, परन्तु मुनि ने स्पष्ट शब्दो में कह दिया—'तुम कुछ नही जानते !' इस स्पष्टोक्ति का उन पडितो पर गहरा प्रभाव पडा। वे सोचने लगे—इनके कथन में कुछ रहस्य होना चाहिए। साधारण व्यक्ति इस स्थान पर आकर ऐसे शब्दो का उच्चारण नही कर सकता। अतएव मुनि का कथन [illegible]र कर गया। वह समझे कि हमारा प्ररूपण सही नही है और

मुनि उसके विपरीत कुछ और ही कहना चाहते हैं। हम भूले हुए मालम होते हैं।

इस प्रकार विचार करके ब्राह्मण विद्वान् 'सकिया, कखिया वित्तिगिच्छा समावण्णे' हो गये। अर्थात् उन्हे अपने विचारो के विषय में शंका हो उठी, मुनिराज का कथन सुनने की आकाक्षा उत्पन्न हुई और अपने प्रति ग्लानि का भाव उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे—हम कुछ बोलेंगे और वह भी गलत साबित हो जायेगा तो उलटी लोकहसाई होगी। इस प्रकार वे हतप्रभ हो गये। उन्हे अपने ऊपर विश्वास न रहा। मुनि में ऐसी कुछ अनूठी तेजस्विता थी कि उनके सामने पण्डित लोग टिक न सके।

भद्र पुरुषो! मनुष्य अनादि काल से भूलें करता आ रहा है। जब तक उसे परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त नही हो जाता और वह छद्मस्थ है, तब तक भूलो से बचना सभव भी नही है। बहुत-बहुत सावधानी रखने पर भी कभी न कभी भूल हो ही जाती है। मगर बडी बात है अपनी भूल को सुधार लेना। जो भूल करके उसे भूल मानता है और सच्चे हृदय से उसे सुधारने के लिए उद्यत रहता है, वह भूल से होने वाले अनर्थों से बहुत अशो में बच जाता है। पर ऐसी हिम्मत सब मे नही होती। अधिकाश लोग भूल करके उसे छिपाने का प्रयत्न करते है। वे समझते है कि भूल स्वीकार करने से हमारा महत्त्व घट जायेगा। हमारी कीर्त्ति में कमी हो जायेगी। परन्तु ऐसे लोग भूल पर भूल करने वाले है। वस्तुत ऐसे डरपोक लोग ही अधिक उपहास के पात्र बनते है और उन्ही को हानि उठानी पडती है।

तो उन याज्ञिको ने कहा—महाराज! आप ही अपने प्रश्नो का उत्तर दीजिये। हम कुछ नही जानते।

जो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होने का दावा करते थे, उन्होने अपने हथियार डाल दिये। वे मुनिराज के प्रश्नो का उत्तर उन्हीं से पूछने लगे।

तत्पश्चात् मुनिराज जयघोप ने प्रश्नो का उत्तर दिया। वह उत्तर विस्तृत है और आपको समझाने के लिए तो और अधिक विस्तार से कहने की आवश्यकता है। परन्तु इतना समय नही है। अतएव सक्षेप में ही कहता हू।

मुनि बोले—वेदो का मुख अग्निहोत्र है। मगर वेद का अर्थ होता है ज्ञान। ज्ञान के द्वारा हेय-उपादेय और आत्मा-अनात्मा का स्वरूप समझा जाता है और फिर तपस्या रूपी अग्नि में कर्म रूपी ईंधन जलाया जाता है। उसमे भावना की आहुति अपेक्षित होती है। इसी प्रकार नक्षत्रो का मुख चन्द्रमा है। चन्द्रमा सब नक्षत्रो का स्वामी है। चन्द्रमा से ही तिथिगणना आदि अनेक व्यवहार होते है। और धर्म का मुख भगवान् आदिनाथ ऋषभदेव है। इस अवसर्पिणी काल मे भगवान् ऋषभ ने ही सर्वप्रथम धर्मतीर्थ की स्थापना की थी।

इसके पश्चात् मुनिराज ने ब्राह्मण का सच्चा स्वरूप समझाया। कहा—जो स्वजन आदि में आसक्त नही होता, जो वीतराग के वचनो का अनुसरण करता है, जो रागद्वेष और भय से मुक्त होता है, तपस्वी, शान्त, दान्त, कृशकाय एव समभावी होता है, जो किसी प्राणी को कष्ट नही पहुचाता, हसी-विनोद में भी असत्य का प्रयोग नही करता, अदत्तादान से सर्वथा विरत होता है, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है, ममत्व से रहित होता है, सब प्रकार के विषयो [illegible] लिप्त रहता है, निष्कामजीवी होता ह, गृहस्थो से ससर्ग नही

रखता और कुटुम्ब-परिवार का परित्याग करके आत्मसाधना में जुटा रहता है, वही सच्चा ब्राह्मण कहलाता है।

मुनिराज ने उन्हे समझाया—जाति से कोई ऊचा या नीचा नही होता। क्योकि —

कम्मुणा बम्भणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वईसो कम्मुणा वे होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

अर्थात्—ब्राह्मण के योग्य पूर्वोक्त कर्म करने वाला ब्राह्मण होता है। क्षत्रिय के योग्य देशरक्षा आदि कार्य करने वाले क्षत्रिय कहलाते है। व्यापार, कृषि और पशुपालन आदि वैश्योचित कर्म करने वाले वैश्य कहलाते है। सेवा आदि शूद्र कर्म करने वाले शूद्र कहलाते है।

जैसे वकील और डाक्टर जाति से नही, कर्म से होते है, अर्थात् किसी भी कुल या वर्ण में कोई उत्पन्न हुआ हो, यदि वह वकालत करता है तो वकील कहलायेगा। डाक्टरी करने वाला डाक्टर कहलायेगा। ब्राह्मण भी वकील बन सकता है, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी वकील बन सकता है, क्योकि अक्ल किसी जाति के लिए रिजर्व नही है। भारतीय ससद मे ऐसे-ऐसे व्यक्ति विद्यमान है, जिनसे उच्च जाति वाले भी सलाह लेते है। डाक्टर अम्बेडकर का नाम आपने सुना होगा। वे भारत के कायदे-आज़म कहलाते थे। उन्होने ही भारतीय सविधान की रचना की थी। वे यद्यपि हरिजन थे, तथापि जवाहरलालजी जैसे भी उनकी बातें मानते थे और अपनी बराबरी पर कुर्सी पर बिठलाते थे। आशय यह है कि मुनि जयघोष ने उन्हे बतलाया कि वर्णव्यवस्था का आधार गुण-कर्म है, जन्म नही।

इसी प्रकार उन्होने हिंसात्मक यज्ञ की भी आलोचना की। कहा—जैसे रुधिर से लिप्त वस्त्र रुधिर से स्वच्छ नही होता, उसी प्रकार हिंसादि द्वारा उपार्जित पाप हिंसामय यज्ञ से नही धुल सकते। इन यज्ञो से तुम्हारा कल्याण नही होगा, वरन् अकल्याण ही होगा। सच्चा यज्ञ तो तपस्या ही है।

मुनिराज कहते है—विजयघोष! तू किस मिथ्यात्व में पडा है? यह बाह्य अनुष्ठान आत्मा का कल्याण करने वाले नही है। तू कल्याण चाहता है तो शीघ्र से शीघ्र इस कीचड से बाहर निकल। इस महारभ को त्याग कर अनारभ की स्थिति में प्रवेश कर, अनारभी धर्म का सेवन कर।

मुनिराज ने कहा—जो भोगी होते है, वे भोगो मे और लिप्त हो जाते है, किन्तु जो अभोगी है, जिन्होने अन्त करण से भोगो को रोगो का कारण समझ लिया है, वे कभी भोगो के कीचड में नही फसते।

मुनि ने इस विषय को स्पष्ट और सुबोध बनाने के लिए उदाहरण दिया। कल्पना करो, किसी ने दो गोले बनाये। एक बालू का और दूसरा चिकनी मिट्टी का। उसने उन दोनो गोलो को दीवार पर दे मारा। तो चिकनी मिट्टी का गोला दीवार से लगने पर वही चिपक जायेगा, किन्तु बालू का गोला दीवार से टकरा कर नीचे गिर जायेगा, क्योकि उसमे चिकनापन नही। हा, रेत के कुछ कण दीवार पर चिपके रह जायेंगे, किन्तु वे भी हवा लगने से सूख कर गिर जायेंगे या हाथ फेरने से गिर जायेंगे। उन्हे हटाने के लिए विशेष श्रम नही करना पडेगा। इसी प्रकार यदि आसक्ति का चिकनापन नही है तो हिंसा आदि के छोटे-मोटे पाप पश्चात्ताप करने से ही नष्ट हो

जाते हैं। परन्तु जो भारी कर्म जीव होते हैं, वे तीव्र आसक्ति और सक्लेश के साथ पाप करते हैं। उनके पाप चिकने बधते हैं।

पजाब में एक हासी नामक नगर की घटना है। गुरु महाराज एक दिन गोचरी के लिए गये। एक जैन घर में पहुचे तो वहा एक युवती बाई थी। गुरु महाराज ने पूछा—आहार हो गया है ? यह सुनते ही वह बाई रोने लगी। गुरु महाराज ने उसके रोने का कारण पूछा तो वह और अधिक रोने लगी। उसका दिल पहले से भरा हुआ था और रोने को हो रहा था। सहानुभूति का स्वर पाकर वह उमड पडा।

आखिर महाराज ने पूछा—बाईजी, हमें बतलाने योग्य बात हो तो बतलाओ। हम साधुओ को तुम्हारे घर का या दिल का क्या पता ?

तब उस बाई ने धीमे स्वर में कहा—महाराज, कुछ न पूछिये। मै डूब गई। ज्यो ही मैने प्रात काल चूल्हे में आग जलाई तो एक छिपकली जल कर मर गई। वह चूल्हे मे न जाने कैसे गिर पडी। पचेन्द्रिय जीव की घात हो गई। मै बडे ध्यान से काम करती हू, फिर भी हिंसा हो गई। इसके लिए मुझे अत्यन्त पश्चात्ताप हो रहा है।

सज्जनो ! कितनी बडी बात है ! चाहे दिखावे के लिए कोई कितनी ही तपस्या करे, तेला करे या अठाई करे, मगर अन्त करण से पश्चात्ताप किये विना कर्मों की निर्जरा नही हो सकती। पश्चात्ताप की भावना होना मामूली बात नही है। पश्चात्ताप की तीक्ष्ण तलवार की धार पापो को काट फेकती है। यह पश्चात्ताप लघुकर्मी जीवो को ही होता है। गुरुकर्मी जीव हिंसा होने पर कहता है—

'जिसे मरना था वह मर गया। मैने थोडे ही मारा है।" वे इस प्रकार की मिथ्या सान्त्वना देकर अपने आपको आश्वासन देते है।

सज्जनो ! वह रुदन करने वाली वाई लघुकर्मी थी, अतएव पचेन्द्रिय प्राणी का घात होने पर भी उसके निकाचित कर्मो का बध होना सभव नही। उसके विपरीत, जो लोग पाप करके प्रसन्न होते है और अपनी चतुराई प्रकट करते है, वे पचेन्द्रिय के बदले एकेन्द्रिय की हिंसा से भी कर्मों का महान् बध कर लेते है।

स्कधकजी ने काचेर की अर्थात् चीभडे की त्वचा बडी सफाई से उतारी और उतारकर अति प्रसन्न हुए और बार-बार अपनी चतुराई की प्रशसा करने लगे। इस कारण उन्होने निकाचित कर्मों का बध किया। परिणामस्वरूप आगे चलकर उन्हे भी अपने शरीर की खाल उतरवानी पडी। परन्तु तुम लोग तो प्राय आयेदिन काचेरा आदि खाते हो और शाकादि के लिए अनेक कार की घीया, काली तोरी आदि काटते हो, अगर निकाचित कर्मों का बध कर लिया तो कही ठिकाना न लगेगा ! मगर नही, निकाचित कर्म तभी बधता है, जब उसमें विशेष रूप से भावो की उग्रता हो, आसक्ति हो और पाप करने के पश्चात् प्रसन्नता का अनुभव किया जाये !

विवेकवान् तो ऐसा कृत्य करके कहता है—क्या करू, मेरी इन्द्रिया वश मे नही है, इस कारण ऐसी वस्तुओ का उपभोग करता हू। जिन्होने अपनी रसना पर विजय प्राप्त कर ली है, वे धन्य है। जो एकेन्द्रिय जीवो को भी अभयदान देते हैं, वे प्रशसनीय हैं ! मैं कितना गया-बीता हू कि अपनी जीभ को भी अपने काबू म नहीं कर पाता ! जो इस प्रकार कहता है और चित्त में ऐसा ही विचार करता है और अपनी अक्षमता के लिए वास्तव में ही

पश्चात्ताप करता है, उसे निकाचित कर्मबन्ध नही होता। उसे बध तो अवश्य होता है,परन्तु वह इतना हल्का होता है कि पश्चात्तापादि सहज प्रयत्न करने से ही नष्ट हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि आत्मा मे जितना-जितना तीव्र सक्लेश भाव होगा, पाप में जितनी अधिक प्रगाढता अथवा आसक्ति होगी, उतने ही अधिक चिकने कर्म बधेंगे। जैसे चिकनी मिट्टी का गोला दीवार पर चिपक जाता है, उसी प्रकार यौगिक सक्लिष्टता के सद्भाव मे निकाचित कर्मों का वध हो जाता है।

वेदनीय कर्मों का अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। उस की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा-कोडी सागरोपम की है। अगर किसी ने किसी को कष्ट पहुचाया और असातावेदनीय कर्म का बध किया, तो उसकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है। अगर वह पश्चात्ताप कर लेता है और दो घडी में ही जाकर उससे क्षमा-याचना कर लेता है और प्रायश्चित ले लेता है, तो उसका पाप साफ हो जाता है। इसके विरुद्ध, अगर उसने उत्कृष्ट स्थिति का वध किया तो उस कर्म का सबध लम्बे काल तक चालू रहता है और तीस कोडा-कोडी सागरोपम तक वह नही छूटता। वह कुछ पहले तो कुछ पीछे भोगता है।

उदाहरणार्थ, किसी ने किसी से पाच हज़ार रुपये का ऋण लिया। वह उसमें से कुछ रुपया एक मिति पर और कुछ रुपया दूसरी मिति पर चुकता कर रहा है और इससे उसका भार कम होता है, मगर जिस मिति पर पूरी रकम देने का वायदा किया है, उस मिति तक तो पूरी रकम की अदायगी करनी ही पडेगी। इसी प्रकार जीव जो असातावेदनीय कर्म का वध करता है तो

जघन्य दो घडी में और उत्कृष्ट तीस कोडा-कोडी सागरोपम में उसे भोग ही लेना पडता है।

कहने का आशय यह है कि वेदनीय कर्म के अबाधाकाल की अर्थात् बध होने के पश्चात् फल न देने के समय की उत्कृष्ट मर्यादा तीन हजार वर्ष की है। इतने समय तक वह कर्म सत्ता में बना रहता है, फल नही देता। मगर यह काल-मर्यादा समाप्त होने पर अवश्य उसका उदय आता है और फल भोगना पडता है।

हम देखते है कि कई पापी जीव जुल्म करते है और जीवो को सता कर भी आनन्द मनाते और आनन्द भोगते है। यहा कोई कह सकता है कि अधिक पाप करने वाले आनन्द उडाते है और धर्म करने वाले दु खी दिखाई दे रहे है। ऐसा सोचने वालो से कहना है— भैया ! ऐसा कर कह दूसरो को धर्म से विचलित मत करो। किसी को पाप की ओर प्रवृत्त मत करो। तुम अपनी दृष्टि को सरल और समीचीन रक्खो। अगर कोई मनुष्य वर्तमान मे पाप करके भी आनन्द भोग रहा है तो वह अपने पाप का फल नही भोग रहा है, उसने पहले कभी जो पुण्य उपार्जन किया होगा, उसका फल भोग रहा है। जिस प्रकार वह पिछले पुण्य इस समय भोग रहा है, उसी तरह इस समय के पापो का फल किसी आगामी जन्म मे भोगेगा। देर हो सकती है, अधेर नही हो सकता।

जो पूर्वकृत पुण्य का उपभोग कर रहा है और भविष्य के लिए पापो का उपार्जन कर रहा है, वह उस उडाऊ आदमी के समान है जो अपने पूर्वजो की सचित पू जी को पानी की तरह वहा रहा है और नवीन कुछ भी नही कमाता। ऐसा आदमी अधिक

काल तक सुखी नही रहेगा। वह दीवालिया है । पीछे पछतायेगा और जो उसका अनुकरण करेगा उसे भी बुरी तरह रोना पडेगा।

किसान खेत मे बीज डालता है। कोई बीज दूसरे दिन अंकुरित होता है और कोई दस दिन बाद। इसी प्रकार कर्मों की अवधि है । जिन कर्मों का उदयकाल आ गया है, उन्हे भोगना पडता है और जिनका उदयकाल अभी नही आया है, उन्हे भोगने में देरी है। ये पर्चिया निकलती ही रहती है । उन्ही के अनुसार जीव को शुभ-अशुभ कर्म भुगतने पडते है। मगर यह निस्सन्देह है कि एक न एक दिन पर्ची निकलेगी जरूर ! दाबादूबी चलने वाली नही है। अतएव यह मत समझो कि कोई पाप कर्म के उदय से आनन्द का उपभोग कर रहा है।

हा, तो मनुष्य हस-हस कर कर्म बाध लेता है, परन्तु भोगते समय रोना पडता है । कर्म बाधते समय आत्मा को जितनी प्रसन्नता होती है और जितनी सक्लेश की अधिकता होती है, कर्मबध उतना ही अधिक प्रगाढ होता है।

सम्यग्दृष्टि जिस काम को करता है, वही मिथ्यादृष्टि करे और दोनो की बाह्य चेष्टाओ मे कोई अन्तर न दिखाई दे, तो भी दोनो की भावनाओ मे भारी अतर होता है। सम्यग्दृष्टि कर्म का वध करता हुआ कर्म को तोड भी रहा है , मगर मिथ्या-दृष्टि की वात दूसरी है। इसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि मे अनन्तानुवधी कषाय—जो सब से अधिक प्रबल होता है, विद्यमान नही होता, किन्तु मिथ्यादृष्टि मे वह होता है और वही तीव्रतम विपाक का जनक है।

जो कोई भी आरम्भ किया जाता है, वह वध का कारण तो अवश्य होगा, परन्तु उस वध में अध्यवसायो की मन्दता या तीव्रता

के कारण बहुत अंतर पड जाता है। अतएव देखना यह चाहिए कि किसी भी चेष्टा के पीछे कितनी आसक्ति है ? अगर आसक्ति है और वह तीव्र है तो प्रगाढ बंध होगा और यदि आसक्ति है तो बंध हल्का होगा।

सज्जनो ! केवली भगवान् के समान अनासक्त और कौन होगा इस संसार में ? किन्तु सयोग अवस्था में अर्थात् तेरहवें गुणस्थान मे उनको भी कर्मबंध होता है। वहा बंध है, उदय है, भोग है और निर्जरा भी है। किन्तु केवली भगवान् कर्मों के ऋण को इकट्ठा नही होने देते। इस हाथ लिया और उस हाथ दिया वाली लोकोक्ति उन पर लागू होती है। वे प्रथम समय में कर्म का बंध करते हैं, दूसरे समय मे भोगते है और तीसरे समय मे निर्जीर्ण कर देते हैं। बस, उसी समय बाधा और साथ ही साथ भोग कर समाप्त कर दिया।

बात यह है कि चार प्रकार के बंधो मे से स्थितिबंध और अनुभागबंध कषाय के उदय से होते है और प्रकृतिबंध तथा प्रदेशबंध योग के निमित्त से होते है। तेरहवें गुणस्थान मे योग का सद्भाव होता है, परन्तु कषाय का अभाव होता है। अतएव योगनिमित्तक प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध होने पर भी स्थितिबंध और अनुभागबंध वहा कषाय के अभाव के कारण नही हो सकते। स्थितिबंध के बिना आत्मा में कर्म ठहर नही सकते और न उनका विपाकोदय ही हो सकता है। यही कारण है कि केवली भगवान् की आत्मा मे कर्म ठहरते नही, सिर्फ प्रदेशोदय होकर कर्म की निर्जरा हो जाती है।

कल्पना कीजिये, एक कमरे मे दो ओर छेद है। एक छेद [illegible] नो आता है। कमरा ऐसा ढलाव वाला है कि पानी किसी

जगह ठहर नही सकता। ऐसी स्थिति में जैसे ही आता है, वैसे ही दूसरे छेद से बाहर निकलता जाता है। कमरे मे पानी रुकता नही है। यही स्थिति अरिहन्त भगवान् के कर्मबध की समझिये।

दूसरा उदाहरण लीजिये। पक्की सडक बनाई जाती है तो इजिन पत्थर की काकरो को रोलर से दबाता रहता है। जब गिट्टी दब जाती है तो फिर सडक पर मिट्टी डाली जाती है और पानी छिडक कर फिर रोलर फिराया जाता है। जब रोलर फिराया जाता है तो उसपर मिट्टी चिपकती है, मगर मशक वाला उस रोलर पर पानी डालता रहता है, जिससे वह मिट्टी चिपकने के साथ ही छूटती भी जाती है। इस प्रकार मिट्टी का चिपकना बध है तो उसका छूटना निर्जरा है।

बस, यही स्थिति केवलियो के कर्मबध की है। वहा कर्म आते है और चले जाते है। ठहर नही पाते। उन्होने कर्ज लिया और उसी समय दे भी दिया। कर्ज इकट्ठा होने से रकम बडी दिखाई देने लगती है और फिर ब्याज चुकाना भी कठिन हो जाता है।

तो मै कहने जा रहा था कि जब निकाचित कर्म बध जाते है, तो उन्हे भोगना ही पडता है, किन्तु निधत्त कर्म जप-तप मे कट जाते है। अर्थात् उनका प्रदेशोदय ही होता है, विपाकोदय नही होता। अगर ऐसा न हो और जितने कर्म बाधे जाते है, सब विपाक से भोगने पडें तो मोक्ष होना असभव हो जाये। क्योकि चरमशरीरी जीव भी भव-भवान्तर मे भोगने योग्य कर्मों का बध करता है। उन्हे भोगने के लिए भव-भवान्तर करने पडे और फिर उन भव भवान्तरो में पुन वैसे ही कर्मों का बध हो। इस प्रकार कर्मभोग की परम्परा कभी समाप्त ही न हो सके। मगर ऐसा नही है। जो निधत्त कर्म है, वे जप-तप की क्रिया करने से, तीव्र रस

वाले होने पर भी मन्द रस वाले हो जाते है। यही नही, आत्मा में ऐसी शक्ति है कि वह निकाचित कर्मों का भी उपक्रमण कर सकता है, मगर वह निधत्त कर्मो के उपक्रमण की तरह सहज नही होता।

मदिरा में तेज मादक-शक्ति होती है, किन्तु उसमे जल मिला दिया जाये तो वह हल्की हो जाती है। ज्यो-ज्यो उसमें पानी की मात्रा बढती जायेगी, मादक-शक्ति कम होती जायेगी और मदिरा की तीव्रता घटती जायेगी। ठीक इसी प्रकार जप-तप द्वारा पापो का बध हल्का होता जाता है—तीव्र रस मद-रस के रूप में परिणत हो जाता है और लम्वी स्थिति घट कर थोडी हो जाती है। इसके विपरीत, अगर भावो मे अधिक तीव्रता आ जाये तो मन्द रस तीव्ररस भी वन जाता है और कर्म अधिक गाढे हो जाते है।

किसी को १०५ डिग्री ज्वर चढा हो और इजेक्शन या औषध का प्रयोग किया जाये तो वह कम हो जाता है, इसी प्रकार कर्म के रस की तीव्रता भी जप-तप आदि क्रियाओ द्वारा कम की जा सकती है।

सज्जनो! कर्मवर्गणाए अधिक होती है तो उनका असर भी ज्यादा होता है। कर्मवर्गणाओ में वडी भारी शक्ति है। उन्होने आत्मा को असली स्वरूप से च्युत कर दिया है, विकृत कर डाला है, राजा से रक वना दिया है। मनुष्य कितना लम्वा-चौडा होता है, परन्तु जरा-सी शराव पीने से पागल हो जाता है। कर्मवर्गणा के परमाणु मन, दो मन वजन के नही है। उनमें छटाक भर भी गुरुत्व नही है, राई के दाने के वरावर भी वजन नही है। शरीर आठस्पर्शी है और कर्म चौस्पर्शी हैं। कर्मी भावी पुद्गलो मे परस्पर ...जन के चढाव-उतार का तारतम्य भी नही है, फिर भी उनमें

अनन्त-अनन्तगुणा उतार-चढाव है। किसी की कर्मवर्गणा अनन्तगुणी हीन है, किसी की अनन्तगुणी अधिक है। कर्म अगुरुलघु अवस्था में ही रहते है। उनमे न लघुपन आता है, न भारीपन आता है।

ससार मे अनन्त-अनन्त प्राणी है और प्रत्येक प्राणी की आत्मा के असख्यात-असख्यात आत्मप्रदेश है। एक-एक प्रदेश में अनन्त-अनन्त कर्मपुद्गल स्थित है। ज्ञानी कहते है कि कदाचित् ससार के समस्त जीवो के कर्म-पुद्गल एकत्र किये जाये तो उनका बोझ राई के दाने के बराबर भी नही होगा। यद्यपि भूतकाल मे कभी किसी ने सब जीवो के कर्मपुद्गलो को एकत्र किया नही है, भविष्य मे कोई करेगा नही और उन्हे एकत्र करना शक्य भी नही है, तथापि असत्कल्पना से वस्तु स्वरूप दिखलाने के लिए ऐसा मान लिया जाता है।

इस प्रकार कर्म इतने हल्के होने पर भी इतने भारी है कि जीव को सातवे नरक तक ले जाते है।

और राई के दाने को भी छोड दीजिये, यदि अनन्तानन्त जीवो के समस्त कर्म इकट्ठे किये जायें तो उनका वजन बाल के अग्र भाग के बराबर भी नही होगा। बाल आठस्पर्शी है, किन्तु कर्म कितने भी इकट्ठे क्यो न हो, चौस्पर्शी ही रहते है। वे अपने धर्म-स्वभाव पर कायम रहते है। इतने हल्के होने पर भी वे जीव को अधोगति मे ले जाते है। उसका कारण यह है कि उनमें विपाक है, रस है और वह भी इतना तीव्र होता है कि वह आत्मा को बाध लेता है और बेमान कर देता है। थोडा-सा जहर भी प्राणो को नष्ट कर देता है।

भद्र पुरुषो! कर्म बडे विचित्र है। बडे से बडे शूरवीर को भी नीचे गिरा देते है। सत्य ही कहा है —

आरूढा प्रशमश्रेणीं, श्रुतकेवलिनोऽपि च ।
भ्राम्यन्तेऽनन्तससारमहो दुष्टेन कर्मणा ।।

अर्थात्—यह कर्म इतना दुष्ट है कि जो उपशम श्रेणी पर आरूढ हो चुके है और सम्पूर्ण श्रुत-सागर के पारगामी हो कर श्रुतकेवली का पद प्राप्त कर चुके है, उन्हे भी अनन्त काल तक ससार मे भटकाने से नही चूकता !

तो जो कर्म वध जाते है, उन्हे भोगना ही पडता है। जीव अपने आप ही कर्म करता है और अपने आप ही उनके चक्कर में फस जाता है। मकडी मक्खी आदि जतुओ को फसाने के लिए जाल फैलाती है। वह अपने मु ह से तार निकालती है। उस तार को कभी लम्बा कर देती है और कभी समेट भी लेती है। कवि कहता है —

नट उतरे बांस बढ़े, नट चढे बांस घट जाये ।
एक अचभा यह हुआ, नट में बास समाय ।।

जब नटरूप मकडी ऊची चढती है तो तार रूपी वास घटता जाता है, क्योकि मकडी तार को मु ह से लपेट कर अपने अदर लेती जाती है और जब नीचे उतरती है तो तार रूपी वाम बढता जाता है, क्योकि तार मु ह से छोडती जाती है। बडा आश्चर्य तो यह है कि यह वास उसी नट में समा जाता है अर्थात् मकडी तार को अपने अदर ही ले लेती है।

हा, तो मकडी अन्दर से तार निकाल कर जाल बनाती है, ताकि मक्खी, मच्छर आदि जतु आकर उसमें फस जाये और जब उसमे कोई फस जाता है तो वह अत्यत प्रसन्न होती है। मगर याद रखना मकडी ! कभी न कभी तू भी अपने ही वनाये में ऐसी फमेगी कि निकलना कठिन हो जायेगा।

इसी प्रकार जो दूसरो को फसाना चाहते है, दुखी करना चाहते है, वे सभव है दूसरो को फसा सके और दुखी कर सके अथवा ऐसा न भी कर सकें, परन्तु स्वय तो फसते और दुखी होते ही है। अतएव विवेकशील मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसे दुष्कर्मों से दूर रहे और सत्कर्मों मे प्रवृत्त हो। कर्मबध से बचना मनुष्य जीवन का सब से उत्तम कर्त्तव्य है। कर्म किस प्रकार बधते है, यह समझने के लिए एक स्थूल उदाहरण लीजिये —

मान लीजिये, किसी ने हलवा बनाने का विचार किया। हलुए की जो सामग्री होती है—घी, सूजी, चीनी आदि वह सब तैयार हो गई। बनाने वाले ने सब चीजो को पृथक-पृथक रूप से थाल में रख दिया। वह हलुए का सामान है और किसी अपेक्षा से वह हलुआ ही है। किन्तु वह अभी निधत्त है, क्योकि अभी घोटा नही गया है और एकमेक नही किया गया है। उसी समय बनाने वाले को खयाल आया कि अभी हलुआ बनाने का अवसर नही है और यह सोच कर उसने सब चीजें उनके अपने-अपने ठिकाने रख दी। वे सब चीजे अलग-अलग पडी थी और निधत्त रूप में थी, किन्तु निकाचित रूप मे नही थी और उनका बध नही पडा था। जब सीरा घुट गया तब आप चाहे कि इसमें से घी, शक्कर और सूजी अलग-अलग कर ले तो ऐसा होना दुश्शक्य है। वह घुट गया सो घुट गया। वह निकाचित बध पड गया।

इसी प्रकार निकाचित रूप मे बद्ध कर्मों को भोगना ही पडता है। अगर परिणामो मे रूक्ष वृत्ति होगी और आसक्ति की तीव्रता न होगी तथा सक्लेश की तीव्रता न होगी तो निकाचित बध भी न होगा और उस स्थिति मे बधे हुए कर्मो को तोडना कठिन न होगा। उनको निर्जरा फल भोगे बिना भी हो सकती है।

इसीलिए कहा जा रहा था कि एक ही क्रिया को सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि करता है, ज्ञानी भी वही क्रिया करता है तथा अज्ञानी भी करता है, किन्तु दोनो के परिणामो की धारा भिन्न-भिन्न होती है। सम्यग्दृष्टि भी उस क्रिया को करता हुआ बध करता है, क्योकि ऐसी कोई क्रिया नही जिसके करने पर कर्मबध न हो, फिर भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के बध मे बहुत अन्तर होता है।

वह पखा ही क्या जिसमे से हवा न निकले। पंखा तेज चलता है तो वायु की गति भी तेज होती है और ज्यो-ज्यो पखे की गति मद होती है, उसमे से निकलने वाली वायु भी मद होती है। इसी प्रकार योगो की गति जितनी तीव्र या मद होती है, कर्मबध भी भी उतना ही भारी अथवा हल्का होता है। किन्तु कर्मबध होता अवश्य है। इस प्रकार जहा क्रिया है, वहा कर्मों का बध भी है। कर्म किसी का भी लिहाज़ नही करते। चाहे कोई गरीब हो या अमीर हो, साधु हो या श्रावक हो, जो भी क्रिया करेगा, वह कर्म-बध का भागी होगा। हा, सम्यग्दृष्टि क्रिया करके बध तो करता है, किन्तु अपनी शुद्ध भावना के कारण निर्जरा भी करता है। मगर मिथ्यादृष्टि अपने मिथ्यात्व के कारण पाप करके प्रसन्न होता है। वह कहता है—देखो, मैंने उसकी आखो मे धूल झोक ही दी! मैंने दिन में ही उसे उल्लू बना दिया!

किन्तु अरे प्राणी! तू दूसरो को उल्लू बना रहा है अथवा स्वय उल्लू बन रहा है? अरे, अपना घर तो डाकू भी छोड देता है। पर तू अपने आपको भी नही छोड रहा है, तू आत्मा के साथ भी ठगाई कर रहा है! तू कहता है—मैंने उल्लू बना दिया, पर वह क्या बना तू अवश्य उल्लू बन गया। वह तो देख रहा

मगर तेरी दोनो बद हो गईं, क्योंकि तू देखता हुआ भी कुकृत्य कर रहा है ! आत्मा को भी धोखा देने से नही चूकता है ! हे मूढ ! तू कपट करता है, धोखा देता है, विश्वासघात करता है और पापाचरण करके फूला नही समाता ! तू अपनी आत्मा के साथ घोर शत्रुता कर रहा है ! इसका परिणाम क्या होता है —

समझू सके पाप से, अनसमझू हरसंत ।
वे लूखा वे चीकना, इण विध कर्म बधन ॥

सज्जनो ! कर्म बाधना तो आसान है, मगर उन्हे भोगना बहुत कठिन है। अतएव ज्ञानी जनो ने बार-बार चेतावनी दी है, सावधान किया है और बतलाया है कि सदा सावधान रहो, क्षण भर भी प्रमाद मे मत पडो। सदैव अपनी भावना की चौकसी करते रहो और अपने मन को सभाले रहो। उसे पाप की ओर मत बढने दो और सदा शुभ कृत्य की ओर ही प्रेरित करते रहो। इतना समझाने पर भी और गुत्थिया खोल कर समझाने पर भी अगर कोई इतना नही समझता है तो गुरु महाराज भी क्या कर सकते है ? पजाबी भाषा के एक भजन मे कहा है —

कर निर्णय समझाइया रमजा ज्ञान दिया
प्रथम मन को शुद्ध बनाया,
सत गुरु गूढा रंग चढ़ाया,
नाम मजीठा पाइया ॥ रमजा ०॥ १॥

अविद्या—नीद से सोते जगाया,
महा—वाक्य का ढोल बजाया,
देवे संत दुहाइयां ॥ र० २ ॥

जनम—मरण दी कट गई फांसी,
प्रभु पाया पूर्ण अविनाशी ।
भइयां चित्त शीतलाइयां ॥ र० ३ ॥
सब जग ढूंढ ढूंढ मै हारा,
घट में देखा प्रीतम प्यारा ।
हुइयां दूर जुदाइयां ॥ र० ४ ॥
ना कुछ खोया, ना कुछ पाया,
जैसा था वैसा बतलाया ।
सुरता गगन चढ़ाइया ॥ र० ५ ॥

सज्जनो ! गुरु महाराज तुम्हारे शुभचिन्तक है, हितैषी है और वे समान रूप से समस्त प्राणियो का भला चाहते है । प्राचीन काल में इस आर्यावर्त्त मे गुरु का वडा महत्त्व रहा है । जो किसी को अपना गुरु नही वनाता था, उसे लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे । 'निगुरा' या 'निगोडा' यह आज भी गाली समझी जाती है । इसका अर्थ यही है कि यह व्यक्ति असभ्य, अज्ञानी और असस्कारी है, क्योकि इसका कोई गुरु नही है—यह निर्गु रु है । गुरु अधकार में से प्रकाश की ओर ले जाने वाले दीपक के समान है । 'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति की गई है —

'गु' शब्दोऽन्धकारस्य, 'रु' शब्दस्तद्विनाशनः ।

अर्थात् 'गुरु' इस पद में 'गु' शब्द अधकार का वाचक है और 'रु' शब्द उस अधकार के विनाश का वाचक है । तात्पर्य यह है कि जो अज्ञानान्धकार का निवारण करके ज्ञान की ज्योति जगमगा देता है, वह गुरु कहलाता है । इसी कारण यह भी कहा गया है —

अज्ञानतिमिरान्धाना, ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मेलित येन, तस्मै श्रीगुरवे नम. ।।

अज्ञान रूपी अधकार से जो अधे हो रहे है, उनके नेत्रो में ज्ञान की अजन–सलाई आज कर जिसने आख खोल दी अर्थात् ज्ञान का दान दिया–उस गुरु को मेरा नमस्कार हो ।

गुरु जीवन-नौका का कर्णधार है, पथप्रदर्शक है । गुरुकृपा से दुस्तर ससार-सागर भी सुतर हो जाता है ।

सज्जनो ! तुम्हारे हित के लिए मै भी प्रयत्न कर रहा हू–पसीना बहा रहा हू । छोकरा–छोकरी समझदार हो तो कहने की आवश्यकता नही पडती । वे सकेत में ही समझ जाते है । किन्तु अगर सकेत से नही समझते तो शिक्षक को कहा-सुनी भी करनी पडती है । बच्चा स्कूल जाता है और उसकी लगोटी खुल जाती है तो शिक्षक को वह भी बाधनी पडती है । इसी प्रकार आपको जब प्रवचनसभा के योग्य प्राथमिक बातो में गडबडी करते देखता हू तो मुझे कहना पडता है–अनुशासन की शिक्षा देनी पडती है । डाक्टर और वैद्य का कर्त्तव्य है कि वह जिस रोगी को अपने चार्ज में ले, किसी प्रकार का सकोच या लिहाज़ न करता हुआ उसके लाभ की बात उसे कहे । अगर चिकित्सक ऐसा नही करता तो अपने कर्त्तव्य से चूकता है । वह सफल चिकित्सक नही कहा जा सकता और अपने रोगी का हित नही कर सकता ।

तो मै आपके हित के लिए ही प्रयत्न कर रहा हू । शास्त्र की गहन बातो को भी अधिक से अधिक सरल बना कर आपके समक्ष रखता हू । हेतु और दृष्टान्त देकर समझाता हू । इतना करने पर भी अगर आपकी समझ मे न आये तो मै क्या कर सकता हू ?

बुद्धिमान् चिकित्सक सबसे पहले रोगी के पेट को साफ करता है विरेचन कर। इसी प्रकार गुरु महाराज विरेचन द्वारा सर्वप्रथम मिथ्यात्व की गदगी को मन से दूर करते है। वस्त्र रगने से पहले उसे धोया जाता है और फिर उसपर रग चढाया जाता है। और जिस पर पक्का रग चढ गया तो फिर वह उतरने वाला नही है। अर्जुन माली पर, गजसुकुमार पर, राजा प्रदेशी पर और राजा सयती पर रग चढा था। वह ऐसा चढा कि फिर नही उतरा। किन्तु वह रग चढा कब ? तभी जब कि कपडा बिल्कुल साफ कर दिया गया था। अगर कपडा तेलिया तप्पड हो, जिस पर घी, तेल वगैरह लग रहा हो और उसके कारण गाढा मैल जम गया हो तो उस पर रग नही चढ सकता। इसी प्रकार जिसकी आत्मा तेलिया-तप्पड की तरह राग-द्वेष से परिपूर्ण है, उसपर अगर सम्यग्ज्ञान का रग नही चढता और समकित का रग नही चढ़ता तो इसमें रग या रगरेज का क्या अपराध है ? यह तो उस तप्पड का ही दोष है। किन्तु जब साफ वस्त्र पर एक बार मजीठिया रग चढ जाता है तो उतरना कठिन हो जाता है। वह स्थायी बन जाता है।

गुरु महाराज ने उन लोगो को, जो अविद्या में, जहालत में, और कुरूढियो के पाश में पडे सो रहे थे, जगा दिया। भगवान् के महोपदेश का, जिन-वाणी का ढोल बजा कर सोतो को जगा दिया। उन सन्तो ने पुकारा—जागो, जागो। अविद्या को छोडो और ज्ञान के प्रकाश में आओ। महाविजय का ढोल ही महावचन है। उसे जो सुनता है, उसका कल्याण हो जाता है। सज्जनो ! जिसने गुरु के इशारे को, आशय को समझ लिया और जान लिया कि यह हमारे हित के लिए ही पसीना बहा रहे है, घोर कष्ट उठा रहे है और ऐसा जान कर उनके वचनो को जीवन में उतार लिया,

उसका बेडा पार हो गया। वह तिर गया। कहा है—

बड़े–बड़े पापी हत्यारे,
प्रभु नाम ने पल में तारे।
हो गये पार अडोल, पापी जीवड़िया !
प्रभु नाम मुख बोल पापी जीवड़िया ।।

गुरु देव कहते हैं—हे जीव ! तू प्रभु के गुण गा। इसी से तेरी आत्मा का कल्याण होगा। भगवद्‌गुणगान से बडे-बडे पापी पार उतर गये है। राजा प्रदेशी के विषय में शास्त्र मे बतलाया है कि वह अत्यन्त प्रचण्ड पाप कर्म करने वाला था। झूठ को सच्चा और सच्चे को झूठा बनाने वाला था। उसके हाथ रुधिर से लिप्त रहते थे। अत्यन्त निर्दय, क्रूर और प्रचण्ड था। किन्तु वही प्रदेशी जब साधु सगति में आ गया, सन्त के समीप जा पहुचा तो उसका बेडा पार हो गया। तो जो सद्‌गुरु के वचनो को जीवन में उतारता है, उसके जन्म-मरण की फासी सट जाती है। उसे पूर्ण ज्ञान और पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। जब पूर्ण ब्रह्म ही मिल गया तो फिर क्या पाना शेष रह गया ? जब प्रभु मिल गये तो त्रिताप ही मिट गये। फिर उसे कुछ भी पाना शेष न रह गया। मगर अज्ञानी जीव नही जानता कि वह प्रभु कहा है ? अतएव वह इधर-उधर भटकता है, मगर जिसने पा लिया है, वह कहता है —

सब जग ढूंढ़-ढूढ मै हारा,
घट में पाया प्रीतम प्यारा।
हुइया दूर जुदाइयां ।।

सज्जनो ! मुमुक्षु जीव जब गुरु-चरणो में आ गया, गुरु के वचनो के प्रति श्रद्धाशील बन गया और उसने समझ लिया कि इधर-उधर घूमने से परमात्मा मिलने वाला नही है, तब वह समझ

लता है और कहता है कि—गुरु महाराज ! आपकी कृपा हो गई कि मैं ठिकाने आ गया ! इससे पहले मेरी क्या दशा थी ! मैंने उस दिलोजान के लिए, परमात्मा के लिए कोई झाड नही छोडा, पहाड नही छोडा, नदी-नाला नही छोडा। सब जगह भटकता फिरा, मगर वह कही भी नज़र न आया। नज़र आता भी तो कैसे ! वह लुक-छिप कर रहने वाला नही है। वह सभी जगह है और नही है तो कही नही ह।

परमात्मा विचारो की शय्या पर सो रहा है। आत्मा रूपी वधू उसके पास पहुचे तो दोनो का सम्पर्क हो जाये। किन्तु आत्मा बाईजी तो घर को छोड कर दूसरी जगह भटकती फिरती है। यहा आत्मा है वहाँ परमात्मा है। ऐसी स्थिति में दोनो का सम्बन्ध हो तो कैसे हो ?

किन्तु ब्यावर वालो ! दलाल विना सौदा नही पटेगा। परमात्मा भी चाहता है कि आत्मा के साथ सम्बन्ध हो जाये और आत्मा भी उससे मिलने के लिए उत्कठित है, मगर प्रकृति-भगवती या पुद्गलचदजी वीच में अडे है, जो मिलने नही देते। आप जानते है कि खोटा दलाल हो तो बना बनाया सौदा बिगाड देता है। तो यह पुद्गल रूपी दलाल आत्मा और परमात्मा का सबध नही होने देता और तुम भी पुद्गल के पीछे पडे हो। मगर याद रखना कि उसके भरोसे बैठे रहोगे तो वह कभी मिलने नही देगा, क्योकि परमात्मा और आत्मा के बीच दीवार खडी करना उसका स्वभाव है। अतएव अगर तुम्हें शादी करनी ही है तो किसी अच्छे ईमानदार दलाल की खोज करो। वही तुम्हारा काम बनायेगा।

जानते हो वह दलाल कौन है ? वह है गुरु महाराज । इधर आत्मा और उधर परमात्मा है। पुद्गलचदजी दोनो के मिलाप में बाधा डाल रहे है। दोनो को मिलने नही देते । तब गुरु महाराज कहते है कि पुद्गल की मध्यस्थता को त्याग दो और शादी का सौदा फौरन पट जायेगा । इस प्रकार जिसे गुरु पर विश्वास है, उस आत्मा की शादी अवश्य हो जायेगी। जो गुरु से दूर रहता है, जो भाग्यहीन है, वह रडवा ही रह जायेगा—उसका परमात्मा के साथ सबध नही जुड सकेगा ।

गुरु महाराज फरमाते है—हे आत्मन् ! तुझे इस विषम ससार में जन्म-मरण करते-करते अनन्त काल हो चुका है, किन्तु न तूने कोई नवीन वस्तु प्राप्त की है और न अपने मूल चेतनभाव को खोया है । तेरी अनन्त आध्यात्मिक सम्पत्ति जैसी अनन्त काल पहले थी, वैसी ही अब भी है। वह सम्पत्ति ऐसी है कि उसे कोई हरण नही कर सकता, छीन नही सकता, नष्ट नही कर सकता । परन्तु जब तू स्वय ही उसे भूल जाता है तो वह छिप जाती है। उसे प्रकाश में ले आने की ही आवश्यकता है।

आत्मा चेतन था, चेतन है और चेतन ही रहेगा । आत्मा की चेतना शक्ति कही जाने वाली नही । आत्मा का कुछ बिगडने वाला नही है। मगर आत्मा अनात्म भाव में रमण करता-करता अपने शुद्ध स्वरूप को भूल गया है। तू कुछ और है किन्तु अपने को और ही कुछ समझ रहा है।

गुरुदेव तेरे अज्ञान अधकार को दूर करते हुए कहते है तू शुद्ध है, तू विशुद्ध है, तू अनन्त चेतना का धनी है, आनन्दमय है, असीम आत्मिक ऐश्वर्य का अपार सागर तेरे भीतर लहरा रहा है । किन्तु कर्मबध के कारण तेरी शक्तिया कुठित हो गई है।

तू सम्राट् होकर भी अपने आपको रक समझ रहा है—हे ज्योतिपुञ्ज ? तू जाग, प्रतिबोध पा, अपने को समझ और अपनी स्वाभाविक सम्पत्ति का अधिकारी बन। बस, एक बार अपने को समझने और अपने ऊपर विश्वास करने की आवश्यकता है। फिर तेरा कल्याण हो जायेगा। तेरी अनन्त-अनन्त काल की दीनता दूर हो जायेगी।

तो मै कह रहा था कि इस आत्मा को ऊची अथवा नीची गति में ले जाने वाला कोई दूसरा नही है। यह सब तो अपनी-अपनी क्रियाओ पर निर्भर है। उच्च क्रिया करने से उच्च गति और नीच क्रिया करने से नीची गति प्राप्त होती है। उच्च आचार का पालन करने वाले स्वर्ग आदि के सुख भोगते है और नीच कृत्य करने वाले नरक निगोद की यातनाओ के भाजन वनते है।

सज्जनो ! वीतराग की इस वाणी के अमृत का पान करके अजर-अमर वनो। जो भव्य जीव शुभ आचरण करके अपनी आत्मा को पवित्र वनायेंगे, वे सर्वथा प्रकारेण कर्मों का उच्छेदन करके ससार-सागर को पार करेंगे और अक्षय, अनन्त, अव्यवाध मुक्ति-सुख को प्राप्त करेंगे। वे परमात्मा की आराधना करके स्वय परमात्मपद प्राप्त कर लेगे और कृतार्थ वन जायेंगे।

व्यावर
२७-८-५६ }
